ॐ ॥ श्री वीतरागाय नमः ॥ ॐ

श्री दिगम्बर जैन मन्दिरों, त्यागियों,
मुनिराजों के संघों में सादर भेंट

卐 श्री ऋषभदेवाय नमः 卐

कवि श्रीतुलसीरामजी जैन देहली निवासी विरचित

श्री आदिपुराण

(श्री ऋषभनाथ पुराण छंदोबद्ध)

एवं

सामायिक पाठ

卐

सम्पादन :

महावीर प्रसाद जैन, सर्राफ

१३२५, चाँदनी चौक, देहली-६

प्रकाशक :

श्री रघबीरसिंह जैन (श्री बीरो मल जैन एंड संस)

मैसर्स तुलसीराम सागरचन्द जैन, सर्राफ

दरीबा कलां, देहली-६

लागत मूल्य २४ रु०   बिक्री मूल्य २० रु०

श्री आदिपुराण

प्रकाशक :
श्री रघबीरसिंह जैन (श्री बीरोमल जैन एंड संस)
मैसर्स तुलसी राम सागरचंद जैन, सर्राफ
दरीबा कला, देहली-६

प्रथम संस्करण वीर नि. सं. २४७३ सन् १९४७
द्वितीय सस्करण ११०० प्रतियां दि० २४-७-१९९४

प्राप्ति स्थान :
१. श्री बीरो मल जी जैन
२५२६, धर्मपुरा, देहली
२. मैसर्स तुलसीराम सागरचन्द जैन सर्राफ,
दरीबा कलां, देहली
३. मैसर्स बिशम्बर दास महाबीर प्रसाद जैन, सर्राफ
१३२५, चाँदनी चोक, देहली

मुद्रक :
गीता प्रिंटिंग एजेंसी
डी-१०५, न्यू सीलमपुर,
दिल्ली-५३ फोन : २२६०८०३

प्रस्तावना

जैनधर्म और उनके सिद्धांतों का वर्णन प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग ऐसे चार अनुयोगों द्वारा किया गया है। प्रथमानुयोग में २४ तीर्थंकरों के चरित्रों का वर्णन होता है। प्रथम तीर्थंकर वर्णन अर्थात् श्री आदिनाथ पुराण (या श्री वृषभनाथ व श्री आदिपुराण) एक महान ग्रन्थराज है। यह मूल संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश भाषा में श्री पुष्पदन्ताचार्य, श्री जिनसेनाचार्य आदि आचार्यों द्वारा रचा गया है। पहले शास्त्र जी ताड़पत्र या कागज पर हस्त-लिखित ही मिलते थे लेकिन लगभग सौ वर्ष से जैन ग्रन्थ मुद्रित होने लगे हैं। यद्यपि मुद्रण कला का प्रचार इसके बहुत पहले हो चुका था लेकिन जैन शास्त्रों का छापना छपवाना तीव्र पाप समझा जाता था, बहुत विरोधी थे किन्तु आज सभी छपवाते हैं विरोधी कोई नहीं है।

श्री आदिपुराण मूल संस्कृत श्री जिनसेनाचार्यकृत हिन्दी भाषा-नुवाद करके सबसे प्रथम पं० लालाराम जी शास्त्री (इन्दौर) ने छपवाया था। फिर भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनो संस्था कलकत्ता ने। इसके बाद भारतीय ज्ञानपीठ ने छपवाया। वीर सम्वत् २४७३ सन् १९४७ में श्री मूलचन्दजी किशनदासजी कापड़िया सूरत वालों ने देहली निवासी पण्डित तुलसीराम जी कृत आदिपुराण प्रकाशित करके अपनी पत्रिका 'जैन मित्र' के ग्राहकों को भेंट किया था। यह ग्रंथ कविता में अर्थात् पद्य व छंदबद्ध है। यह ग्रंथ सरल व उत्तम पद्यों में है। मूल हस्तलिखित शास्त्र से मिलाकर छापा गया है।

पं० तुलसीरामजी के सुपौत्र एवं पं० सागरचन्दजी जैन के सुपुत्र श्री हीरोमल जी जैन की बहुत इच्छा थी कि ग्रंथराज अप्राप्य है छप जावे तो स्वाध्याय प्रेमियों एवं मन्दिरों, विद्वानों, मुनिराजों के संघों में वितरण कर दूं। उनकी इच्छानुसार उनकी ओर से ग्रंथराज फिर दोबारा छपा रहे हैं। सभी प्रकार की सावधानी करते हुए भी कुछ अशुद्धियाँ रह गई होगी विद्वान् पाठक शुद्ध करके पढ़ ले, क्षमा करें।

दिनांक २४ जौलाई १९९४ — जिन चरण सेवक :
वीर नि. सं. २५२० साबन बदी २ — **महाबीर प्रसाद जैन, सर्राफ**
श्री १००८ देवाधिदेव — १३२५, चांदनी चोक, देहली-६
मुनि सुव्रतनाथ भगवान का गर्भकल्याणक

श्री आदिपुराणके रचयिता—

कविवर पं० तुलसीरामजी जैन देहलीका संक्षिप्त परिचय

स्वनाम धन्य कविवर पंडित तुलसीरामजीका जन्म देहलीमें संवत् १६१६ में अग्रवाल वंशके गोयल गोत्रमें हुआ। बचपनसे आपकी रुचि जैन ग्रन्थोंके मनन और अध्ययनकी ओर थी। सौभाग्यसे आपको संस्कृतके विद्वान् पं० ज्ञानचन्दजी का सम्पर्क हुआ। उनके पास व्याकरण छन्द और सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन चालू किया। थोड़े समयमें आपने गोम्मटसार, सर्वार्थसिद्धि, चर्चा शतक, समयसार श्रुतबोध और सारस्वत व्याकरण आदि ग्रन्थोंका अध्ययन कर डाला। धीरे-धीरे उनकी अभिरुचि बढ़ने लगी व अधिकांश समय शास्त्रोंके विचार पठन-पाठनमें बीतने लगा जिससे आप संस्कृत और भाषा ग्रन्थोंके कुशल अनुभवी विद्वान हो गये।

उस समय भट्टारकोंका प्रभुत्व कम होने लगा था, गृहस्थों में विद्वनोंकी संख्या बढ़ने लगी थी **'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'** की उक्ति श्रावकोंके अन्तःकरणमें जाग्रत हो गई थी। विद्याकी वृद्धिके लिए अहर्निश प्रयत्न किया जाने लगा। स्वाध्यायकी परिपाटी चालू हुई। इसी परिपाटीने कुछ ऐसी शैलियां प्रकट कीं जिनसे विद्वानोंकी

संख्या बढ़ी। शैलीसे तात्पर्य उस जन समुदाय से था जो किसी प्रभावशाली अनुभवी और मर्मज्ञ विद्वानके सम्पर्कके कारण मुमुक्षु पुरुषोंकी गोष्ठी स्वयं ज्ञान बढ़ानेकी तीव्र अभिलाषा रखती थी और दूसरों को प्रोत्साहन देती थी उनमें से अधिकांश महानुभाव जैन धर्म के निष्णात विद्वान बन जाते थे। किसी समय दिल्ली, आगरा, जयपुर, अजमेर, कोटा और ग्वालियर की शैली अधिक प्रसिद्ध रही। पडित जी के ज्ञान का विकास भी ऐसी शैलीके प्रभावके कारण ही हुआ।

दिल्ली भारतवर्ष का हृदय है, व्यापारिक नगरों में अग्रगण्य है, जैन समाज की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। बहुत समय से विद्वानों की परिपाटी यहाँ लगातार होती चली आई। पं० द्यानत-रायजी, पं० बुधजनदासजी, पं० दौलतरामजी, पं० बुलाकीदासजी, पं० शिवदीनजी, पं० ज्ञानचन्दजी और पं० जिनेश्वरदासजी जैसे योग्य विद्वानों और आत्मरसिकों को विकसित करने का काम दिल्ली के महानुभावो ने ही किया। पं० तुलसीरामजी का भी इसमें महत्वपूर्ण भाग रहा है।

जैन धर्म का प्रचार अधिकांशतया ऐसे उदार निष्पृह विवेकी स्वावलम्बी सद्गृहस्थ विद्वानों द्वारा ही हुआ। जो आवश्यक समय आजीविका के लिए निकालकर बचे हुए अवकाश में दृढ़ अध्यवसाय और असाधारण उत्साह के साथ शक्तिभर कार्य करते रहे। पंडितजी ने भी जैन धर्म की विभूति पाकर उसके आनन्द में दूसरों को भी आस्वादन करने का पूरा-पूरा अवसर दिया। उनके धर्म प्रचार की प्रवृत्ति बहुमुखी थी। वे स्वयं कुशल वक्ता, चतुर व्याख्याता और ज्ञान गोष्ठी के लिए विशेष मर्मज्ञ थे।

जैन पाठशाला नया मन्दिर सेठ हरसुखराय सुगनचन्दजी जो दिल्ली की सभी संस्थाओं में प्राचीन संस्था है उसके आप मंत्री थे। सेठ के कूचे के सरस्वती भण्डार और सामग्री भण्डार का प्रबन्ध आप ही करते थे। दोनों समय शास्त्र सभा करना, साधर्मी भाइयों को प्रेरणा करके उनमें स्वाध्याय की अभिरुचि जगाना, जिज्ञासु पुरुषों से तत्वचर्चा करना आपका दैनिक कृत्य था। आवश्यकता पड़ने पर नया और पंचायती मन्दिर में व्याख्यान करने जाते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि मेरे द्वारा ज्यादा से ज्यादा जन समुदाय में जैन धर्म का ज्ञान फैले।

पंडितजी के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना अजैनों को जैन धर्म मे दीक्षित करने की है। आचार्यश्री जिनसेन स्वामी ने जिसे प्रजान्तर सम्बन्ध कहा है वह आपमें पूर्ण रीति से विद्यमान था।

तत्वो महानयं धर्म प्रभावोद्योतको गुणः।
येनायं स्वगुणैरन्या नात्म सात्म कर्तुमर्हति।।

—२१० श्लोक ३८ पर्व

आपने अलौकिक गुणों द्वारा अजैनों में जैन धर्म के प्रति श्रद्धा पैदा करना महान धर्म है और प्रभावना का सर्वोत्तम गुण है।

आपके सम्पर्क में आकर कई व्यक्ति जैन धर्म के अनन्य भक्त हो गये। त्यागमूर्ति सौम्य हृदय **बाबा भागीरथजी वर्णी** उनमें प्रमुख हैं। युगों से दीक्षा देने की प्रवृत्ति बन्द सी हो गई थी। अधिकांश जैन प्रचार की समुचित कमी के कारण जैन धर्म से विमुख होते जाते थे। द्वार बन्द थे। पंडितजी ने दीक्षा देकर एक श्लाघ्यनीय और अत्यावश्यकीय कार्य किया।

शुद्धि और दीक्षा के बिना जैन समाज संकीर्ण विचारों के दल-दल में फँसी रहेगी। उसमें उदारता और कर्तव्यनिष्ठा की भावना बलवती न होगी यह सभी जानते हैं। वर्तमान त्यागी वर्ग में बाबा भागीरथजी वर्णी ने अपने असाधारण त्याग और जैन धर्म प्रचार की तीव्र भावना के कारण विशेष स्थान पा लिया था। स्याद्वाद महाविद्यालय जैसी निधि श्रद्धास्पद बाबाजी और प्रातः स्मर्णीय पं० **गणेश प्रसादजी वर्णी** के बोए हुए पुण्य बीजों का ही फल है। इसलिए आवश्यक है कि अन्य विद्वानों को बिना किसी संकोच और भय के दीक्षा की प्रवृत्ति चालू करना चाहिए जिससे जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का यथार्थ फल सर्व साधारण जिज्ञासुगण ले सकें और अपना वास्तविक हित कर सकें।

पंडितजीका व्यवसाय सर्राफे का था "**तुलसीराम सागरचंद**" के नाम से फर्म है जो पहले चाँदनीचौक में थी व आजकल दरीबाकलां में है। आपके ३ बेटे और ४ पोते थे। पं० तुलसीरामजी के सुपुत्र पं० सागरचन्द जी भी अपने पिता की ही भांति कुशल अनुभवी जैन शास्त्रों के रहस्य के वेत्ता और साधर्मी प्रेमी विद्वान थे। उन्होंने भी पौराणिक ग्रन्थों का अच्छा स्वाध्याय किया था। वे भी सेठ के कूंचे के मन्दिर में वर्षों से शास्त्र पढ़ते रहे।

पं० तुलसीराम जी के सुपौत्र एवं पं० सागरचन्द जी के सुपुत्र श्री बीरोमल जी जैन की बहुत इच्छा थी कि ग्रंथराज अप्राप्य है छप जावे तो स्वाध्याय प्रेमियों एवं मन्दिरों, विद्वानों, मुनिराजों के संघों में बितरण कर दूं। उनकी इच्छानुसाह उनकी ओर से ग्रंथराज फिर दोबारा छपा रहे हैं।

पंडित जी की प्रमुख रचना "आदिपुराण" है, जिसे अपभ्रंश भाषामें पुष्पदंत आचार्य ने बनाया, और संस्कृत में श्रीसकलकीर्ति आदि भट्टारकों ने बनाया, उन्हीं के आधार पर भाषा में दोहा चौपाई छंदों में कविवर पडित तुलसीराम जी ने रचा है।

इस ग्रन्थ की रचना मनोहर और हृदयग्राही है। भाषा परिष्कृत और परिमार्जित है। अनुवाद के साथ मौलिक भावों का पूर्ण ध्यान रक्खा गया है। ग्रंथ सभी प्रकार से उत्तम और अपूर्व है।

ऐसे परोपकारी धर्मनिष्ठ महानुभाव का संवत १९५६ में सिर्फ ४० वर्ष की अवस्था में ही स्वर्गवास हो गया। उनके उज्ज्वल यशको जीवित रखने के लिए यह ग्रंथ ही चिरस्थाई है जो आज दोबारा प्रगट हो रहा है।

जिन चरण सेवक :
महावीर प्रसाद जैन, सर्राफ
१३२५, चांदनी चौक, देहली

प्रकाशकीय

मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि बाबा जी पं० तुलसीराम जी कृत "आदिपुराण" अप्राप्य है। छप जावे तो मन्दिरों, त्यागियों, विद्वानों को वितरण कर दूं। श्री जी की कृपा से ग्रंथराज द्वितीय बार छप रहा है। इसमें श्री सुमत प्रसाद जैन टोपी वाले, श्री सुमत प्रसाद जैन मैसर्स वर्धमान ड्रग्स, श्री प्रकाशचन्द जैन फोटू वाले दरियागज, पण्डित पद्मचन्द जी शास्त्री, श्री सुभाषचन्द जैन शकुन प्रकाशन एवं श्री महाबीर प्रसाद जैन सर्राफ ने बहुत सहयोग दिया है। मैं इन सभी का एव अन्य प्रेमियों का जिनका सहयोग रहा है बहुत आभारी हूं।

विनीत :

रघबीर सिंह जैन (बीरोमल जैन)
२५२६, धर्मपुरा, देहली

विषय-सूची

जीओ और जीने दो Live & Let Live

—भ० महावीर

किसी जीव को मत सताओ। जिस तरह तुम्हें अपनी जान प्यारी है, उसी तरह सबको अपनी जान प्यारी है।

शाकाहार की अनुपम सामग्री पढ़ें :

मांसाहार मानवता पर कलंक बड़ा साइज एवं पाकेट साइज (चित्रावली एवं लेख ३२ पेज) आर्ट पेपर पर

मांसाहार मानवता पर कलंक पोस्टर्ज सादा पेपर पर

शाकाहार पुस्तक ५० होम्योपैथिक दवा जिंदा जीव मारकर

चाँदी वर्क आदि में पाप ही पाप

बिडियो कैसेट शाकाहार–गर्भपात–पशु वध गृह

बाहुबली अभिषेक १६-१२-६३

प्राप्ति स्थान–१. महावीर प्रसाद जैन, सर्राफ
१३२५, चाँदनी चौक, देहली

२. जैन साहित्य सदन लाल मंदिर जी
चाँदनी चौक, देहली

३. अहिंसा स्थल, महरौली, नई दिल्ली

१०००८ भगवान श्री आदि नाथ जी

१०००८ भगवान श्रीमहावीर स्वामी जी
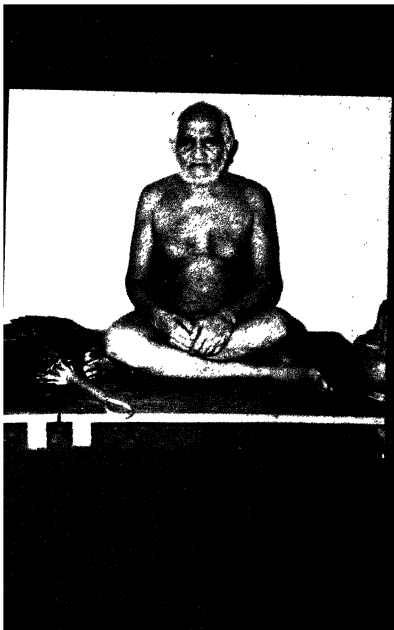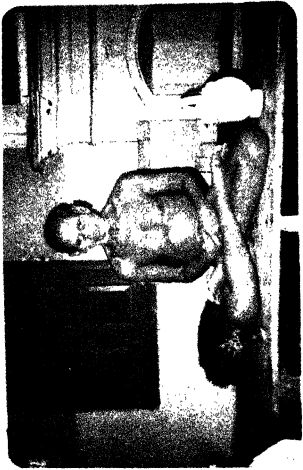
१०८ आचार्य श्री शान्ती सागर जी (हस्तिनापुर)

आदर्श त्यागी स्वर्गीय बाबा भागीरथ वर्णी जी

१०५ क्षुल्लक श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी

स्वर्गीय पं. सागर चन्द जैन (सर्राफ)

वीरोमल जी जैन (रघुवीर सिंह सर्राफ)
फर्म तुलसीराम सागरचन्द सर्राफ
दरिबा कलां, दिल्ली-६

卐 ॐ नमः सिद्धेभ्यः 卐

श्री आदिपुराण

(श्री ऋषभनाथपुराण)

—: ० :—

प्रथम सर्ग

श्रीमंतं त्रिजगन्नाथमादितीर्थंकरं परं।
फणीन्द्रं नरेन्द्रर्च्यं, वंदे नंतगुणार्णवि ॥१॥

गीता छन्द

सुखकरन आनन्दभरन तारनतरन विरद विशाल हैं।
नवकंज लोचन कंज पदकर कंज गुणगण माल हैं॥
उनके बचन जो उर धरे, भवरोग तिनके टाल हैं।
ऐसे वृषभ जिनराज को मैं, नमूं कर धर भाल हैं॥२॥

चौपाई

श्रीयुत तीन लोक के नाथ, आदि तीर्थंकर परम विख्यात।
इन्द्रादिक कर पूजित सदा वंदू नंत गुणाकर मुदा॥३॥
कल्पवृक्ष पृथ्वी से गये, आदि प्रजापति प्रगट जु थये।
असि मसि कृषि वाणिज्य सु आदि, सिखलाई करके आह्लाद॥४
इन्द्र जो लायो देवी एक, नृत्य कला में अधिक विशेष।
तिसे निरखके श्रीभगवान, भव तन भोग विरक्त ही ठान॥५॥
जीर्ण तृणवत् राज तजंत, स्वयं बुद्ध वैराग्य धरंत।
वनमें जाके श्री भगवंत, दीक्षा धारी चित हरषंत॥६॥

कायोत्सर्ग धरो षटमास, दु:धर तप कीने गुण रास ।
बन हस्ती कमलन कर सदा, पूजे जिन चरणांबुज मुदा ॥७॥
एक वर्ष पीछे आहार, हस्तनागपुर में निरधार ।
राय श्रेयांस महलके मांह, रत्नवृष्ट सुर अधिक करांह ॥८॥
शुक्लध्यान असि ले तत्कार, घाते कर्म घातिया च्यारि ।
केवलज्ञान प्रगट तब भये, सर्व जगत कर वंदित ठये ॥९॥
मोह अंध्यतमको कर नाश, ज्ञान भान को कियो प्रकाश ।
जगमें रुलते जीव अनेक, दरसायो शिव पंथ विवेक ॥१०॥
सब कर्मनको करके नास, पहुंचे सिद्ध थान सुखरास ।
दर्शन ज्ञान अनंते थये, अष्ट गुणन कर राजित भये ॥११॥
आदि तीर्थकर्ता वृषभेश, वृषलांछन नित यजे सुरेश ।
है अनंत महिमाके स्थान, वंदन करूं कर्म मुफ हान ॥१२॥

दोहा–जिनको धर्म कहो भयो, अब बर्ते अमलान ।
स्वर्ग मुक्त कारण परम, च्यार संघ हित दान ॥१३॥
अन्त समय महावीर जिन, सन्मति सन्मति दाय ।
तिनको बंदूं भाव युत, जातें दुर्गति जाय ॥१४॥
बाकी सब जिनराजको, कर प्रणाम मन लाय ।
त्रिजगत-पति पूजित चरण, भव जीवन सुखदाय ॥१५॥
श्रीमान् जगत सू पूज्य हैं, धर्मतीर्थ करतार ।
सकल विश्व कर वेद्य हैं, द्यो निज गुण सुखकार ॥१६॥
ज्ञान मूर्ति जगवंद्य हैं, लोक शिखरके वासि ।
सिद्ध अनंत सुखी बसे, वंदूं दो निज पास ॥१७॥

पद्धड़ी छन्द

जे पंचाचार धरंत धीर, औरनकौ उपदेशे गहीर।
छत्तीस गुणनके हैं निधान, निजगुण मुझको दो पापहान ॥१८
जे पढ़न पढ़ावनमें प्रवीन, श्रुत द्वादशांगको पाठ कीन।
तिन पाठकके मैं यजूं पाय, सुज्ञान होय कुज्ञान जाय ॥१९॥
ग्रीषम वर्षा अरु शीतमांहि, जे तीनों काल सु तपकराहि।
ते साध नमूं मै बार बार, मेरी भव बाधा टारटार ॥२०॥
जो वृषभसेन नामा यतींद्र, गणधर जो आदि भये मुनींद्र।
सब अंग पूर्वको रचन कीन, ज्ञानांबुध वर्धनको प्रवीन ॥२१॥
श्री गौतम गणधर भये अन्त, चवज्ञान ऋद्धि धारे महंत।
मैं स्तुति करहूं सु बार बार, मेरे सब कारज सार सार ॥२२
जे चौदहसै बावन महान, बाकीमें गणधर जे ऋद्ध खान।
सब मोक्ष नगरमें गए सोय, ते ज्ञान तीर्थ उद्धार होय ॥२३॥
जे कुन्द कुन्द आदिक महान, कविता आचार्य भये प्रधान।
सब जियके हितकारक सुजान, मैंनमनकरूं जुगजोरपान ॥२४
श्री जिनवाणीको कर प्रणाम, जाके प्रसाद बुध हो ललाम।
वैराग्य पत वीजन निहार, ग्रंथादि रचन में प्रथमधार ॥२५॥
श्री जिनमुखतें उत्पन्न जान, भारती जगत् वंदित महान।
मैं बंदूं तुमको बार-बार, मम ज्ञान देहु अज्ञान टार ॥२६॥
जो बाह्याभ्यंतर ग्रन्थ मुक्त, अर रत्नत्रय लक्ष्मी संजुक्त।
ते गुरु मुझपै हूजे दयाल, अपने गुण देकर कर निहाल ॥२७
दोहा—शास्त्रादिक को नमन कर, जग मंगल के काज।
सर्व विघन नाशन अरथ, नमूं सकल जिनराज ॥२८॥

पद्धड़ी छंद

निज पर उपगार हिए विचार, पावन चरित्र वंदूं उदार।
श्री ऋषभ जिनेश तनो महान, जो ज्ञान तीर्थकर्ता प्रमाण ॥२६
श्री भरत आदि चक्री प्रधान, सत भ्रातायुत चरमांगि जानि।
बाहूबलि आदि चरित बखान, सबके भवको बरनन सुजान ॥३०

चौपाई

जिस चारित्रके भाषनहार, पुष्पदंत भुजावली निहार।
जो मैं अल्पबुद्धि अब कहूं, हास्य तनो भय चेत नहीं लहूं ॥३१
तिन नमकरि जो पुण्य उपाय, सोई मुझको होय सहाय।
लघु बिस्तार सहित मैं कहूं मान हृदय में रंच न लहूं ॥३२॥
दोहा—सोई ज्ञान चारित्र है, वं ही काव्य पुराण।
जो हितकारक जीवको, पढ़ो सुनो धर ध्यान ॥३३॥
सत्य कथा मैं कहत हूं, सुनो भव्य सुखदाय।
सार प्रतिष्ठा को लहो, यही ग्रन्थ जगमांहि ॥३४॥

सवैया

सर्व परिग्रह त्याग दियो जिन, त्यागी सर्व कषाय मुनीश।
सर्व इंद्रियां जीत लई जिन, श्रुतसागरके पार जतीश॥
तीन काल जाननको पंडित, दृढ़ चारित माह विख्यात।
जगत जीवके हितके कर्ता, चाहत निजपूजा नहि ख्यात ॥३५
जिन शासन वत्सल आचारज, जिनके बचन परोक्ष प्रमाण।
सत्य बचन महा बुद्ध युक्त हैं, धरमतनो नित करैं बखान॥
कवितादिकके गुणके आश्रय, है जिनकी कीर्ति विराजे स्वेत।
जगतमान्य बहु तपकरि संयुत, ऐसे आचारज जग सेत ॥३६॥

निरभिमान करुणाकरि पूरित, सत मारग उद्योत कराह।
बिन इच्छा निःकरण बांधव निःप्रमाद शुभ आश्रय थाय।।
ग्रंथ आदि रचनेकी शक्ति, जिनके प्रगट भई उर मांहि।
ते धर्मोपदेश के दाता, तिनके बंदे पाप पलाय।। ३७।।

दोहा—ऐसे आचारज कथित, पूरब ग्रंथ उदार।
मैं अब बरनो बुद्ध रहित, वहो करे उद्धार।। ३८।।
ज्ञानहीन व्रत सहित जो, करे धर्म व्याखान।
पंडित पुरुषोंके विषै, होय तास अपमान।। ३९।।

चौपाई

ज्ञान सहित जो व्रत कर होन, भाषे धर्म दया परवीन।
तौ सब नार पुरुष यह कहै, वरहै तो यह क्यों नहीं गहे।।४०।।
दर्शनज्ञान चारित्र भंडार, मुद्रानगन धरें मुनि सार।
जे बाईस परीसह सहै, तेई वक्ता उत्तम कहे।।४१।।
मुनिवर विद्यमान नहीं दिखे, तौ सरधानी श्रावक मुखे।
सुनये आगम धर्म पुराण, जासे होवे निज कल्याण।।४२।।
अरु श्रोता कैसो यक होय, गुरुको कहो विचारे सोय।
सारासार विचार कराय, सारग्रहे जु असारत जाय।।४३।।
खोटी मतिको त्यागी सोय, गुण अनुरागी निश्चय होय।
धर्मशास्त्र सुनिने परवीन, जिनमतकी परभावन कोन।।४४।।
इत्यादिक गुण पूरण होय, उत्तम श्रोता कहिये सोय।
उत्तम कथा सुने बुद्धवान, जो हिंसाबिक गुणजुत ठान।।४५।।

पद्धड़ी छंद

गौमृतका छलनी महिष हंस, शुक सर्व छिद्र घटसम विध्वंस।

फुन डांस जोक अरु मार्जार, बकरा बगला जु सिल विहार ॥
इम श्रोता चौदह भेद जानि, उत्तम मध्यम जु जघन्य मान ।
जो घास खाय अरु दुग्ध देय, गौ सम श्रोता बहु पुन्य लेय ॥४७॥
पै वार मांह तैं दुग्ध पीय, सो हंस सया श्रोता सु धीय ।
यह दो श्रोता उत्तमसुजान, अरु मध्यम मृतिकाके समान ॥४८
बाकी ग्यारह सो अधम जान, इम श्रोता भेद कहे बखान ।
जो श्रवण विषैं प्रीति महान, शुभ अर्थ तनी धारण सु जान ॥
शुभ श्रोताके आगेर वन्न, सतगुरकौ भाषों होय धन्न ।
जैसे मणी काँचनके मझार, शोभा धारे अत्यन्त सार ॥
वर कथा पढ़ो तुम भव्य जीव, जो सकल तत्व दरसा तदीव ।
षटद्रव्य पदारथ नव स्वरूप, इन सबको जामें है निरूप ॥५१
जहां पुण्य पापका फल अपार, तप ध्यान व्रतादिकका विचार ।
संजय तपको कीनो बखान, सो कथा सुनो तुम पाप हान ॥५२
जहां तप कर साधु मोक्ष जाय, कितनेयक सुर पदवी लहाय ।
जहां यह वरनन हो पुण्यदाय, सो कथा सुनो नर जन्म पाय ॥५३
जहां चौबीस तीर्थंकर पुराण, अरु चक्रवर्ती बलभद्र जान ।
वर मांगनको जहां कथन होय, सो धर्म कथा तुम सुनो लोय ॥५४
जहां राग भावको ह्वै विनाश, संवेग भावका जहां प्रकाश ।
शुभ भावनतैं सो सुन कथान, वैराग्य तनी जननी बखान ॥५५
जिस सुनतैं पातक नास होय, शुभ पुण्यबन्ध कारण सु जोय ।
जिस सुनने सेती वृद्ध होत, सम्यक्त ज्ञान चरित उद्योत ॥५६
इत्यादिक गुण पूरण उदार, सत कथा सुनो जो जिन उचार ।
जो सत्य धर्म कारण बखान, शृंगारादिक रसकी त्यजान ॥५७

दोहा–जिस कर आरत रौद्र ह्वै, शुद्ध ज्ञान नस जाय ।
युद्धादिक वरनन कहो, सो विकथा दुखदाय ॥५८॥
द्रव्यक्षेत्र अरु तीर्थ शुभ, काल भाव फल जान ।
प्रकृति अंग यह सात हैं, कथा तने पहचान ॥५९॥

चौपाई

द्रव्य जीवादिक जानो भाय, क्षेत्रलोक तीनो सुखदाय ।
तीर्थनाथ का रचित जु होय, सोई तीरथ जानो लोय ॥६०॥
भूत भविष्यति वर्त सु मान, यही तीन काल पहिचान ।
फल तत्वोंका जानन होय, ज्ञायक भाव सदा अवलोय ॥६१
ये ही सातों अंग निहार, कथा तने बहु सुख दातार ।
जो जिस औसर कहनो होय, दिखलावे अघ तमको खोय ॥६२
वक्ता श्रोता कथा सुजान, इनके गुण समझो बुद्धवान ।
जगत गुरुकी कथा महान, धर्म तनी माता पहचान ॥६३
जो संवेग उपावन मान, सो भव जीव सुनो धर ध्यान ।
जा फलसे सुरगादिक पाय, अनुक्रम शिवपुर माह बसाय ॥६४
ये ही जंबूद्वीप महान, जंबू वृक्षन कर द्युतिमान ।
लक्ष महा योजन विस्तार, द्वीप समुद्रनके मध्य सार ॥६५
तामध्य नाभि समान बखान, मेरु सुदर्शन शोभावान ।
एक लक्ष योजन को उच्च, चैत्यालो सोहै अति स्वच्छ ॥६६
मेरु सुदर्शन पश्चिम भाग, क्षेत्र विदेह धरे सो भाग ।
जहां तीर्थंकर बिहरें नित, मुनन उपदेश देय शुभ चित ॥६७
जहां मुनि तप कर होत विदेह, तातें नाम सार्थिक येह ।
तिसकी उत्तर दिशा मझार, सीतोदा दक्षिण तट सार ॥६८

नीलाचल पर्वतके जान, उर्भ मालनी नदी बखान।
ताकी पूरब दिशा मझार, मेरु सुदर्शन पश्चिम सार ॥६६
गंधिल नाम देश पहचान, विश्व ऋद्ध भोगन को थान।
धर्मादिकको अतुल प्रभाव, स्वर्ग खंड मनु उतरो आय ॥७०

पद्धड़ी छंद

जहां वन थल सरिता पुरललाम, कुकडा उड़ान तहां बसैं ग्राम।
सर्वत्र जु बिहरे जह मुनोश, धर्मोपदेश दाता मुनीश ॥७१
अति बैठे धर्म सु ध्यान लाय, अरु शुक्ल ध्यानको कर उपाय।
जहां दिखे नाहिं कुलिंग कोय, नाहीं कुदेवके मठ जु होय ॥७२

पायता छंद

पुर पट्टन खेटज जहां है, अरुद्रोण मटंवता तहाँ है।
अरु दुर्ग बनन को सोहै, जिन चैत्यालय मन मोहै ॥७३
जहां हेम रत्नमय थाई, प्रतमा सुरनर सुखदाई।
बहुते नर रक्षा काजे, बहु आयुद्ध धरे बिराजे ॥७४॥
गृह गृहमें पूजा करहैं, नर नारी आनंद भरहैं।
अंग पूर्व प्रकीर्णक जानौं, जहां बुद्धजन करै बषानौ ॥७५॥
तिनहींको भाव नित सुनहैं, नहि और कुशास्त्र कुमुनहै।
यति श्रावक धर्म जहां हैं, नहि और कुधर्म तहां हैं ॥७६॥
सत शील दया मय राजे, श्री जिनशासन छबी बाजैं।
चव संघ जहां शोभंते, नहीं अन्य मतांतर संते ॥७७॥

गीता छंद

क्षत्री सुवैश्यरु शुद्र तीनों वर्ण जहां नित वर्तते।
तीर्थेश गणधर रहित गणना, विचरते जग वंद्यते ॥

बलिभद्र नारायण सु प्रतिहर, चक्रधारी जानिये ।
जहां कोट पूरब आयु धनुषसौ, पंचकाय प्रमाणिये ।।७८।।
जहां एक जैन धर्म सिद्धांत वर्ते, नाह कुत्सित धर्म है ।
सम्यक्त धर जिय मोक्ष पावें, जहां अविचल शर्म है ।।
तिस मध्य विजयारध सु पर्वत रूपमय शोभै महा ।
जिसकी ऊचाई पंचविंशत, दीर्घ योजनतें कहा ।।७९।।

भुजंग प्रयात छंद

चतुर्थांश भूमध्य राजे जिसोका,
नवोकूट सोभे सु सुंदर तिसोका ।
गुफा दोय बाजे दुश्रेणी बिराजे,
तिनोंकी प्रभा देखके मर्म भाजे ।।८०

मोतीदास छंद

महगंधलि देशतनो बिथार, मानो नायन नौगज उचार ।
पंचास परम योजन सुजान, भूमाह तास चौडो बखान ।।८१।।
निज लक्ष्मी कर गरविष्ट होय, कुल गिरकी हांसो करे सोय ।
दसयोजन ऊपर जाय देख, श्रेणी जहां दोय पड़ी विशेष ।।८२।।
इक नव योजन चौड़ी बताय, द्वादस योजन लम्बी कहाय ।
पचपन पचपन नगरी बखान, नभिगामिनकी सास्वती जान ।।
यह नगरी स्वर्गपुरी समान, जहां खाई कोट लसे महान ।
जहां एकसहज गौंपुर प्रमाण, सत पंच लघु द्वारे सुजान ।।८४।।
द्वादश हजार पथ सोभमान, ये नगरी एकतनो बखान ।
इक कोट ग्राम जा संघ होय, सज्जन जन सेती भरे सोय ।।८५।।
उससे दश योजन और जाय, दो तरफ होय श्रेणी लखाय ।
तहां व्यंतरपुर दैदीप्यमान, शुभ स्वर्णरत्नमय तुंग थान ।।८६
तहां योजन पंच उतंग जाय, शुभ कूट बिराजित रश्मि थाय ।

यहां सिद्धकूट जिनवर सुथान, मणि स्वर्णमई दैदीप्यमान ॥८७
जहां जिनवर बिंब विराजमान, खग देव करें तहां नृत्य गान।
जहाँ चारण मुनबिहरे सदीव, जहाँ ध्यान धरे नित भव्यजीव ॥
बाकी सब कूट रहे सु आठ, तहां व्यंतर देवन तने ठाठ।
मणि काँचनकर दैदीप्यमान, तिन देवनतने अवास जान ॥८६
दोहा—इत्यादिक बरनन सहित, विजयारध सोभाय।
उत्तर श्रेणी के विषैं, अलका नगर बसाय ॥९०॥
जहाँ धर्मात्मा बसत हैं, करते पूजा जाप।
सामायक मुनदान दे, हरते भव भव पाप ॥९१॥
केयक पात्र सुदान कर, लहै हैं अचरज पंच।
और भव्य तिन देखके, करते धर्म सु संच ॥९२॥

चौपाई

तीन काल सामायक करै, दिव्य विमान माह संचरै।
यात्रा पूजा करं सदीव, मेरु आदि मंदिर भव जीव ॥९३॥
मानुषोतरके मध्य सु थान, सब जिनवर अरु गुणधर मान।
अरु मुनीश जिनप्रतिमा जहाँ, कृत्याकृत्यम पूजे तहाँ ॥९४॥
नानाविधि ले पूजा द्रव्य, भक्त करैं मोक्षार्थी भव्य।
पर्वीके उपवास सु करं, समकित सहित शीलव्रत धरै ॥९५॥
धर्म अर्थ अरु मोक्ष सुजान, तिन साधुनको चतुर सुभान।
और शुभाचरनन कर सोय, धर्म दिपावे दुर्मत खोय ॥९६॥
याही धर्म तने परसाद, होय अनेक संपदा आदि।
सकल सार सुख यासे होय, सब विद्या सिद्ध यासे जोय ॥९७॥
दीक्षा धर सन्यास सु गहैं, प्राण त्याग करि स्वर्ग हि लहैं।
जावैं ग्रीवक केई जीव, केई सर्वारथ सिध पीव ॥९८॥
केयक चरमाँगी तप करै, स्व संवेद भाव उर धरै।
सब कर्मको करके नाथ, करै मोक्ष थानक में वास ॥९९॥

स्वर्ग मुक्त कारण जो धर्म, ताको सेवे खगपति पर्म ।
तहाँ राजा है अतिबल नाम,ख गाधिपत्तसे सेव्य ललाम ।।१००
चरमाँगो महाशील सुवान, सम्यग्दृष्टी भोगी जान ।
धर्म कर्ममें तत्पर सोय, साधर्मिनतें वत्सल जोय ।।१०१
दिव्य लक्षण कर सयुक्त, न्यायमार्गमें अति आशक्त ।
कीर्ति क्रान्त संपदा सुजान, शोभादिक गुणको है खान ।।१०२
मनोरमा नामा पट नार, सब लक्षण संपूर्ण निहार ।
धर्म कर्म कर सती बखान, नाम महाबल पुत्र सुजान ।।१०३
रूप क्रान्त लावण्य सु सार, सबही आय लियो अवतार ।
बाल अवस्था तज गुणरास, जैन सु उपाध्यायके पास ।।१०४
पढ़ अनेक विद्या बुधवंत, कला विज्ञान अरु जैन सिद्धान्त ।
इन्द्र समान सु सुतको देख, खगपति हर्षित भयो विशेष ।।१०५
पद युवराज सु दियो बुलाय, सब बान्धवजनको सुखदाय ।
पुत्र सहित नृप सोभित भयो, जैसें रवितें नभवर नयो ।।१०६

जोगीरासा चाल

इस अंतर खग काल लब्धिवस, भव भोगन बैराजे ।
जगत विभूति अथिर सब लखके, आतमरसमें पागे ।।
विषयों में आशक्त होयके, काल बहुत मैं खोयो ।
संजम धर निज काज न कीनों, सुख को बीज न बोयो ।।१०७
विषय चाहका सुख बुरा है, प्राण हरे निश्चय से ।
दाह क्लेश आरतको दाता, भरो हुवो दुःख भयतें ।।
जहर पुष्पवत दुखदायक है, अघको पुंज बखानो ।
विष धर सम भोग बुरे हैं, अनरथ कारण जानो ।।१०८

सेवत सेवत तृप्त न होवे, हो सुखकी क्या आशा ।
देह अपावन अशुचि घिनावन, निंद्य वस्तु को वासा ॥
यह शरीर संसार बढ़ावे, बहु दुःख वारध जानो ।
कर्म बन्धको मूल यही है, यातैं बुद्ध बखानो ॥१०९

राजभोग स्त्रीके कारण, मूरख बंध फंसे हैं ।
बाँधव बंधन सम निश्चय से, संपत बिपत बसे हैं ॥
राज धूल सम पापमई है, चिन्ता दुक्ख बढ़ावे ।
योवन जोवन धन बिजलीवत्, क्यों प्राणी सुख पावे ॥११०

नहीं किंचित सार जगतमें, सर्व जिनेश्वर जानो ।
मोक्ष हेत रत्नत्रय साधो, यही यतन उर आनो ॥
राज छाँडके दीक्षा धारूं, यह नृपने उर धारी ।
पुत्र बुला अभिषेक कराकर, सौंपी संपति सारी ॥१११
शीघ्र सु वनमें जाके खग पति, तृणवत् ऋद्ध सब त्यागी ।
अन्तर बाहर परिग्रह सब तजि, शल्य रहित बड़भागी ॥
बहु विद्याधर संग लेयकर, जैन सु दीक्षा धारी ।
स्वर्गमुक्तकी जननी जानो, कर्महान सुखकारी ॥११२
पंच महाव्रत धार जतीश्वर, सुमति गुप्तिकौ धारें ।
अष्टाबिंशत मूल गुणनियुत, उत्तर गुण विस्तारे ॥
ग्राम देश में विहर तपोधन, कानन माह बसंते ।
द्वादशांगको पढ़त निरंतर, आतम ध्यान करंते ॥११३
जिन स्वरूप धर निप्रमाद ह्वै, इन्द्री पंच दमंते ।
द्वादश विधि तप तपे निरन्तर, गिरिकंदर निवसंते ॥
ध्यान खड्ग कर कर्म रिपु हत, केवलज्ञान उपायो ।
सुर असुरन कर पूजित ह्वैके, अजर अमर पद पायो ॥११४

पद्धड़ी छंद

अब महाबल नामा नृप उदार, चारों मंत्री युत राज धार।
तिनके अब नाम करूं बखान, इक महामती संभिन्न जान॥
शुभमति स्वयंबुद्धि महान, ता माह स्वयंबुद्ध जैन मान।
सम्यग्दृष्टी बहुगुण निधान, व्रतशीलयुक्त अति बुद्धिवान॥११६
बाकी तीनों है दुराचार, मिथ्या कुमार्गकी पक्ष धार।
जैनधर्म बहिरमुख है सदीव, नास्तिक्य पापमंडित अतीव॥११७
ते राजभार धारंत धीर, चारों मंत्री सब हरत पीर।
नृप कामभोग भोगे गहीर, निज इच्छापूर्वक धीर वीर॥११८
पूरव भवमें जो पुण्य कीन, तिसहीको भोगे नृप प्रवीन।
विद्या विभूत संपत निधान, बिन धर्म जु भोगे हर्षमान॥११६

चौपाई

इस प्रकार शुभ कर्म पसाय, राजलक्ष्मी नृप भोगाय।
खेचरपतिनि कर सेवित सदा, फलौ पुन्यतरु ये सर्वदा॥१२०
धर्म जगतसुख कारण जान, सब दुखहर्ता याहि पिछान।
धर्म तनौ है क्षमा सुमूल, ताकरके हत कर्म्म स्थूल॥१२१

मालनी छंद

जिनवर वृषभेष पुन्यमूर्तो महात्मा,
तसु विशद चरित्र जो पढ़े पुन्य आत्मा।
तिन घरि मध होवे रिद्धि सिद्धि सुबुद्धी,
सुख समुद्र बढ़ावे ज्ञानकी होत लब्धी॥ १२२॥

पद्धड़ी छन्द

तुमसी तुलसी न विभूत कोय, बुद्ध सागर बर्द्धनचन्द्र जोय।
सो अब मुझको दीजै दयाल, भव बाधा मेरी टाल टाल॥१२३

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचित श्रीवृषभनाथचरित्रसंस्कृत
ताकी देशभाषाविषै इष्टदेवनमस्कार करण महावल
खगेंद्रराज वर्णनो नाम प्रथम सर्गः॥१॥

द्वितीय सर्ग

वृशेशं लोके शंबर वृषम चिन्हं पग विषे,
भजे तोकौ योगी चित्त विमल होके तुम लखे।
सबै कार्या त्यागे बन गिर गुफा माह निवसे,
विरागी हो छोड़े सकल अघ सर्वेन्द्रियकसे ॥ १ ॥

पद्धड़ी छन्द

एक औसर राजा अति उदार, सिंहासन पै राजे सुसार।
सेनपति श्रेष्ठी अरु प्रधान, सब वर्ष वृद्धको हर्ष ठान ॥ २ ॥
बहु भूपन की आई सु भेट, तिसको लख हर्षित भयो खेट।
गंधर्व गान गावें अपार, आनन्द सहित तिष्ठे उदार ॥ ३ ॥
देखो राजा को प्रीतवंत, तब स्वयंबुद्धि हित सो भनंत।
सुनि स्वामि मेरे वचनसार, हितकारी अरु अघके प्रहार ॥ ४ ॥
यह खगपतिकी लक्ष्मी महान, पाई सब पुण्य सु योग जान।
ये पांचौं इन्द्री तने भोग, तुम पाये हैगे पुण्य योग ॥ ५ ॥
धर्महितैं इष्ट सु प्राप्त होय, अरु काम सुखादिक भी सु जोय।
तातें कर प्रीति जजो महान, जिस धर्म थकी हो मोक्ष थान ॥६
सत भोग रोज संयत् प्रताप, उत्तम कुलमें ले जन्म आय।
वपु दिव्य सु होवे महान, पंडित चिरजोवी पूज्यमान ॥ ७ ॥
सब जनमनकौं प्रिय होत जान, यह धर्म तरोवर फल महान।
नहीं मेघबिना कहीं बीज होय, नहीं बीज बिना अंकुर जोय ॥८
तप बिना कर्मकौं अन्त नांह, बिन रत्नत्रय नहि शिव लहाय।
अनुकंपा बिन नहीं धर्म होय, नहीं कीर्ति न शुभ आचरण जोय

अरुधर्मबिना सुख होत नाह; ताते भव नित वृषको करांहि ।
धर्म तनो मूल दया सुभान, शुभ सत्य शोलव्रत आदि जान ।।१०
इस दया तनौं ऐसो प्रभाव, केवल दृग ज्ञान तनो लखाय ।
दम दया क्षमा अरु सौच जान, वृत तपअरु शील करो सुदान ।।११
मन वचन कायको करहिं शुद्ध, वैराग गहो लह धर्म बुद्ध ।
यह लक्ष्मोचपला सम बखान, जगछलत फिरतकुलटा समान।।१२
इस थिर करनेकी चाह होय, तो धर्म गहौ सब भर्म खोय ।
इम स्वामी हितकारक महान,बच पंथ्य तंथ्य कल्याणदान ।।१३
वृषकारी बच कह स्वयं बुद्ध, फिर मौन ग्रहो जिस हृदय शुद्ध ।
वृष वच सुनके तीनों प्रधान, महामत्यादिक बोले अयान ।।१४
तोनों दुर्गति गामी बखान, सत धर्म रहित संयुक्त कुज्ञान ।
जो धर्मी हो तो धर्म होय, जहां जीव नहीं फल लहे कोय ।।१५
पृथ्वी अपतेज पवन आकाश, इनका संजोग चेतन प्रकाश ।
जिमि मद सामग्री भले होय, मदराकी शक्त प्रकाश जोय।।१६
फिर धर्म्म कारणको काज कांह, नहिं पुन्य पापरजन्म नांह ।
जल बुद्ध दवत यह जीव जान, वपु क्षयतैं जोवनसे प्रमाण ।।१७
तिस कारण इन्द्री सुख छोड़, तप तपवो जानो वृथा घोर ।
मुख आगे आयो ग्रास खोय, कर अंगुली चाटत लुब्ध होय ।।१८
तिन मंत्रिनको सुनिके बखान, मत भूतवाद आश्रित सुजान ।
तब बोलोमंत्री स्वयं बुद्ध,तिन मत खंडनिकौं विपुल ऋद्ध ।।१९

हे राजन सुनो सुवृष स्वरूप, है जीव अरु धर्म अधर्म भूप ।
परलोक माह संसह सु नाह, फल पुन्य पापको सब लखाह ।। २०
सुख दुःख अनेक प्रकार जान, येबुद्धवान करहैं श्रद्धान ।
यह बात प्रसिद्धजगके मझार, तिसके सुन नवदृष्टांतसार ।। २१

चौपाई

जीव भाव पे ये दृष्टांत, मद्य तनौ बहु अघकी पांत ।
सो असत्य बुद्धजनकर निंद्य, जो मतिबाला बके स्वछंद ।।२२
उस सामग्रीमें मद शक्ति, प्रथमहि थी सो होगई व्यक्त ।
पुद्‌गलको चेतन नहि होय, चेतन बिना ज्ञान नहीं जोय ।।२३
जीव धर्म अरु जागत सु ज्ञान, इस पर लोकतनो व्याख्यान ।
जा दृष्टांतसे निश्चय होय, ताह सुनो सबनन भ्रम खोय ।।२४।।
जो यह जीव अनादि न होय, स्तनपै पान करै शिशु कोय ।
देखो तव अज्ञान प्रभाव, मरकर होहै राक्षस राव ।।२५।।
दो चारक जिय सांप्रति भये, जीव बिना राक्षसको थये ।
जीव भवांतर ज्ञान सु होय, पृथ्वी तल प्रसिद्ध यह जोय ।।२६।।
जीव नहीं था तौ भव ज्ञान, होय किसे तुम यही बखान ।
पिता न सम गुण पुत्र लहाय, यही बात प्रत्यक्ष लखाय ।।२७।।
सकल जीव कर्मनके वसि, क्यों कर हो जावे सादृश्य ।
एक धर्म कर सुरग सु जाय, एक पाप कर नर्क सिधाय ।।२८।।
धर्म धर्मके अंग अभाव, नहि हो सकते करो लखाय ।
मृतक माह ये पांचो होय, क्यों नहि जीवे बैठो सोय ।।२९।।
ऐसे नव दृष्टांतसु कहे, जीव अस्ति कारण सरदहे ।
धर्म पापको फल सब जान, ये बुद्धवंत करो सरधान ।।३०।।

ऐसे अब लोक मझार, धर्म धर्म फल नैन निहार ।
सुख दुख भोगे सब ही जीव, ये प्रत्यक्ष तुम लखो सदीव ॥३१॥
कोयक पुन्य उदै धारंत, दिव्य पालकी चढ़ चालंत ।
केई ताको लेकर चले, भोगत पाप वृक्षको पले ॥३२॥
को धर्मातम धर्म पसाय, गज अस्वादिकपै चढ़ि जाय ।
कंयक आगे दोड़े नरा, पापतनो फल परतक्ष करा ॥३३॥
बिन उद्यम केई लक्ष्मी पाय, केई भ्रमण करत न लहाय ।
केई पुन्यातम भोगे भोग, सुखसागर मध्य रमत अरोग ॥३४॥
केई दुक्ख करि पूरित रहे, रोग क्लेश आदिक दुख सहे ।
धर्म पाप को फल इम जान, बुधजन धर्म धरो अघहान ॥३५॥
इत्यादिक दृष्टांत दिखाय, ज्ञान सूर्यकर तिमिर नसाय ।
राजा और सभाजन सबै, तिस बचनामृत पीयो तबै ॥३६॥
जीवादिक दृड़ करने काज, सुनिए एक कथा महाराज ।
देखी सुनी अनुभवी थाय, कथा प्रमाण कहूं हितदाय ॥३७॥
तुमरे बंस विषै जो राय, तिनकी कथा सुनौं सुखदाय ।
ध्यान शुभाशुभको फल जोय, कहूं सुनौ तुम राजा सोय ॥३८
तुमरे बंस विषै राजान, अरविंद नाम खगाधिप जान ।
विषयशक्त प्रतापी थाय, वृत शीलादिक दूर बगाय ॥३९॥
विजया देवी राणी तास, दिव्य रूपमय आनंद रास ।
हरिश्चन्द्र कुरुश्चन्द्र सयान, ताके दो सुत उपजे आन ॥४०॥
बहु आरम्भ परिग्रह धंध, रौद्र ध्यान कर कर्महि बंध ।
विषयाशक्ति होय अति राय, धर्म वृतादिन भावन भाय ॥४१
लेश्या कृष्णरु तीव्र कषाय, ता करि कर्म बांध दुखदाय ।
नर्क आयुको बांध खगेश, जहां दुख हैंगे अधिक विशेष ॥४२॥

कबहूक पाप उदै भयो श्राय, कुमरण निकट हुवो दुखदाय ।
दाहज्वरसे तप्त शरीर, दुःरूह दुख व्यापो बहु पीर ॥४३॥

पद्धड़ी छन्द

चंदन कुंकम कर्पूर सार, बहु तनमें लायौं तापहार ।
तन थिरता नहि धारत नरेश, बहु बढ़ो दाह व्यापो क्लेश ॥४४
तिस नृपकी जो विद्या महान, सो विमुख भई अतिही सुजान ।
पुण्य क्षयतै इस जगत मद्ध, नस जावैं सब संपत सु ऋद्ध ॥४५॥
नृप गात्र विषै वेदन असार, तिस दाह थकी विह्वल अपार ।
युगसुतको तब लीनो बुलाय, तिनसे तब ऐसें बच कहाय ॥४६॥

नाराच छन्द

सुनौं सुपुत्र सर्व अंग ताप में जु हो रहा,
सुचंदनादि कुंकुमादि सीत वस्तु सब गहा ।
तटस्थ सीता नद्दिके प्रदेश सर्व सीत है,
तहां मुझेसु लेचलो जहां न कोई भीत है ॥४७॥

चौपाई

जहां कल्पद्रुम है अधिकाय, सीतपवन कर ताप नसाय ।
वहां यह दाह सर्व क्षय होय, विद्या कर ले चाले मोह ॥४८॥
इम बच सुनकरि पुत्र महान, नभ चालनकों उत्तम ठान ।
विद्या विमुख भाव तब जोय, पुण्यक्षयतें कछु नहीं होय ॥४९॥
इस आगे अब सुनो बखान, दोय विस्मरा लड़ी महान ।
पूंछ कटत तिस रक्त जु झरो; सो राजा के मुख पै परो ॥५०॥
तिस पड़नेतें साता भई, दाह शाँत थोड़ीसो थई ।
तबै विभंगावधि उपजाय, नर्कतनो कारण दुखदाय ॥५१॥
तिस करके जानों मृग थान, कुरविंद सुतसे वचन बखान ।

इस वनमें है मृगकी रास, तिनको बांध लगा के पास ॥५२
मृगके रक्त तनो सर भरो, मेरी इच्छा पूरण करो।
मैं जल क्रीड़ा करहूं तहाँ, नातर मर्ण होय मम यहाँ ॥५३
इम वच सुन सुत वनमें गयो, बहुत हिरण तहाँ देखत भयो।
पासो करके पकड़े सोय, यथा पारधी धीवर होय ॥५४
तिसकौं पाप करत मुन देख, तीन ज्ञान संजुक्त विशेष।
तोह पिता की थोड़ो आयु, बेमतलब क्यों पाप कमाय ॥५५
तेरो पितु करके अपघात, रौद्रध्यान मर नर्क हि जात।
तुम क्यों वृथा पापको करो, निंद्य नर्कमें जाके पड़ो ॥५६
तब वह कहत भयो नृप पूत, मोह पिता त्रय ज्ञान संयुत।
छिपी भई सब जानें सोय, कैसे नर्कगमन तसु होय ॥५७
तबसौं मुनवर कहतो भयो, तोहि पिता अघ पंडित कहो।
पाप हेतकौ जानत सोय, पुन्य वक्तको ज्ञान न होय ॥५८
तुम जाकर नृपसे पूछाय, बनमें क्या क्या वस्तु रहाय।
जो वो हमकौ देय बताय, तौ ज्ञानी नहिं झूठौ थाय ॥५६
ये सुनि नृप सुत गृह पथ लीन, जाय पितासौं पूछन कीन।
मृग सिवाय बन में कछु और, क्या क्या है तुम कहौ बहौर ॥६०
तब नृप कहौ और कछु नाह, जब इन मुन वच निश्चय थाय।
लाल रंग की वापी भरी, ता मध्य पापी क्रीड़ा करी ॥६१
तास प्रवेश करंत इम जान, मनु बैतरणी करे सनान।
तिसमैं न्हाके कुरले करै, कुबुद्ध सहित बहु आनंद धरे ॥६२
जानों लाख रंग दुखदाय, क्रोध अगन कर प्रजली काय।
पुत्र मारनेको दोड़ियो, गिरौ छुरीने उर तोडियों ॥६३

रौद्रध्यानसै पाई मीच, नर्क गयो अघ तरुकौं सींच ।
इसी कथाके जाननहार, वृद्ध सुषग तिष्टत इसवार ॥६४॥
एक कथा तुम और ही सुनौ, देखो सुनी अनुभवी गुनौ ।
तुमरे वंश विषैं राजान, दंड नामा एक खगपति जान ॥६५
देव सुन्दरी राणी मान, मणमाली सुत तास पिछान ।
पद युगराज तासको दियो, आप कामसुख भोगत भयो ॥६६
नेम व्रतको नाम न कोय, मायाचार कुटिलता जोय ।
खोटे कर्ममें रत होय, तिर्यग आयु खग बाँधी सोय ॥६७॥
आरत ध्यानथकी सो मरो, पापथकी अजगर अवतरो ।
नृपके भयो खजाने मांह, ताकौं जातिस्मर्ण लिहाय ॥६८
निज सुत बिना न घुसने देय, और जाय तिसको डस लेय ।
हृदबारण नामा मुनिराय, अवधिज्ञानलोचन हितदाय ॥६९
मणिमाली नृप तिनकौ देख, नम करि हर्षित भयो विशेष ।
अजगरकौं वृतांत सुनाय, तब मुनिवर तिस भेद बताय ॥७०॥
तुमरो पिता दंड नृप थाय, पाप थकी अजगर तब पाय ।
इम वच सुन अजगरके पास, गयो सु राजा धरे हुल्लास ॥७१
कहत भयो सु पिता तुम सुनौं, तुमने लोभादिक नहिं हनौं ।
विषयाशक्ति रहै तुम सदा, माया क्रोधादिक धर मदा ॥७२
तिस करके खोटी गति पाय, सकल आपदाकौं समुदाय ।
विषयनकौं सुख निंदत जोय, कालकूट विष सम अवलोय ॥७३
परिग्रह इच्छा दुखकी दान, कर संतोषत जो बुधवान ।
खोटो ध्यान दुखाकर थाय, धर्मध्यान कर ताह नसाय ॥७४

धर्म अहिंसा लक्षण जान, ताह भजो तुम पुण्य निधान ।
पंचेन्द्रीके सुख सब त्याग, पंच अणुव्रत धर बड़ भाग ॥७५॥
जो दुर्गति बारधके पार, करे शीघ्र शुभ गतिमें धार ।
पूर्वोपार्जित पाप जु हरै, सुरग मुकतिकी प्रापत करै ॥७६॥
इस वृष बिन नहि धर्म सु कोय, जीव उधार जासमे होय ।
दुर्गति दुखसे रक्षा करै, स्वर्ग मुक्त मारग संचरै ॥७७॥
दोहा–सुत संबोधन वचन सुनि, अजगर जगो महान ।
लख ससार विचित्रता, निज निंद्या बहु ठान ॥७८॥
गुरु वच सुन व्रत धारकर, परिग्रह इच्छा त्याग ।
श्रावकके व्रत धारकर, धर्मध्यान चित पाग ॥७९॥
आयु तुछ लख छाँड़ियो, चव विधिकौ आहार ।
मरण समाधि थकी चयौ, व्रत फल पायौ सार ॥८०॥
प्रथम स्वरगमें देवसो, भयो महर्धिक सार ।
अवध ज्ञान परभावतैं, पूरब भव सु निहार ॥८१॥
सुर आयो इस अवनिपै, मणि मालोकौं पूज ।
रत्नहार देतो भयो, मनमें आनन्द हूज ॥८२॥
सो वो हार प्रत्यक्ष है, राजाके गल मांह ।
सर्व लोक इस कथाकौं, जानत हैं शक नाहिं ॥८३॥
आगें सुन एक और कथानक, ताह सकल जानैं धीमान् ।
जिसके देखनहारे लोय, वृद्धसु खग किंचित अब होय ॥८४

गीता छन्द

भूप सतबल नाम जानौं नृप पितामह थायजो ।
सो एक दिन भव भोग सुखसे हो वैराग्य सुभायजी ।
तुमरे पिताको राज भार विभूत सब सौंपी सही ।
सम्यक्त ज्ञान सु शुद्ध करके सर्व श्रावक व्रत ग्रहो ॥८५॥

मन वचन काय त्रिशुद्ध करके, शक्ति सम निज तप करौ ।
पुन देव आयु सुबुध कीनौं, सदाचार सबै धरो ।
पुन अन्त सल्लेखन जु करके, वपु कषाय जु कृष करे।
दीक्षा जु धार समाध युत, तज प्राण सुरग सु अवतरे ॥८६
चौथो सुसुर्ग महेन्द्र नामा, तहाँ महर्द्धिक अवतरौ ।
जहाँ सात सागर आयु हाई, धर्म्म ध्यान सु फल बरौ ।
तुम बालवय क्रीड़ा करनकौं, चार मंत्री संग लिये ।
आनंद युत बहु केल कीनी, मेरु पर्वतपै गये ॥८७॥

छन्द पायता

सो अमर जिनालय आयो, जिन पूज सुचित हर्षायो ।
तुमकौं सनेहसे देखो, उरमें धर हर्ष विशेखो ॥८८॥
सो कहत भयो इम वाणी, सुन पुत्र सीख सुखदानी ।
जो स्वर्ग मुक्त सुख देवे, सो धर्म्म तू क्यों नहीं सेवे ॥८६॥
समरथ सब काज करनकौ, सो धर्म न भूलो छिनकौ ।
तुमकौं मैं राज सु दीनौं, वृष फलको स्वर्ग सु लीनौं ॥६०॥
ऐसो जिन धर्म सु जानौं, शिवदाता भव हिय आनौं ।
अब और कथा सुन लीजे, जिस सुनतैं सब अघ छीजै ॥६१॥
बहु खगपति नृप कर वंदित, तुम पढ़वाया अति पंडित।
तिस नाम सहसबल जानो, शिवगामी बहु गुण खानो ॥६२
सो एके दिन बढ़ भाग, भव भोगन सो वैरागै ।
सतबल निज पुत्र बुलायो, सब धन तसुकौं सौपायो ॥६३॥

चौपाई

बाह्याभ्यंतर परिग्रह त्याग, स्वर्ग मोक्ष कारण बड़ भाग।
अर्हंत दीक्षा धारण करो, मुदित होय वृषधी अनुसरी ॥६४॥

घोर तपस्या करते भये, शुक्लध्यान असि करमें लये ।
घाति कर्मको करके नाश, केवलज्ञान कियो परकाश ॥६५॥
तीन जगतमें दीप समान, देवादिक लष पूजन ठान ।
शेषकर्म हत तनको त्याग, पहुंचे मोक्षमाहि बड़भाग ॥६६॥
तैसे ही तुम पिता महान, राजभोग दुखदायक जान ।
ह्वै विराग जिन दीक्षा धरो, तुमकों राज दियौ उस घरी ॥६७
तप कर घाति कर्म क्षय ठान, उपजायो वर केवलज्ञान ।
शेषकर्म हत शिवको गये, द्वैकल्याणक सुर पूजये ॥६८॥
तिनकी केवल पूजा काज, देवागमन भयो महाराज ।
हमने तुमने सब देखियो, सब प्रत्यक्ष श्रवनपे भयो ॥६९॥
धर्म्म अधर्म्म तनो फल येह, प्रगट निहारौ सबने तेह ।
तुमरे वंश विषें भूपाल, तिनकी कथा प्रसिद्ध गुणमाल ॥१००
इन दृष्टांतको मतलब येह, शुभ अरु अशुभ कहो फल तेह ।
ध्यान शुभाशुभ जैसो कियौ, तैसोहो फल ताने लियौ ॥१०१
रौद्र ध्यान बस नर्कहि गयौ, तिर्यग दुख आरततें लियो ।
धर्म ध्यानसे सुरग गत जाय, शुक्ल ध्यानसे शिवपद पाय॥१०२
आर्त्त रौद्र दोय खोटे ध्यान, दुर्गति ले जावे दुख खान ।
तिनकौ तज शुभध्यान सु करौ, धर्म शुक्ल बुधजन आचरौ॥१०३
धर्म पापकौ वरनन सुनौं, सकल सभाजन मनमें गुनौं ।
द्रष्टांतनिकरि जानौ यही, जोव पाप वृष है सब सही ॥१०४
खोटे मति खोटे बच छोड़, पकड़ो पाँचौं इन्द्री चौर ।
तुम बुधवान विचारौं यही, मुक्त हेत वृष धारौ सही ॥१०५
इम मंत्री वच सुनिकर जबै, कथा धर्मादिक लक्षण सबै ।

सारी सभा मुदित तब भई, मंत्रीकी थुति करती हुई ॥१०६

पद्धड़ी छन्द

यह स्वयं बुद्ध मंत्री महान, बुधवान सर्व आगम सुजान ।
जिन भक्ति सदाचारी महंत, स्वामी हितकारक वच कहंत ॥१०७

सवैया २३

खगाधीश तिस बचकौ सुनिकरि, प्रीत सहित परसंसा कीन ।
स्वयं बुद्धकी पूजा करके, बहु स्तुति कीनी परवीन ॥
एके स्वयं बुद्ध सुमंत्री, जिन चैत्यालय भक्ति सुलीन ।
मेरु सुदर्शन गिरके ऊपरि जिनबिम्बकी पूजा कीन ॥१०८॥
भद्रशाल अरु नंदन वनमें, बन सौमन तसु पांडुक जान ।
सर्व जिनालय पूजा कीनी, भक्त सुकर बैठो बुधवान ।
अब आगे सुनि पूर्व विदेहे, धर्म कर्म कर्ता शुभ थान ।
सीता नदीसु उतर तटमें, कक्षा नामा देश बखान ॥१०९॥

चौपाई

तहाँ अरिष्टा पूरी मझार, नाम युगंधर तीरथकार ।
तीन जगतके भव्य सु जिने, नर सुर मिल सब पूजे तिने ॥११०
समोसरण कर मंडित सोय, धर्मोपदेश सुनें सब लोय ।
तिन जिनेन्द्र बंदन काज, आयो चारणयुग ऋषराज ॥१११॥
आदितगत सु अरिंजय जान, दोनौं कूखके नाम महान ।
तीन जगतकर पूजित देव, तिनकी युग मुन कीनी सेव ॥११२
पूजा कर नभ मारग आय, मंत्री लख उठ सन्मुख जाय ।
जब दोनौं मुनिवर बैठाय, मंत्री पुन पुन नमन कराय ॥११३
अस्तुति पूजा करतो भयौ, मनमांहि बहु आनंद लयौ ।
हे भगवत् जग वंदन योग्य, तुमरौ ज्ञान परार्थ मनोग्य ॥११४

कछु यक प्रश्न सु पूछा चहूं, वृषकारक अघहारक कहूं ।
हे स्वामी ममपत खगधीश, ख्यात महाबल जो अवनीश ॥११५
सो भवि है या अभवि बखान, धर्मग्रहण कब करहैं आन ।
तब आदितगत चारण मुनी, अवधिज्ञानधारी बहु गुणी ॥११६
कहत भये तुम राजा सोय, निकट भव्य है संशय खोय ।
तुमरे उपदेशनतैं सही, राजा धर्म ग्रहेगो सही ॥११७
जंबू द्वीप भरत भुव मांह, विश्वनाथ अर्चित सुखदाय ।
आदि तीर्थंकर होय महान, दसमैं भव यह निश्चय जान ॥११८
स्वर्ग मुक्त मारग परकाश, जाय मुक्ति सब कर्म विनाश ।
ये नृप पहले भवके मांह, निंद्या निदान कियो शक नाह ॥११९
इस खगके पूरब भव सुनौं, जो कछु बीते सो मैं भिनौं ।
तातैं भोग विमुख नहि होय, वृषमे बुद्ध न धारे सोय ॥१२०॥
ये ही मेरु सुदर्शन जान, अपर विदेह लसे दुतवान ।
गंधिलदेश महा विख्यात, सिंहपुरी नगरी अवदात ॥१२१॥
तसुराजा श्रीषेण महान, प्रिया सुन्दरी राणी जान ।
तिनके दो सुत उपजे आय, जैंवर्मा श्रीवर्मा भाय ॥१२२॥

पद्धड़ी छन्द

श्रीवर्म्मा लघु सुत नृप निहार, सब जनको प्रिय आनंदकार ।
फुन सब जनकौ अनुराग देख, दी राज्य लक्ष्मी करभिषेक ॥१२३
जंवर्मा दीरघ पुत्र सार, त्यागूं सब परिग्रहइम विचार ।
मुक्तश्रीके वसु करण काज, धारु दिक्षा भव समुद पाज ॥१२४
मम मन भंग जिहविध न होय, वैराग्य श्री उत्पन्न जोय ।
निज पाप उदै लखके सुजान, वैराग्य भाव हिरदै बढ़ान ॥१२५

ये पाप महा दुखदाय जान, सब जीवनको बैरी महान ।
जबलौं जियके अघ उदै थाय, तहाँ सुखको लेश नहीं रहाय ॥१२६

जोगीरासा छन्द

संजम अस धारण करने, बिन कर्म अरि नहिं मरेहैं ।
अब तिन अघ नाशनके कारण, संजम धारण करे हैं ॥
इम चिन्तवन करचो भव्यो तम, गेहादिक सब त्यागे ।
गुरु स्वयं प्रभके ढिग जाके, ली दिक्षा बड़ भागे ॥१२७॥

अडिल्ल

नव संजत मुन केशन लोचन करे जबै, पाप सर्प मनु बबई तज भागै तबै । तिस अवसरमैं महिघर नामा खगपती, जातो हुतो अकाश ताह लख ये यती ॥१२८॥ करतो भयो निदान निंद्य दुखदायजी, खगपति लक्ष्मी होय अपर भव मांहजी । तहाँतैं चयकर राय महाबल थायजो, कृत निदान बस दोश भोगन तजायजी ॥१२९॥ आज रातकौ स्वप्न लखे उसने सही तीनों मंत्री दुष्ट डबोवे मुझ मही : पंचू माहमें फंसों बहुत दुख पायही, स्वयं बुद्धने तुरंत निकालो आय ही ॥१३०॥ फिर करके अभिषेक सिंहासन थाप ही, एक सुपनो तो येह लखो नृप आप ही, दूजे स्वपने माह महाज्वाला लखो, विद्युत्पात महान सर्वजनकौ भखो ॥१३१॥ रजनी अन्तमझार स्वप्न ये दो लखे, तिनके पूछन काज आगमन तुम दिखे । जब तक नृपन ही कहे कहो तुम जायजी, शीघ्रसु दो सुपनका भेद बतायजी ॥१३२॥ तिनके सुनने मात्र प्रति अचरज करें, सकल तुम्हारे बचनोंके

निश्चय धरै। पुन्य वृद्ध तिस भाव बढ़े निश्चै सही।
आदि स्वप्नकौ फल उत्तम जानौं सही ॥१३३॥

चौपाई

दुतिय स्वप्नकौ फल इम जान, एक महीना आयु प्रमाण।
इम कह मुनि युग नभकौं गये, मंत्री तिनकौ नमते भये ॥१३४
स्वयं बुद्ध तब निज पुर आय, राय महाबलकौं सिर नाय।
जो चारण मुनि कियो बखान, सो सब नृपसे भाखो आन॥१३५
मंत्री बच सुनिके तत्कार, अपनी आयु लखीतुछ सार।
परम संवेग माह दृढ़ होय, इम विचार कीनो भ्रम खोय ॥१३६
विषयाशक्ति माह मम आय, सकल गई सो कही न जाय।
कोट भवनमैं दुर्लभ जोय, जिन वृष नरभव दोनो खोय ॥१३७

पद्धड़ी छन्द

यह मंत्री मेरौ मित्र जान, मेरो हित वांछक है महान।
मैं भव भोग बिच मगन थाय, इन काढो मम वृष बच कहाय॥१३८
ये भोग भुजंगमको समान, सब अनरथके कर्ता बखान।
फुन ज्ञानोजन क्यों रचे जान, बुधवाननके सब त्याज्यमान॥१३९
इस देहोको पोखन कराय, सो ही सदोष जानौ सुभाय।
जो सकल अशुच वस्तु बखान, तिन सबकौं खान शरीर जान॥१४०
संसार दुख पूरित सु जान, नहि अंत आदि इसकी बखान।
जो कर्ममूल पराधीन होय, तिससेती कैसी प्रीति जोय ॥१४१॥

सोरठा—धर्मरत्न सु चुराय, पाँचों इन्द्री चोर यह।
इने हते बुधराय, ये अभ्यंतर अरि महा ॥१४२॥
रामा नर्क दुवार, बांधव दृढ़ बंधन समा।

पुत्र प्राप्ति उनहार, गृह बंदिगृह सम कहो ॥१४३॥
दोहा–राज पापदायक कहो, सुत संखल सम जान।
संपत थिर नहीं रहत है, चपलाको उनमान ॥१४४॥

त्रोटक छन्द

विष मिश्रित अन्न समान गिनो, सुख इंद्रियको जिनराज मनो।
ये यौवन रोग सुपूर्ण सही, निज आयु मुख यमराज गही ॥१४५
नहीं किंचित सार असार सबै, तिहुंलोक विषै थिरता न कबै।
इम चित नरेश विराग भये, जगभोग सुखादिक त्यागि किये ॥१४६

पायता छंद

तब अतिबल पुत्र बुलायो, सब राज तक्ष सौंपायो।
निज गृह चैत्यालय मांही, तब शोभा अधिक कराई ॥१४७
अष्टाह्निक पूज कराई, जो स्वर्ग मुक्ति सुखदाई।
सिद्धकूट जिनालय मांही, बहुविध तहां पूज रचाई ॥१४८॥
उपदेश स्वयं बुद्धी तें, मन वचन काय शुद्धी तें।
सब त्याग परिग्रह कीनों, चारौं आहार तजि दीनों ॥१४९॥
ह्वै सबसेती बैरागी, ममता शरीर की त्यागी।
कच लोच कियो तज नेहा, दीक्षा धारी गुण गेहा ॥१५०॥
सन्यास मर्ण कर भाई, चव आराधन सुखदाई।
बहु यत्न थकी सिध कीनो, वृष ध्यान मांह चित्त दीनो ॥१५१
सब अंग सू सूक गये हैं, चर्म अस्थि जु शेष रहे हैं।
जो कायर जन भयदानो, ते परिषह सर्व सहानो ॥१५२॥
पण परमेष्ठीको ध्यावो, निर विकलप चित रहावो।
जो महाबली निज नामा, तेह प्रगट करैं गुण धामा ॥१५३॥
बाईस दिवस तप कीनो, शुभ अंत सलेखन लीनों।

प्रायोपगमन सन्यासा, धारो तज तनको आसा ॥१५४॥
जप नमस्कार मंत्र हिकौ, ध्यायो आराधन चवकौं ।
शुभ आशय पुन्य निधाना, बहु यत्न थको तज प्राणा ॥१५५
ईसान स्वर्गके मांही, तहाँ पुन्य उदै उपजाई ।
ललितांग नाम सुर जानो, श्रीप्रभ विमान शुभ थानो ॥१५६
उत्पाद सेजपैं थायो, सम्पूर्ण सुयोवन पायो ।
शुभ एक महूरत मांहो, सब कांति गुणादि लहाई ॥१५७॥
दिव्य माला वस्त्र अभूषण, सुर दिये रहित सब दूषण ।
वह तेज मूर्ति इम जानो, सौबत उठ बैठो मानों ॥१५८॥
तब कल्पवृक्षने कीनी, पुष्पनिकी वृष्टि नवीनी ।
दुंदुभी नाम जो बाजे, स्वयमेव बजे दुख भाजे ॥१५६॥
शुभ गंधित वायु चले हैं, जल कणयुत दुक्ख दले हैं ।
इत्यादिक अचरज देखे, जन्मत सुर हर्ष विशेखे ॥१६०॥
दोहा—इत्यादिक आश्चर्य युत, देव समूह नमंत ।
स्वर्ग संपदा देखके, चिंते सुर इस भंत ॥१६१॥

गीता छन्द

मैं कौन हूं किस थान आया, को सुखाकर देश है ।
किस पुन्यसे ये थान पाया, किस विभूत विशेष है ॥
त्रै जगतसार सुवस्तु दीखत, पैंड पैंड सबै यहाँ ।
दिव्य रूप धारक महादेवी, भोग कारण है महा ॥१६२॥
इम चितवन करते सु करते, अवधिज्ञान उपायजी ।
पूर्व भवमें तप तपौ, तसु फल फलौ सुखदायजी ॥
तब देवता सब एम जानो, भयो हम स्वामी यहै ।
कर नमन बहुविध हर्ष मानौं, धर्मफल पायो कहें ॥१६३॥

पद्धड़ी छंद

मैं धर्म सु फल साक्षात् पाय, इम लखके सुर नित धर्म ध्यान ।
अब धर्म सिद्ध कारण महान, जिन मंदिरमैं गयो पुण्यवान ।।१६४
तहाँ पूजाकर फुनि नमन ठान, भक्ति स्तुति कर बहु पुन उपाव ।
फुनि अष्ट भेद ले द्रव्य सोय, संकल्प मात्र शुभ भये जोय ।।१६५
बहु गीत नृत्य उत्सव सु ठान, शिवकारण पूजा कर महान ।
फुनि चैत्यवृक्ष ढिग जाय सोय, प्रतिमा पूजी युत हर्ष होय ।।१६६
निज स्थान मुदित होके सु आय, निज स्वर्ग संपदाको गहाय ।
जहाँ देवी हैं हज्जार चार, अरु चार महादेवी उदार ।।१६७।।
लावण्य रूपकी है सु खान, सब सुक्ख करन हारी बखान ।
एक स्वयंप्रभ नामा सु जान, अरु कनकप्रभा दूजी सुभान ।।१६८
शुभ कनकलता तीजी गिनेय, विद्युत्तलता चौथी भनेय ।
जहाँ सप्त हस्तकौ है शरीर, तापे सुवर्ण सम जान वीर ।।१६९
वह सुरदेवी नित मीत ठान, इस संग रमें आनंद मान ।
शुभ लक्षण पूरण अंग थाय, जिस चक्षुरूपक मौही लहाय ।।१७०
अणमादिक ऋद्ध कर युक्त होय, अैज्ञान विक्रया ऋद्ध जोय ।
एक सहस वर्ष जब वीत जाय, अमृत अहार मनसा सु थाय ।।१७१
अरु एक पक्षमें लेय श्वास, दस दिशकौ करत सुगन्ध वास ।
नित चढ़ विमान क्रीड़ा कराय, पर्वत वन उद्यानादि माह ।।१७२
अर दीप समुद्र जो है असंख, तहाँ क्रीड़ा करत फिरे निसंक ।
नृत देखे गीत सुने पुनीत, अप्वन कृत सुख अनुपम लहात ।१७३
भोगोपभोग कर सुख लहाय, जग सार सुक्ख थानक कहाय ।
निज पुन्य उदं कर देव सोय, अत्यंत सुक्ख भोगे बहोय ।।१७४

सुख बारध मांही मगन सोय, नहि जानत काल केतेक होय।
बहु देवी तसु विनसी सुजान, जिम जलध मांह बेला बखान ॥१७५
पल्योपम आय सुधरनहार, उपजी विनसी तसु कहाँ पार।
जब तुच्छ आयु अवशेष थाय, तब स्वयंप्रभा प्रिय भई आय ॥१७६
तब प्रेम भरे दोनों महान, भोगे सु भोग आनंद ठान।
इम वृषफल सुरलक्ष्मी लहाय, निरुपम सुखसार सबै गहाय ॥१७७
दुख दूर करे गुणमणि निधान, चारित्र योग लह स्वर्ग पान।
ये धर्म सदा अधरम नसाय, भवदधि मथनेकौं यह उपाय ॥१७८
सब जग चूडामणि धर्म जान, गुण अन्तातीत धरे महान।
सुखनिध आता मन धरो सोय, चक्री विभूत यातें सु होय ॥१७९
सर्वज्ञ लक्ष यातें सु होय, सो नित्य करौ भ्रम सर्व खोय।
बहु वचनन करके काज कोय, याहीसे सुर शिव लक्ष होय ॥१८०
'तुलसी' गौरापत जो कुदेव, तिसकी मैं भव भव करी सेव।
तिनसे मेरो नहीं सरो काज, अब तुम देखे भवसिंधु पाज ॥१८१
तुम भव भव मम स्वामी सु थाप, मै तुमरौ दास सदा रहाय।
ये वर मांगू मैं जोर हाथ, जबलौं शिवपुर नहि लेहू नाथ ॥१७२

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीवृषभनाथचरित्रसंस्कृत
ताकी देशभाषामैं महाबल भवांतर ललितांगोद्भव वर्णनो
नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीय सर्ग

धर्मेश्वर के चरन युग, वंदूँ वृष कर्तार।
लक्षण बृषभ तनों लसे, धर्म अर्थ हितकार ॥१॥

मालनी छंद

सकल सुगुण सुधामं देव देवेन्द्र बंद्यं,
भविक मल समूहं फुल्लितं सूर्य्य बिंबं।
भवजनकर वंद्यं तीर्थनाथं युगादं,
सुख समुद सुचंद्रं आदि ब्रह्मा प्रभुत्वं ॥२॥

पद्धड़ी छंद

अब तिस निर्जरकी आयु मांहि, बाकी षट् महिना जब रहाय।
मरनेके चिह्न भये विशेष, तिसकौ लख सुर दुक्खेत अशेष ॥३
भूषण संबंधी तेज थाय, सो बिनस गयो तुछ ना रहाय।
जो निशा अंतमें दीप जोत, त्यों क्षीण भयो मणिको उद्योत ॥४
माला मुरझाय गई सु तबें, तरु कल्प लगे कंपन सु जबें।
तिस अंग विषें जो क्रांत थाय, सोही सब मंदी पड़ी भाय ॥५॥

चाल मेघकुमारकी

तिस संबंधी देवयांजी मृत्यु निकट तसु जान, हिरदैमें व्याकुल भई जी रुदन करे अधिकान। रे भाई पाप उदै दुखदाय ॥६॥ इस पतिके परशादतें जी सुख भोगे अधिकाय। तिसकी येह दशा भई जी जिम बिजली बिनसाय, सयाने पाप उदै सुखदाय ।।७।। तिस सामानक देव थे जी दुख मेटनको आय, सम्बोधन करते भये जी। प्रीत वचन कहवाय, सयाने धर्महितें सुख होय ॥८॥ भो बुध धीरज उर धरो जी शोक सबै छिटकाय, क्षणभंगुर यह जगत है जी

तुम क्या नहीं लखाय। सयाने धर्महितैं सुख होय ॥९॥ सिद्धों बिन जो जीव हैजी, तीन जगतमें बास। जन्म जरा मृत सब लहेंजी, इंद्रादिक सुरराय, सयाने धर्महितैं सुख होय ॥१०॥ जन्म मृत्युसे जो डरैंजी, सो शुभ ध्यान धराय। आरत रौद्र हने सदाजी मरण समाध कराय, रे भाई धर्महितैं सुख होय ॥११॥ भली मृत्यु पर भावतेंजी, उत्तम कुल नर थाय। राज्यादिक सुख पायकेजी, बहु निरोग दृढ़ काय॥ सयाने धर्महितैं सुख होय ॥१२॥ मोह अरी हतके सहीजी, तप नानाविध कार। अर्हमिदर पद पायके जी, नर ह्वै केवल धार ॥ सयाने धर्महितैं सुख होय ॥१३॥ तप करके सुरपद लहोजी, भोगे सुख अधिकाय। वृतको क्लेश नहीं कहोजी, धर्म धरो सुखदाय॥ सयाने धर्महितैं सुख होय ॥१४॥ यह जिय चहुं गतिमैं रुलोजी, नरक दुख बहु पाय। आर्तरौद्र तहाँ बहु भयेजी, नहीं व्रतादिक पाय॥ सयाने धर्महितैं सुख पाय ॥१५॥ पशु विवेक रहित सदाजी, दुख भोगे अधिकाय॥ शिव कारण वृष ना गहेजी, खोटे ध्यान पसाय॥ रे भाई पाप महा दुखदाय ॥१६॥ मनुज जन्म बिन कहीं नहींजो, उत्तम दीक्षा थाय। स्वर्ग मुक्त दाता कही जी, केवलज्ञान उपाय॥ सयाने धर्महितैं सुख होय ॥१७॥

पद्धड़ी छन्द

तिस बचरूपी दीपक महान, तिसकरि सुर शोक तजो सुजान।
धीरज धारण तबहो कराय, पंद्रह दिन जिनपूजन रचाय ॥१८
अच्युत सुर तहाँ आयौ सुभाय, सो लेय गयौ निज स्वर्ग मांह।

तहां जिनबिंबनकी पूजा कीन, बहुभक्त धरी उरमें प्रवीन ।।१६
तहां चैत्यवृक्ष बीचे सु थाय, निज आयु अंतको सुर लखाय ।
तब नमोकारको जप प्रवीन, एकाग्र चित्त कर ध्यान कीन ।।२०
सो मरन भयो तबही सुदेव, जहां उपजे राग सुसुनो भेव ।
पे जंबूद्वीप दीपे महान, शुभ मेरु तनी पूरब दिशान ।।२१
पूरब विदेह संज्ञा कहाय, जो धर्म शर्मकौ बास थाय ।
तहां पुष्कलावती देश जान, जहां नित मंगल बर्ते महान ।।२२
पुर उत्पल खेट तहां लखाय, जहां भव्य पुन्य संचय कराय ।
जहां वज्रबाहु राजा बखान, सो धर्म कर्ममें सावधान ।।२३
तसु वसुंधरा राणी बखान, शुभ लक्षणमंडित पुन्यवान ।
ललितांग नाम जो देव थाय, सो चयके याके गरभ आय ।।२४
जन्मो सुत अतिही रूपवान, तसु वज्रजंघ शुभ नाम ठान ।
पयपान करत सो बढ़त बाल, जो शुक्ल चन्द्रमा बढ़त हाल ।।२५

लावनी

बड़े बुधक्रांत आदि सबही, गुणौकर पूरण ह्वै जब ही ।
भयो अट वर्षनको तबही, जैन गुरु को सौंपो सु सही ।।२६
शस्त्र शास्त्र की विद्या जेती, पढी इसने सबही तेती ।
कला विज्ञान विवेकादि, दिव्य गुण सुंदर क्रांतादि ।।२७
वस्त्र भूषण युत अति सोहे, देववत सबकौं मन मौहै ।
तबै यौवन आरम्भ मांही, भये सबहीको सुखदाई ।।२८
दान पूजादिक सब करते, सुक्ख भोगे सब मन हरते ।
स्वय प्रभादेवी जानो, सुनो तासु कथा बुद्धवानौं ।।२६

पायता छंद

भरतार बियोग हुवो है, तिसकर बहु शोक भयो है।
जैसे जो बेल जलावे, तसु क्रांत कछु न रहावे ॥३०॥
तहां सभामाह सुर जे हैं, ते बहु वृष बचन कहे हैं।
हे देवी तुम यह जानो, सब वस्तु अथिर पहिचानो ॥३१॥
ऐसे बहु वचन सुनाये, तब देवी शोक तजाये।
विन धरमनकौं सुखकारा, इम चितवन उरमें धारा ॥३२॥
षट मास सु पूजा कीनो, उरमें धर भक्त नवीनी।
सो मेरु जिनालय जाके, सोमनस नाम बन ताके ॥३३॥
पूरब दिश मंदिर मांही, तहां चैत्यवृक्ष तल ठांई।
मन पंच परमगुरु ध्याके, चित्त मैं समाधकौ लाके ॥३४॥
जैसे तारा विन सांई, त्यौंहि तसु तन खिर जाई।
अब चयकर जहां भई है, सोई मुन सर्व कही है ॥३५॥

काव्य छंद

मेरु सुदर्शन जान तस पूरब दिश सोहै,
पूर्व विदेह सुजान सब जनकौ मन मोहै।
पुंडरीकनो पुरीतहां सब जन सुखदाई,
बज्रदंत चक्रेश तहां शुभ राज कराई ॥३५॥

गाथा छंद

लक्ष्मीमति तिय जानौं, क्रांतादिक धर्मशील गुणखानों।
दूजे स्वर्ग सुदेवी, स्वयं प्रभा नाम तिसु मानो ॥३७॥
सो इस गर्भ मझारे, पुत्री उपजी सु श्रीमति नामा।
लक्ष्मीसम तन सोहै, शुभ लक्षण भूषित तामा ॥३८॥

पद्धड़ी छंद

क्रमसौं यौबन जुत भई बाल, लावण्य रूप संपत विशाल।
वर क्रांतकला शुभगुण अपार, धारे मान्नो देवी सुसार ॥३९

अब तिसही पुरके बनमझार, जिस नाम मनोहर सुक्खकर।
वर ध्यानरूढ़ जगकर सुबंद, मुनि आय यशोधर सुक्खकंद ॥४०
मुनि ध्यान खड्ग करमाह धार, चव घाति तनी संततनिबार।
तिहुं जगकौ दरसावत सुज्ञान, उपजायो केवलज्ञान भान ॥४१
तब केवल पूजा करन सार, आये दिवतैं सुर भवित धार।
दुंदभि शब्दनतैं दिशा पूर, नभतैं बरसावै देव फूल ॥४२
जहां देव करें जैनंद गाय, संख्या अतीत बहु देव आय।
अतिभक्ति धारकरी नमस्कार, बाणी सुनके हर्ष अपार ॥४३
इस अंतर श्रीमति नाम बाल, सो तिष्ठो महल सिखर विशाल
निशअंत विषैं धुन सुन महान, ततक्षण जागी सो पुण्यवान ॥४४

सवैया

देवागम देखकरि पूर्व जन्म याद धर सुरललितांगको वियोग चित्त मानके, पड़ी मूर्छा खाय तब सखी जन दुख पाय करत उपाय बहु हित चित आनके। चंदनादि द्रव्य सार तासु अंग माह धार सीत वायुकौ विचार करत सुजान के, तब सो चैतन्य भई नोचा मुख कर रही मन माह लाज गही मौन उर ठानके ॥४५॥ सखीजन सर्व जाय पिता सौं कही सुनाय मूर्छा मौनादिक सर्व बात समझायके, राय सर्व बात सुन सुता ढिग आय मन अहो सुता शोक तज बुद्ध उर लायके। पुत्री तेरो भरतार मिले तोह शीघ्र सार, यही चित्त माह धार भरम नसायके। शोक मौन सर्व तज हृदय माह सुख भज, संबोधन बच इम कहे नेह लायके ॥४६॥

गीता छंद

चक्रीसुता को देख करके प्रियासे कहता भयो, मुग्धे! सुनो पुत्रीसु तनमैं पूर्ण यौवन छागयो। कोई विथा तन माह नाहो

जान तू निश्चय यही, अब शोक भय सबही तजो इम मान मेरे बच सही ॥४७ ॥

सोरठा—पूरव भवकौ नेह, जिस जियको होवे सही।
याद भये दुख देय, मूर्छादिक सबही लहे ॥४८॥
इम कह कर सोराय, निज स्थानक जातौ भयो।
धात्री तहां रखाय, जासु पंडिता नाम है ॥४९॥

चाल त्रिभुवन गुरु स्वामीकी

नृप सभा सुजायेजो धर्म कर्म करतायजी, तहां आए दो पुरुष करी इम वीनतीजो। तुम पिता महानोजो केवल उपजानाजो, जिन नाम यशोधर त्रै जगके पतीजो ॥ तुम आयुध शालाजो शुभ रतन विशालाजी। तहां चक्र विशाला उपजो जानियोजी, द्वय कारज सुन सुनकेजो। मनमैं इम गुनकेजो, इन दोनों कृत माह प्रथम किस मानिये जो ॥५०॥

अडिल्ल

वृषको फल यह चक्रि रतन उपजो सही, अन्य संपदा धर्म बिना होवे नहीं। तातैं सब कारज तज वृषकौं ध्याइये, धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष जो पाइये ॥५१॥ इम निश्चय कर सब परवार बुलायके, बहु विभूत संग लेय चलो हर्षायके। सैन्या पुरजन लार सर्व चलते भये, त्रैजगपतिको जाय भक्ति धर सिर नये ॥५२॥

पद्धड़ी छंद

जै तीर्थंकर परमात्म सार, इंद्रादिककर पूजित उदार। मन वचन कायसे करि प्रणाम, फुन बहुत स्तुति कोनो ललाम ॥५३॥ अति भक्ति भारसे नम्र होय, परणाम शुद्ध ह्वै मल जु खोय। तब ही देशावध भई आय, गुरु भक्ति थकी किम किम न पाय ॥५४॥

अहो जगतगुरुकी चाल

अहो गुरुकी भक्ति थकी क्या क्या नहिं होई, इस भवमें सब काज सिद्ध होवे दुख खोई । पर भव सुख को कथा कहांतक बरनी जावे, स्वर्ग संपदा भोग अविचल ऋद्ध लहावे ॥५५॥

चौपाई

येह जान पंडित शुभ चित, करो दान पूजादिक नित ।
जगत उदयकर्त्ता सु विशाल, ज्ञानी वृष सेवें तिहुं काल ॥५६॥
तब चक्री निज भव लख सही, अच्युततैं उपजो इस मही ।
वृष फल लख सम्यक्त लहाय, पूरब भवके बोध पसाय ॥५७॥
श्रीमति पति ललतांग जु थाय, सो चयकर वज्रजंघ उपजाय ।
यह वार्ता परतक्ष लखाय, चक्री मन संतोष लहाय ॥५८॥
तीर्थनाथको कर परणाम, उपजाये बहु पुन्य ललाम ।
भक्ति भाव से नम्रित होय, चक्री निज ग्रह पहुंचे सोय ॥५९॥

पायता छंद

तब चक्री सुपूज कराई, पुत्री धायको सौंपाई ।
सब दिश जीतन उमगानौ, सेन्या जुत कियो पयानौ ॥६०
अब धाय पडिता नामा, सुअशोक बनांतर नामा ।
चन्द्रक्रांति शिलापे थाई, श्रीमतसे बचन कहाई ॥६१॥

पद्धड़ी छंद

हे सुता मौन कारण अबार, मो सेती भाषो लाज टार ।
तू मुझको प्राण समान जा, मेरे आगे कर सब बखान ॥६२
मोकौ सब कारज करन हार, जानौ मन बांछत कहौ सार ।
निजबुद्ध थकी सब विध मिलाय, करहौं कारज तौह सुखदाय६३
यो पूछन तै बच कहैं सोय, लज्जासे नीचै मुखसु होय ।
मैं सर्वकथा तुमसे कहाय, तुम सुनौं मात चित स्थिर कराय ॥६४

यह पुन्य पाप फलसे सुजीव, सबही उपजे बिनसे सदीव ।
मैं पूरब प्रीति सुयाद कीन, सुर आगम को लखके प्रवीन॥६५
ममपूरब भवकौ जो चरित्र, जाति सुमरण से हो विदित ।
तुम मम जननीकी तुल्य थाय, तातें तुम आगें सब मनाय ॥६६
इक धात की खंड सुदीप सार, तिसको पूरब दिश मेरु धार ।
तिसका पश्चिम सुविदेहजान, तहां गांधिलनगर कहोप्रमाण॥६७
तहांपाटन नामा ग्राम थाय, तहां नागदत्त बणिक रहाय ।
सुरती नामा भार्या बखान, पणपुत्र भये तसु सुक्ख दान ॥६८
इक जाननंद अरु नंद मित्र, पुनि नंदषेण तीजा सुपुत्र ।
धरसेन नामा चौथा बखान, जैसेन पंचमो सुत महान ॥६९
पुत्री सुमदनकांता विचार, अरु दूजी श्रीकांता निहार ।
इम सात पुत्रपुत्री सु थाय, अष्टम सुगर्भ मम जीव आय ॥७०

पायता छंद

मम पाप उदै जो आयो, तब पितुने मरण लहायो ।
सब भाई मरै जबै ही, मैं पैदा हुई तबै ही ॥७१॥
भगनी द्वै मरण लहाई, नानी भी यम बस थाई ।
माता परलोक सिधाई, निर्नामिक मोह कहाई ॥७२॥
सब बंधुवर्गसे मुक्ता, जीवे बहु कष्ट संयुक्ता ।
एक दिन कानन मैं जाई, तिलकाचलपें सुखदाई ॥७३॥
मम पुन्य उदै कछु आयौ, पिहताश्रव मुनि लखायो ।
सो चारण ऋद्धि के धारी,चव ज्ञानी जगत हितकारी ॥७४
सत पंच मुनि जिस संगा, आये ऋद्ध धरे अभंगा ।
मैं कर प्रणाम सिर नायौ, पुनि धर्म सुनौ सुखदायो ॥७५

दुख दारिदको सो हर्ता, स्वर मुक्त तनों पद कर्ता।
निर्नामिक औसर देखो, मुनि से पूछो सु विशेषो ॥७६
भगवत मैं निंद्य शरीरा, तन मैं पाई बहु पीड़ा।
निर्धनता कुटुम्ब वियोगी, किस कारण पाई जोगी ॥७७

चौपाई

निर्नामिक तने सुन बैन, कृपा क्रांत धारक हत मैन।
बोले हे तनुजा तुम सुनो, पूर्व भवांतर जो मैं भनो ॥७८
यही घात की खंड मंजार, क्षेत्र विदेह लसे सुखकार।
तहां पलासपर्वत इक ग्राम, ग्राम कूट सुपुजारी नाम ॥७९॥
सुमति नाम तास घर नारि, तासु बनश्री पुत्री सार।
एक दिन तनुजा बनमें गई, बट कोटरमें मुनि निरखई ॥८०
नाम समाधगुप्त है जास, करते देखे शास्त्राभ्यास।
पंच इंद्रियाजीत योगिंद, जग जिय हितकर्ता गुण वृंद ॥८१
तिन निरखके ग्लान करो, स्वान कलेवर मुन ढिग धरो।
जो दुर्गन्ध सही नहीं जाय, जाकरि यह मुनवर उठ जाय ॥८२
तिसे निरख के श्री मुनराय, दया धार हित बचन कहाय।
तैने दुखद कर्म जो कियो, पुन्य बृक्ष जड़से काटियो ॥८३
इस अघको जब उदै जु थाय, बहुत कटुक फल याके आय।
तैने मुन अपमान कराय, या फलतैं नर्कादिक जाय ॥८४

अडिल्ल छंद

इम प्रकार मुनि गिरा श्रवण करती भई, पाप थकी भय-भीत चित तब ही भई। पश्चातापसु हाहाकार करत ठई, मुनपुंगवके चर्णन को फुनि-फुनि नई ॥८५॥

चौपाई

निज निंदा तब करती भई, बार बार मुखसे तो चई ।
मैं अपराध कियो अज्ञान, सो सब क्षमा करो बुद्धवान ॥८६
तब उपसम परणाम सु भये, ताकर बहु पातक नस गये ।
ता कारण मानुषगति पाय, वैश्य सुकुलमें उपजो आय ॥८७
अरु वह निंद्य कर्म जो कियो, किंचित सत्तामैं रह गयो।
ताही तें सुकुटुम्ब वियोग, दुख संतत बाढो बहु रोग ॥८८

गीता छंद

सतगुरुकौं परणाम करते होय उन्नत पद महा,
पद पूज पूजासे सुहो सुखसार भक्तिसे कहा ।
आज्ञा गुरुकी पालने से होय आज्ञा सब विषैं,
गुण ग्राम गुरुकैं जपन सेती होय सुख संपत अबैं ॥८६॥
जो योगियोंकौं निंद्य कहि वे होय निंदित सर्वदा,
अपमान आदिक बहुत पावें दुक्ख सतत ह्वै सदा ।
जो मान करके नमैं नांही नोचकुल पावे वही,
मातंग आदिक होय करके नर्कमैं जावे सही ॥६०॥
यह जान बुध जन सत्य गुरुकी भक्ति सत पूजा करौ,
मन बचन काय त्रिशुद्ध करके शर्म कारण उर धरौ ।
निर्नामिका निज भव श्रवण करि पापसे कंपित भई,
ऋषिराजको पुनि नमन करके ये गिरा मुखसें चई ॥६१॥
भो धर्म्म तात सुदया करके देहि किंचित व्रत अबै,
जिस व्रत थकी मम पाप नाशे होय सुख संपत सबै ।
सद गती सुष संपत सु होवे देहमैं निरोगता,
हे जगत बन्धु कृपा करके व्रत कहो मम योगता ॥६२॥

चौपाई

तब श्री कृपासिंधु मुनराय, तिसके योग्य सुव्रत बतलाय ।

जिनगुण संपत नाम विधान, दूजो श्रुत ज्ञान व्रत जान ।।६३
सब सुख संपतको कर्तार, ताकी विध सुन इम मन धार ।
सोलह कारण भावन जोय, ताके सोलह हो व्रत होय ।।६४
पंचकल्याण पंचमी पांच, प्रातहार्य अष्टम वसु सांच ।
चौतीस अतिशयके उपवास, चौतीस जानौ गुणकी रास ।।६५
जन्मतनें अतिशय बसु दोय, ताकी दस दसमियां होय ।
दस अतिशय शुभ केवल तने, तिथ दसमीके दसव्रत भने ।।६६
देवन कृत अतिशय सु महान, चौदह ताको चौदस जान ।
चौदह ही होवे गुणरास, जानो सब त्रैसठ उपवास ।।६७
जिनगुण सपत शुद्ध ह्वै करै, सो नर स्वर्ग माह अवतरे ।
नर भवके सुख भोग अपार, अनुक्रम पावैं शिव सुखसार ।।६८
श्रुतज्ञान व्रतकौं सुन भेद, जासे होवैं पाप उछेद ।
मतिज्ञानके भेद बताय, अष्टाविंशति सुव्रत थाय ।।६६।।

अडिल्ल छंद

बारह अंगके वरत सु ग्यारह जानिए,
दोय वर्त पर कर्म तने उर आनिये ।
सूत्र तने अट्ठासी व्रत परमानिये,
एक बरत प्रथमानुयोगकौ मानिए ।।१००।।
चौदह पूरबतने बरत चौदह गहौ,
पांच चूलकातनें बरतपण संग्रहौ ।
अवधज्ञान षट भेद बरत छै जानिये,
मनः पर्यय के बरत दोय उर आनिये ।।१०१।।
केवलज्ञान तनौं व्रत एक कहौ सही,
इकसौ अट्ठावन सब व्रत कहे यही ।
श्रुतज्ञान व्रत श्रेष्ठ उदार महान है,
भवत करें भ्रम टार सोई बुधवान है ।।१०२।।

दोहा—इस व्रतको जो भवि करे, भक्त धार मल खोय,
देव मनुष्य सुख भोगकै, केवल लहि सिध होय।।१०३।।
ऐसो फल इम व्रतनकौं, हे पुत्री चित आन।
व्रत दोनौं कर शुद्ध चित्त, ज्ञानादिक सिद्ध ठान।।१०४।।
मुन मुखतें इम बरत सुन, व्रत ग्रह आनंद धार।
वंदन कर निज गृह गई, करत भई व्रत सार।।१०५।।

चौपाई

अन्त समैं सन्यास सुधार, शुभ भावनतें तनको छार।
नाम ईशान कल्प शुभ थान, देवी उपजी सुखकी खान।।१०६
तहां ललितांग नाम शुभ देव, ताके स्वयं प्रभा प्रिय एव।
धरे रूप लावन्य अपार, कोमल सुन्दर अंग सु सार।।१०७
पहताश्रव निज गुरु पे गई, प्रिय ललितांग सहित सिर नई।
तिनकी पूजा कर बहु भाय, व्रत फल स्वर्ग माह भोगाय।।१०८
पंचेंद्रोके वांछित भोग, भोगे बहुत पुन्य संजोग।
पुनि अपनी थित थोड़ी जान, पूजे जिन षट मास प्रमाण।।१०९
पुन्य शेषते देव सु चयो, जो ललितांग नाम बरनयो।
मेरे पिया वियोग पसाय, आरत शोक बढ़ो अधिकाय।।११०
मैं चयकर यहां पंदा भई, मोकौं बाकी कछु सुद्ध नहीं।
उसका जो है दिव्य स्वरूप, मम उरमैं तिष्ठे मुख रूप।।१११
उसका मेरा मिलना होय, तौ मैं ब्याह करूं भ्रम खोय।
अरु जो वो पति नाह मिलाय, तो तप धारूंगी सुखदाय।।११२
तिसकी प्रापति हेत महान, करौ उपाय एक बुधवान।
मेरो लिखो पट्ट ले जाय, जिन मंदिरमें दो फंलाय।।११३
महापूत जिस नाम कहाय, अहो पंडता वहा ले जाय।
गूढ चिह्न कर संयुक्त होय, जिम व्याकर्णमें प्रत्यय होय।।११४

जिन मंदिरमैं बहु खेचरा, नृप श्रेष्टी आदिक बहु नरा।
आवेंगे तहां भव्य अमान, धर्म तनी बांछा उर ठान ।।११५
तिसमें से कोई गुणखान, इस पट को अवलोके आन।
पूर्व जन्मके नेह पसाय, जति सुमरण वाकौं थाय ।।११६
दोहा–केते धूंरत आंयगें, पट लख झूंट कहाय।
गूढ अर्थ पूछन थकी, लज्जित ह्वै घर जाय ।।११७।।
तबै धाय कहत भई, पुत्री हो निश्चिंत।
सब मनोरथ पुरुं सही, कर उपाय बहु भंत ।।११८।।
इम कहकर मो पंडिता, तिस ही पट को लेय।
कार्य सिद्ध करने चली, हर्षित चित जिन गेह ।।११९।।

पायता छंद

उतंग सु तोरण सोहे, वादि आदिक मन मोहे।
ऊंचे बहु कूट बिराजे, ध्वज मालादिक कर छाजे ।।१२०
रत्नोपकर्ण जहां सोहै, मणि हेम बिंब मन मोहे।
महापूत जिनालय नामा, बहु भवि आवें तिस ठामा ।।१२१
जिन वर की पूजा कीनी, पुनि गुरुको नम हित कीनो।
फिर पट शालामें आई, तहां पट खोलो अधिकाई ।।१२२
जो भव्य सु आवें जावें, तिनकौं सब भेद बतावें।
षटखण्ड महीकौं साधो, तब चक्री निज पुर लाधो ।।१२३
व्यंतर सुखगाधिप जेते, अरु मुकटबंध नृप तेते।
ते सब ही लार सु आये, पुरको बहु शोभ कराये ।।१२४
चक्री निज पुत्री सेतो, मिलिये बहु हर्ष समेतो।
तज पुत्री मौन सु अब ही, अरु शोक तजो तुम सब हीं।।१२५
मोह अवधज्ञान उपजायो, तुझ पतिके भव दरसायो।
हमरे तेरे गुरु एको, पहताश्रव महाविवेकी ।।१२६

सुन पुत्री निज भव भाखूं, जिसतैं संदेह जु नाषूं ।
अबतें पंचम भव थाई, नगरी पुंडरीकनिमाही ॥१२७॥
वासव नामा नृप जानौ, सुत चन्द्रकीर्ति गुणबानौ ।
मो मेरो जीव सु थाई, जयकीर्ति मित्र सुखदाई ॥१२८॥
पितु मरने सेती लहियो, सब राज संपदा गहियो ।
सहमित्र सुक्ख भुंजाई, अणुव्रत माही रत थाई ॥१२९॥
सम्यक श्रद्धा के धारी, सब अतिचार परहारी ।
पर्वोपवास सब करते, अरु धर्म ध्यान चित धरते ॥१३०॥
चन्द्रसैन गुरु शुभ पाये, तिनको बहु नमन कराये ।
जानी निज आयु सु अल्पा, तब त्यागो सर्व विकल्पा ॥१३१
तब ही संजम को लीनौ, चारों अहार तज दीनौ ।
सत प्रीत नाम उद्याना, सन्यास मरण तहा ठाना ॥१३२॥
माहेन्द्र सुरगमैं जाई, वृषफल सुर ऋद्ध लहाई ।
जयकीर्ति मित्र जो थाई, सामानिक जात लहाई ॥१३३॥
जहाँ सागर सात सु आयु, भोगे सु पुन्य बसायु ।
अथ पुष्कल द्वीप लु सोहै, पूरव मेरु मन मोहै ॥१३४॥
तहां विजय मेरु सुखदाई, मंगलावती देश कहाई ।
तिस देश मध्य नगरी है, रतन संचय नाम भलो है ॥१३५॥

चौपाई

राजा श्रीधर नाम महान, सुन्दर लक्षणयुत गुणवान ।
राणी मनोहरी सुक्ख निधान, रूप लावन्य धरे अधिकान ॥१३६
चन्द्रकीर्ति जिय सुरथो जोय, स्वर्ग थकी चयके सुत होय ।
श्रीवर्मा नामा बुद्धिवान, हलधर उपजो पुन्य निधान ॥१३७॥

मनोरमा शुभ दूजी नार, जै कीरत चर सुर जो सार।
सो चयकर इस सुत उपजाय, नाम विभूषण तास धराय ॥१३८
नारायणपद धारक भयो, श्रीधर राजभार दोहूं दयो।
आप विरक्त होय तप धरौ,सुधर्माचारज कौ गुरु करो ॥१३६॥
सब कर्मनिकौं करके नाश, केवलज्ञान कियौं परकाश।
सिद्ध गुणनको प्रापत भये, इंद्रादिक नुतकर दिव गये ॥१४०॥
मनोहरी मम माता जोय, मम सनेह आर्या नहीं होय।
गृहमें रहके बहु तप करे, व्रत उपवास अधिक आदरे ॥१४१॥
गुरुको कहो धर्म बहु धरो, कर्मनाशको कारण खरो।
मर्ण समाधि थकी तज प्राण, शुभ भावनतें पुन्य निधान ॥१४२
अब सो द्वितीय स्वर्ग ईशान, तहां पुण्य फलतैं उपजान।
श्रीप्रभ नाम विमान सु जहाँ, सुर ललितांग भयो सो तहाँ ॥१४३
बलनारायण प्रीत बढ़ाय, तीन खंड लक्ष्मी भोगाय।
राय विभीषण वृष नहीं लहो, बहु आरंभ परिग्रह गहो ॥१४४
पाप उपार्जन कर बहु भाय, प्राण त्यागके नर्क सिधाय।
श्रीवर्मा बलभद्र महान, भ्रात वियोग शोक बहु ठान ॥१४५॥
जननीचर ललितांग सुदेव, आय संबोधन वचन कहेव।
शोक धर्मको हर्ता कहो, तातैं बुधजन तज वृष गहौ ॥१४६॥
तीन जगत क्षणभंगुर सबै, आतम क्यों नहिं चितो अबै।
सज्जनका क्या सोच कराय, आयु अंतयकर मर्ण लहाय ॥१४७
यमकी दाढ महा नित सोय, नाह लखे ते मूरख होत।
ऐसो जानौ तुम बुधवान, धर्म जिनेश्वरको उर आन ॥१४८
मोह अरीको करके नाश, संजम लक्ष्मी करो प्रकाश।

इम ललितांग बचन सुनि भाय, बोधप्राप्त भयो शोक नसाय १४६
तबही निज सुतकौं बुलवाय, सर्व राज दीनौं बिहसाय ।
आप युगंधर मुनि ढिग जाय, सर्व परिग्रह त्याग कराय ॥१५०
दस हजार राजनके लार, दीक्षा लीनी हित करतार ।
तप फल कर सो अच्युत गये, इंद्रपदीके सुख भोगये ॥१५१॥
सो बलभद्रपुन्य परमाय, बाईस सागर पाई आय ।
तहाँमैं प्रत्युपकार निमित, सुरललितांग सु पूजो नित्य ॥१५२
सोलम स्वर्ग लेय मैं गयौ, क्रीड़ा विनोदादिक बहु कियौ ।
अब आगे सुन और कथान, जंबू पूर्व बिदेह सुजान ॥१५३॥
मंगलावती देश सुजहाँ, विजयार्द्ध पर्वत है तहाँ ।
उत्तन श्रेणी तहाँ सुजान, नाम गंधर्व सु नगर बखान॥१५४
वासव नामा राजा तास, प्रभावती राणी सुख रास ।
सुर ललितांग तहाँतें चयो, पुन्यौदय इनके सुत भयो ॥१५५
जाकौ नाम महीधर सही, सकल श्रेष्ट गुणगणकी मही ।
तास पुत्रको देकदि राज, खगपति कीनौ आतम काज ॥१५६
बहुत भूमिपतिको संग लेय, नाम अरिंजय गुरु भेटेय ।
दुद्धर दीक्षा गृहण कराय, तप मुक्तावलि आदित पाय ॥१५७

इन्द्रवज्र छन्द

ध्यानेन छेदो सब कर्मराशी, कैवल्यपायो हुय मुक्तवाशो ।
प्रभावती राणी सुमोद थाई, आर्यासु पद्मावतिको लहाई ॥१५८
ग्रहो तबं संजम शुद्ध भाव, रत्नावली आदिसु तप कराव ।
अंतेसमाधी धर प्राण त्यागे, सम्यक्त माहे चितधार लागे ॥१५९

गीता छंद

तिर्यलिंगकौं तब छेद करके स्वर्ग सोलम स्वर भयो,
पदवी प्रत्येंद्र तनी सु पाई धर्मको फल चितयो ।
पुष्कर सुद्दीप अनूप सोहै मेरु पश्चिमकौं गिनौ,
पूरब विदेह सुवत्सकावति देश ता माही भनौ ।।१६०

पायता छंद

तहां प्रभाकरी सु पुरी है, विनय धर मोक्ष बरी है ।
तिन पूज करनके काजे, आये सुर बहु ऋद्ध साजे ।।१६१
तहां अच्युतेंद्र भी आयो, पूजा कर पुन्य उपायो ।
फिर मेरु गयौ सो देवा, नंदन वन तहां लखेवा ।।१६२
पूरब चैत्यालय माही, विद्याधर तहां लखा ही ।
तिस नाम महीधर जानौ, तिसकौ सम्बोधन ठानौ ।।१६३
भो विद्याधर चित माहीं, तुम एम विचार कराहीं ।
मोको अच्युत सुर जानौं, ललितांग सु उर तुम आनौं ।।१६४
तुम मम माताके जीवा, तातैं हम प्रीत सदीवा ।
तुम हमकों बोधित कीनौं, बलभद्र भवैहि प्रवीनौ ।।१६५
अब विषय परिग्रह त्यागो, कर सजंमसे अनुरागौ ।
इन भोगौं कर यह प्राणी, नहि तृप्ति होय अज्ञानी ।।१६६
दोहा—इस प्रकार खग बचन सुन, जातो सुमरण पाय ।
काम भोग बिरकत भयो, ज्ञान भावना भाय ।।१६७।।

चौपाई

बडो पुत्र महिकंप बुलाय, ताकौं राज दियौ हर्षाय ।
किये जगत नंदन गुर सार, बहु खेचर संग दीक्षा धार ।।१६८
घोर बीर तप कीने सार कनकावलि आदिक निरधार ।
मर्ण सन्यास थकी तज प्राण, तप व्रत फल पायो सख खान ।।१६९

प्राणत नाम कल्प शुभ थान, इंद्र भयो तहां ऋद्धवान ।
बीस उदधकी पूरी आयु, धर्म कर्ममें तत्पर थाय ॥१७०

पद्धड़ी छंद

अब दीप धातकीखंड जान, पूरबदिश मेरु विजय महान ।
ताकौं पश्चिम सु विदेह सार, तहां गंधलि देश बसे उदार ॥१७१
तहां नाम अयोध्या नगर जान, जयवर्मा राजा तेज खान ।
ताके राणी सुप्रभा नाम, अजितंजय सुत उपजो ललाम ॥१७२

चौपाई

मनबंछित सुख भोगे सार; जिन पूजा कीनी सुखकार ।
प्राणतेंद्रसो चयकर भयो, मुक्तगामि गुण आकरि थयो ॥१७३
जयवर्मा बिरक्त चित भयो, राजभार अजितंजय दियो ।
अभिनन्दन मुनिके ढिग जाय, दीक्षा लीनी मन हर्षाय ॥१७४
व्रत आचाम्ल सुवर्द्धन सार, तप कीने नाना परकार ।
सर्व कर्म्म हत दुखको रास, कीनो अविचल धाम निवास ॥१७५
नाम सुप्रभा राणी जोय, भव भोगनतें बिरक्त होय ।
सुदर्शना आर्याके पास, दीक्षा धारी गुण की रास ॥१७६
रत्नावलि आदिक तप करै, सहित समाधि प्राण परहरै ।
स्त्रीलिंग छेद दुख रास, अच्युत सुर उपजौ सुख रास ॥१७७
अजितंजय चक्री पद पाय, अभिनन्दन जिन भक्त पसाय ।
तिनकौ नमकर पूजा करी, बारबार चरनन सिर धरी ॥१७८
ताते विहिताश्रव इन नाम, दूजो प्रगट भयो गुण धाम ।
शुभ को संग्रह निसदिन करै, तातै सार्थिक नाम सु धरै ॥१७९

जोगीरासा चाल

अन्य दिवस अच्युतकौ स्वामी, तिस सम्बोधन आयो ।
भो भवि विषसम भोग बुरे हैं, इनसे ये दुख पायो ॥

इंद्रादिकके भोग बहुतसे, भोगत तृप्त न थाई ।
दुख मिश्रित नर जन्म तने सुख, तिनसे क्या तृप्ताई ॥१८०
भोगों में कछु सार नहीं है, यह चितौ उर सारा ।
इन्द्रिय मोह अरी को हनके संजम गह हितकारा ॥
इस प्रकार संबोधन वच सुन, उर वैराग्य वितारो ।
निज सुतकौं रुब राज भार दे, कानन मांहि पधारौ ॥१८१
पहताश्रव चक्री मुनके ढिग दीक्षा ली हर्षाई ।
सब परिग्रहकौ त्याग जु कीनो, बीस सहस संग राई ॥
अजितंजय मुन दुद्धर तप तप, मन वच तन शुद्ध कीनौ ।
चारण ऋद्धको पाय यतीश्वर, तिलकांतहि गिर लीनौ ॥१८२
पहताश्रवकौ नम पुत्री तै, धर्म सुन्मुख होई ।
जिन गुण संपत श्रुतज्ञान फुन, ये व्रत धारे दोई ॥
निर्नामिक भव मैं तप करके, दूजे स्वर्ग सु थाई ।
पहताश्रव योगी जो तुम गुरु, सो मम गुरु कहाइ ॥१८३

दोहा—ललितांग हि जो देव थो, हलधर भवके माह ।
मोको संबोधित कियो, तातैं मम गुरु थाय ॥१८४
मैं बाईस ललितांगकौं, गुर बुध कर पूजाय ।
तेरो पति ललितांग जो, अंतम उपजो आय ॥१८५
सो चयकर मम भाणी जो, वज्रजंघ नृप साय ।
कीर्तिक्रांत धारक वही, निश्चय तम पति होय ॥१८६

सवैया

मात पिता सुत बांधव सर्व, सुमित्र भवार्णव ते नहि तारे ।
जे गुरु मूलगुण सु अठाईस धारत है, सबके अघ टारे ॥
ते भव अंबुध तारनहारे, तिनेहो भजो तुम भव्य सु सारे ।

स्वर्ग सु मुक्तको प्रापत हेतु, भजो तिनपाय सबै सुखकारे ।।१८७
अरहंत सिद्ध सुरकौं नमके, उपाध्याय अरु साधु मनाय।
सकल गुणनिकी खान यही है, स्वर्ग मोक्ष को बाट बताय ।।
तीन भुवनके हितकारक हैं, तीन जगत के नाथ नमाय।
रहित सर्व दोषनिकर स्वामी, धर्मचक्रके अधिपति थाय ।।१८८

गीता छंद

तुलसीरु सीतापति, जिते हैं देव ते जु कुदेवजी।
घटखंड मंगल गयो, कहुगत दीपनंदो एवजी ।।
तिम ये त्रिदेव कुदेव हैं, नहि देव लक्षण इन विषैं।
अब बुध 'सागर' बर्धनेकौं चंद्र सम जिनवर लखे ।।८९

इति श्री भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचित श्रीवृषभनाथ चरित्रे संस्कृत ताकी देशभाषा में वज्रजंघोत्पत्ति श्रीमती वज्रदंत भवांतर वर्णनो नाम तृतीय : सर्ग : ।।३।।

—:o:—

चतुर्थ सर्ग

दोहा—श्रीयुत श्री अरहंतकौ, सिद्धलोकके ईस।
गण आकार मुनि त्रयनकौं, बंदूं नित धर सीस ।। १ ।।

त्रिभंगी छंद

जै जै ऋषभेषं नमत सुरेशं त्रंजगतेशं परं प्रभू।
गणधर मुन सेवत नमत असेशं वृषचक्रेशं तुम्हो स्वयं ।।
भविजन नित ध्यवैं मंजुल गावैं, पूज रचावै मोद धरे।
सुख सम्पत पावै ज्ञान बढ़ावैं स्वर्ग लहावै मोक्ष बरे ।। २ ।।

चौपाई

सावधान ह्वै पुत्री सुनौ, मेरे बचन हृदंमैं गुनौ।
प्रभु युगंधरकौ सु चरित्र, बरनू पावन परम पवित्र॥ ३॥

गीता छंद

एक दिन सुब्रह्म सुइन्द्र लांतव ईशाने वाणी चई।
श्री जिन युगंधर पास हमने शुद्ध समकितको गही॥
तातें सु उनका चरित भाषूं जास विध गणधर चयो।
तें पति सहित सुनियो सकल अब तोह भाषूं निश्चयो॥ ४॥

चौपाई

जंबूद्वीप सु पूर्व विदेह, बत्सकावती देश भनेह।
भोग भूमिको तुल्य गिनेय, सीता नदी दक्षिण दिश जेह॥५
तहां सुसीमा नगरी जान, राजा अजितंजय बलवान।
तासु अमितगति मंत्री जु कहो, तसु तिय सतनामा सुख लहो॥६
ताके सुत प्रहसित ऊपजो, तासु मित्र बुध बिकसित भनो।
व्याकरणादि कला विज्ञान, करे समारंजन नित आन॥७
पंडितता अरु राज्य सुमान, ज्ञान गर्भसे उद्धृत जान।
एक दिवस पुर बाहर थान, मतिसागर मुनि आये जान॥८
अमृत-श्रावी ऋद्ध मुन धरे, धर्मवृत्ति कर पातक हरे।
मुनि आगम सुन नृप तत्कार, गयो सु मुनके पास उदार॥९
नमस्कार कर पूछौं जबै, तत्व स्वरूप कहो मुन अबै।
इस जिय उत्पति कारण नाह, कहो जीव क्योंकर उपजाय॥१०
तब ज्ञानी मुन बोलत भये, तत्व स्वरूप यथारथ चये।
स्यादबाद नय अगम पसाय, तिर उत्तर कीनें नरराय॥११
दोहा—गर्भ तजो दुहूं मित्रने, नमत भये मुन चर्ण।
दीक्षा ली हर्षायके स्वर्ग मोक्ष सुख कर्ण॥ १२

प्रहसित विकसित मुन भये, तज परिग्रह दुखवास।
लोच पंच मुष्टीथकी, कीनौ गुरुके पास ॥१३॥

चौपाई

अब दीक्षाकौ पालन करे, जातें भवभवके अघ टरै।
वर्धन आचाम्लादिक सार, तपकीने नाना परकार ॥१४॥

जोगीरासा चाल

एक दिवस अज्ञान थकी मुन दर्शन तज सुवदाई, वासुदेव पदकौं निदान कर जो दुर्गत ले जाई। तब तिस बरत तने फल करके चयके स्वर्ग थये हैं। दशम स्वर्ग महाशुक्र तासमैं इन्द्र प्रत्येन्द्र भये हैं ॥१५॥ बीस उदधिकी पूरब आयु दीक्षा-तप फल थाई, सुख सागरमैं मगन रहे दुहूं दिव्य अंगना पाई। खंड धातकी पश्चिम दिशका पूर्व विदेह बतायो, पुष्कलावती देश मनोहर पुंडरीक पुर भायो ॥१६॥

अडिल्ल

तिस नगरीकौ भूप धनंजय नामजी, जयसेना तसु नाम मनो-रति कामजी। दसम स्वर्गतें चय सुर इनके सुत भयो, विक-सित नामा मंत्रि तनौं चर बरनयो ॥१७॥ हुवो सोई बलि-भद्र महाबली नामजी, यशस्वी नृपनार सुदुजो तामजी। सो प्रत्येंद्रकौ जीव आय यहाँ अवतरो, नामसु अतिबल जान त्रिखण्डपती वरौ ॥१८॥ नाम धनंजय पिता वैराग्य भये जबै, दोनौ पुत्र बुलायराज दीनौ तबै। धरो सुसंयम भार घोर तप आचरो, ध्यान खड्ग गह हाथ कर्म रिपु जे करौ ॥१९॥ केवललह भविबोध शिवालय थिर भये, देवन सेतो अर्चित ह्वै गुण वसु लये। रामजु केशव पुन्य थकी त्रय खंडके, नृप अमरनकौ साधे जुत बल वंडके ॥२०॥

सुन्दरी छंद

सरब सुख निरंतर भोगतैं, परम प्रीत युतापन योगतैं ।
बहुत सुख सु भोगे वृष बिना, बहु आरंभ परिग्रहकौ ठना ॥२१

पायता छंद

तिसतैं अतिबल नृप नामा, लहो सुभ्र महा दुख धामा ।
तिन पीछे सो बलि भ्राता, कियौ शोक महादुख दाता ॥२२॥
फिर बलि बैराग उपायौ, भोगादिक तृणवत भायौ ।
बाह्यांतर संग सबै ही, त्यागो नृप बली तबैंही ॥२३॥
सुसमाध गुप्त योगीश्वर, तिन पास भये सुमुनीश्वर ।
तप तपत भये अति भारी, सन्यास थकी तन छारी ॥२४॥
चौदम जो स्वर्ग कहायौ, तहाँ प्राणतेन्द्र उपजायो ।
विंशत दधि आयु जहाँ है, सु नोरुपम सुक्ख तहाँ है ॥२५॥
सो चय कर जहाँ उपजाई, सो वर्नन सुनो सुखदाई ।
अथ दीपधातकी खंडा, तिस पूरब मेरु प्रचंडा ॥२६॥
तहाँ पूर्व विदेह सुजानो, बत्सकावति देश महानौ ।
तहाँ पुरी प्रभाकरी सोहै, मन सेनराय मन मोहे ॥२७॥
ताके वसुंधरा नारी, गुण रूप कलाकर भारी ।
तिसके जनमें बलधारी, जयसेन पुत्र हितकारी ॥२८॥
तिन चक्रवर्त पद पायो, षडखंड मही भोगायौ ।
एक दिन चक्री बैरागे, सब भोगहि विषसम लागे ॥२९॥
सबही संपत तज दोनी, जिन भाषित दीक्षा लीनी ।
श्री मंदिर जिन ढिग जाई, षोडश सुभावना भाई ॥३०॥
चिरकाल महातप कोनौ, सन्यास अन्तमैं लीनौ ।
चितधर समाध तज प्राणा, ऊरध ग्रीवक उपजाना ॥३१॥

अहमिंद्र भयो तहाँ जाई, त्रिंशत सागर सुख पाई ।
नहीं प्रवीचार जहाँ होई, सुख भोगे दुख न कोई ॥३२॥
पुष्कर पूरबदिश जानौ, तहाँ पूर्व विदेह महानौ ।
मंगलावती देश बसे है, रत्नसंचै नगर लसे है ॥३३॥
अजितंजय भूप बखानो, वसुमति राणी तसु जानौं ।
सोई अहमिंद्र चयो है, इनके वर पुत्र भयो है ॥३४॥
सुत तीर्थंकर उरजानो, त्रैजगलक्ष्मी सुख खानौं ।
त्रैजगपति सेवा करि है, सु जुगंधर नाम जु धरि है ॥३५॥
जग धर्मुपदेश सु करहै, जग तारण तरण सु बरहैं ।
गर्भादिक पंचकल्याना, सुख भोक्ता गुणकी खाना ॥३६॥
कल्याण तीनके माहो, सब देव आय पूजाहो ।
फुनि दीक्षा धर तप कीने, चव कर्म अरी जे लीने ॥३७॥
वर केवलज्ञान उपायो, सब विश्वतत्व दरसायो ।
छासठ सागर सुख कीनौं, फुनि तीर्थंकर गुण लीनौं ॥३८॥
अब समवशरणके माहीं, तिष्ठे है जग सुखदाई ।
वेही श्री युगंधर स्वामी, कल्याण अर्थ होउ नामी ॥३९॥

गीता छंद

ये सब कथा मैंने युगंधरके समोसृतमें कही ।
ब्रह्मेंद्र लांतव इंद्र तुम पत और तूने सरदही ।
ये कथा मम मुखथको सुन बहुदेव सम्यक आदरी ।
तूने सुपत ललतांग युत बुध परम धर्म विषै धरो ॥४०॥

पद्धड़ी छंद

दोनों सुधर्ममैं प्रीति ठान, संवेगभाव चित माह आन ।
केवलज्ञानकी पूज ठान, पहताश्रव गुरु वंदे महान ॥४१॥

हम तुम दोनौं तिन भक्ति कीन, बहु देव सहित पूजा नवीन।
निर्वाण पूज कीनी विशाल, तिलकांत नाम गिरके सु भाल ॥४२
हे पुत्री तुम सुमरण कराय, क्या पूजा तुमकौ याद नाह।
हम तुमने क्रीड़ा करी संग, अंजनगिरपे जानौं अभंग ॥४३॥
अरु रमण स्वयंभू उदधि जोय, जो मध्यलोकके अंत सोय।
तामें क्रीड़ा नाना प्रकार, कीनी सो याद करौ अबार ॥४४॥
तब सुनकर श्रीमती सु जान, सब पिता बचन कीने प्रमाण।
जाति सुमरणकर सब लखाय, फिर पिता थकी ऐसे कहाय ॥४५
मो पतिको जनम कहांसु थाय, सो अब किरपा करदो बताय।
ऐसें पुत्रीके बचन सार, सुनके चक्री बोले उदार ॥४६॥
जो होनहार कारज महान, सो तुमसे मैं करहू बखान।
पूरब भव तुम वर थो महान, सो अबभी निश्चै मिले आन ॥४७
दिवश्रुत्वा नामा नगर जान, तहां राय यशोधर तेज खान।
राणी वसुंवरा सीलवान, सुत वज्रजंघ उपजो महान ॥४८॥
बर रूप कला धारे अनेक, तुम पति बरबाढे युत विवेक।
पूरब भवमें जो वृष उदार, सेयो तिस फल भोगे अपार ॥४९
निज आयु अंत तज स्वर्गवास, हम तुम उपजे यहाँ सुखरास।
अब निश्चै तीनदिवस मझार, तोहि वज्रजंघ मिलसी कुमार ॥५०

सवैया-३१

तुम पति ललितांग बर भयो आय इत वज्रजंघ नाम सार
कुंवर उदार है। तेरी भुवाको तनुजमें हो वाकौ मातुल हूं
सोई वज्रजंघ तेरो पति होनहार है। धाय पंडिता खबर तोहे
देयगी सुवाके लेनेके निमति मेरा जानेका विचार है।

चक्री कहे सुन सुता शोक तज बेग अब धर अनुराग कर सुंदर अहार है ॥५१॥

चौपाई

इस प्रकार बहु वचन उदार, पुत्री संतोषी तिह बार ।
चक्रवर्त फुनि गये प्रवीन, और कथा सुनिए सु नवीन ॥५२॥

पद्धड़ी छंद

सो धाय पंडिता तबहि आय, तिस मुखकर फुल्लित जबहि थाय । हे पुत्री श्रीयमती सुजान, मैं तुझ कारज साधा महान ॥५३॥ सखि तेरे पुण्य उदै महान, तुव सर्व मनोरथ सिद्ध थान । यहांपे पटमें लेगई जबहि, मंदिरमें फैलायो तबहि ॥५४ बहुजन तब विस्मयवंत थाय, मिथ्यावादी केई इम कहाय । इस पट तनौ सबही वृतांत, हम जानत निश्चै रहित भ्रांत ॥५५

चौपाई

गूढ अर्थ पूछत परमाण, भये निरूत्तर लज्जावान ।
बज्रजंघ इस अंतर आय, जिनमंदिरमें पूज रचाय ॥५६॥

चाल अहो जगत गुरुकी

रूप सुगुण संजुक्त मोहित सब जन चिता, पट्टसालमें आय पट्टको देख पवित्ता । स्वयंप्रभा जिस नाम सो मम देवी थाई, तसु वियोग चित ठान लोचन जल भर लाई ॥५७॥ जाती सुमरण थाय तबैही मूर्छा आई, तिसको जो परवार पवनादि कहि कराई । चेतनताको पाय मुझसे इम पूछायो, हे भद्रे येह पट्ट किस प्रियने लिखवायो ॥५८॥ मैं ललितांग सुदेव स्वर्ग ईसान जु मांही, मेरी देवी सोय कहाँ चय कर उपजाई ।

क्रोधादिक सब चिह्न गूढ़ दिये बतलाई, तबमैं भाषौ एम मातुल बेटी थाई ॥५६॥ श्रीयमती जिस नाम लक्ष्मी समवुत वानौ, तुमरे गुण आशक्त तुम ललितांग सुजानौ। तुम मिलापके काज पट्ट लिखो सुखदानी, ममकरमें निज पट्ट तब दीनौ हरषानी ॥६०॥

चौपाई

इम सुनके नरराय उदार, चित्र कर्म तिस सम निर्धार।
अपनो पट लिखके ततकार, मम करमें दीनो हित धार ॥६१॥

दोहा—येह बचन सुन धायके, श्रीयमती हर्षाय।
चितमें अति हर्षित भई, आनन्द अंग न माय ॥६२॥

तब कन्या निज हाथ पसार, पटको लेत भई सुखकार।
चलो चलो इम बैन उचार, जिनमंदिर पहुंची ततकार ॥६३॥
तिसको दियो पट्ट निरखंत, सूचक स्नेह तनो परवंत।
श्रेष्ठ जु वरकी प्रापत मान, सुभ भागन चितमें हर्षान ॥६४॥
तिम पटकौं करमें ले सोय, पूरब भव अपने सब जोय।
निज चितमाही तब हर्षाय, मानौ पति मिलयौ सुखदाय ॥६५
तब चक्री संपत ले लार, नित तट गमन कियो हित धार।
नार पुत्र जुत मिलयो जबं, वज्रबाहु भूपति सो तबं ॥६६॥
चक्री बहु पाहुनगत करी, मनमाही बहु आनन्द धरी।
यथा उचित कीनो सनमान, सत बच भाषे प्रीत निधान ॥६७
बुधवान मम गृहमें सार, रत्नवस्तु जो रुचे अबार।
तिसकौं प्रीत थकी तुम गहौ, मम आग्रहते नरपत अहो ॥६८॥

तुमरे हमरे प्रीत महान, वर्तै स्नेहवर्धनी जान ।
निज नारी अरु सुत जु होय, मम घर चालो प्रीत सुमोह ॥६६
इम सुन वज्रबाहु नरराय, कहत भयो इम बच सुखदाय ।
तुम सनेह कर जो देखियो, तातैं धन्य धन्य मैं भयो ॥७०॥
वो रत्नादिक वस्तु अपार, क्षणभंगुर जानौं निरधार ।
नाथ तुम्हारी कृपा ऋसाल, रत्नराशसे अधिक विशाल ॥७१
तौं पण तुम बचमैं उर धार, मो सुतकौ दो कन्या सार ।
संपत वाहन वारंबार, मिले हैं तुम किरपा अनुसार ॥७२॥
तातैं सिद्ध कछु नहीं थाय, मम प्रार्थना पूरो राय ।
तब चक्री बोले विहसाय, कन्या रतन लेउ सुखदाय ॥७३॥
और रतन सब अपने जान, हमरो तुमरो भेद न मान ।
तब चक्री नृप आय सदीन, मंडप ब्याह रचौ परवीन ॥७४॥
सोनेके बहु थंभ लगाय, मोती माल तहाँ लटकाय ।
कूट सु उज्जल तुंग महान, धुज पंकत कर शोभावान ॥७५॥

अडिल्ल

स्थापित रत्नने निरमापो मंडप वही, सहस देवता आज्ञा जसु माने सही । पद्मराग मणिमय जहाँ वेदी सोहये, चारों दरवाजे कर जन मन मोहये ॥७६॥ चक्रवर्त जिन पूजा करत भये तहाँ, महापूत नाम चैत्यालय है जहाँ । पर्व अठाई तनी महा पूजा करी, मंगलकारक भक्त प्रभूकी उर धरी ॥७७॥ बहु भव्यनके साथ न्हवन जिनको कियो, जिन पूजनतें जन्म सफल निज कर लियौ । शुभ दिन लग्न मझार महा उतसव करौ, गीत नृत्य शुभ गान मनोहर ध्वन भरो ॥७८

कंचन कुम्भ भराय स्नान वधुवर कियौ, वस्त्राभूषण माला आदिक पहरयो। वेदी मध्य प्रवेश वधू वरने कियो, पट्टे ऊपर बंठ बहुत आनंद लयौ ॥७६॥

गीता छंद

पाणिग्रहण विध सहित करके, अति सुखी दंपत भये।
फिर वधूवर जिन पूज करने, जैन मन्दिरमें गये॥
अभिषेक कर जिनराजको, पुनि अष्टद्रव्य संजोयके।
शुभ रतन मई जिनबिंब पूजे, चित्त निर्मल होयके ॥८०॥

चौपाई

जिन पूजा कीनी बहु भाय, प्रभु गुण मधि रंजित अधिकाय।
स्तोत्र आरम्भ कियौ तब राय, जातैं भव भव पातक जाय॥८१
कलप बेल सम पूजे येय, भव जनको मन वांछित देय।
सब हित अर्थ तनो दातार, स्वर्ग मुक्त कर्ता निरधार॥८२
नाथ तुमारी प्रतमा जोय, दीप्त प्रभाकर सोभित सोय।
चिंतत अर्थतनो दातार, चिंतामणिसे अधिक निहार॥८३॥
हे स्वामी तुम भक्त पसाय, पुन्य उपार्जन कर बहुभाय।
धर्म अर्थ कामहि शिवसार, साधे पुरषारथ भवि चार॥८४
जिनाधीश तुम स्तोत्र पसाय, पंडित गुणगण जुत शुभ थाय।
तीन जगत जिनको श्रुति करे, असो पदवीसों नर धरे॥८५॥
जो नर तुमरो पूजा करें, पूजनीक पदवी सो धरें।
इन्द्र होय वा चक्री थाय, तीर्थनाथ होवे सुखदाय॥८६॥
तुमकौ नमस्कार जो करै, विनय भक्त बहु उरमें धरै।
ते होवे त्रिभुवनके ईश, तिनकौं नावें सुर नर सीस।
जो भवि तुम आज्ञा आचरे॥८७॥ तुम समान प्रभुताकौं वरे,

जो तुम नाम जपे मनलाय, तौ परमेष्टी पदवी पाय ॥८८॥

मरहटी

नेत्र सफल तुम दर्शन देखत, बचन सफल तुण गावंत ।
सफल भयो मन तुम गुण चिंतन, चरण सफल निज गृह आवंत ।
हस्त सफल भये जिन पूजनतें, सीस सफल भयो नमन करंत ।
तुम चरणन भेटनतें, स्वामी जनम जनमके पावन संत ॥८९॥
तुम गुण सागर अगम अथाई, गणधरसे नहि पार लहे ।
हम तुच्छ बुद्धि निपट अज्ञानी, तुम गुण वरणन केम कहे ।
नमस्कार है तुमको स्वामी, तुम गुण मणके समुद उदार ।
तीर्थनाथ तुमकोमैं वंदूं, बिन कारण जग बांधव सार ॥९०॥
अस्तुति पूजा जो मैं कीनी, कर प्रणाम तुम जस उचार ।
ताकौं फल मैं ये वांछित हूं, देवो निजगुण संपत सार ॥
इम अस्तुति तीर्थेशनकी, कर पुन्य उपायौ बहुत तत्कार ।
बहुत भव्य बांधव नारी युत, नमन कियौ बहु बारंबार ॥९१॥
जात भयो चक्रीके पुर फुन, काम समानी सुन्दर देह ।
आपसमें आशक्त भये अति, पूरब भवकौं हुतो सनेह ॥
बहुत काल सुन्दर सुख भोगे, क्रीड़ा करे चित उमगाय ।
बज्रबाहुने फुन निज कन्या, अनुधरी जिस नाम कहाय ॥९२॥
चक्रवर्तके सुतको ब्याही, अमित तेज जिस नाम बताय ।
निज भाणीजको कन्या तबही, प्रीत सहित दीनी हर्षाय ॥
वज्रजंघ अरु श्रीयमती फुनि निज, पुर चलनेकौ उमगाय ।
चक्रीने जमातको दीने, हय गयरथ शिवका बहुभाय ॥९३॥

चौपाई

रत्नादिक बहु देश सु दिये, पट भूषण दीने बरनये ।

नारीवर परवार समेत, वज्रजंघ बहु हर्ष उपेत ॥६४॥
दानमानसे तोषित कीन, तिनकौं विदा करे परवीन ।
क्रमसे धुनवादित्र समेत, वज्रजंघ बहु हर्ष उपेत ॥६५॥
मातापिता नारी जुत सोय, महाविभूत लिए संग जोय।
कई प्रयाण करके नर राय, निजपुर उत्पलखेट लखाय ॥६६
महल सु देखे सुखकी खान, धुज तोरण कर सोभावान ।
क्रमसे सोभा निरखतराय, राजमहलमें पहुंचे जाय ॥६७॥
अब सो महल विषै नरराय, श्रीमति तिय संग केल कराय।
वज्रजंघ नृप पुण्य पसाय, निसदिन सुख भुंजे अधिकाय ॥६८
श्रीमतिके क्रमसे सुत भये, वीर बाहु आदिक वरनये ।
इक्यावन जोड़े क्रमसो लहो, दिव्य अंग धारक सब थये ॥६६

जोगीरासा

वज्रबाहु एक दिवस महलपै बैठे जुत अनुरागे, सरद बादले विघटत देखे मनमाही वैरागे। जगत भोग तनराज अथिर लख वृषफलमैं चितलाये, मन बचकाय तिहूं सुध करकैं दीक्षाको उमगायो ॥१००॥ अहो बादले जेम विघट गये देखत देखत भाई, वधू जन अरु राज रमा सब त्यौंहो ये खिर जाई। राज्य पापमय निंद्य अधिक है पापखान यह नारी, भोग भुजंग समान कहे हैं दुख सागर संसारी॥१०१॥ पांचौ इन्द्री बड़ी चोर हैं रत्नत्रय ले लेवै, रिपुकषाय सब अनरथकारी बिश्वैसे दुख देवे। जलबुद्ध बुद्धवत जगतभोग सब इनमें सार नहीं है, तीन जगतमें सुन्दर सो भी सांस्वत तान लहो है॥।१०२॥ सार एक रत्नत्रय जामें केवल लहि

शिव पावे, तप समान इस जगमें बा हि प्राणी सुक्ख लहावे। इम विचारकर मोह रिपु हत पणइंद्री बसकीनो, शिव साधन जो ज्ञान चरणतप दर्शन युत बुध दीनो ॥१०३॥ इम विचार कर सब पर्यनसे मनमाहीं वैरागे, पुत्र तनो अभिषेक सु करके राज दियो बड़भागे। अहिवत श्रियकों त्याग तत्क्षण उमगौ नृप तप कार्ज, शिव कारण राजा गयो बनमें, यमधर मुन जहाँ राजे ॥१०४॥ नमन कियो यमधर मुनको जो तीन लोकके त्राता, अन्तर बाहर परिग्रह तजके दीक्षाली शिवमाता। वज्रबाहु नृप उदास ह्वै के जिस दिन संजम लीना, सात सतक नृपने संग तिस ही ग्रहको त्याग जु कीना !॥१०५॥ वीर बाहु आदिक श्रीमति सुत एक शतक ह्वै जाना, निज दादाके लार तत्क्षण दीक्षाली गुण-खाना। अन्तर बाहर परिग्रह तजके चित्त वैराग्य जगाये, होत भये मुन जग हितकारी सब जग धंद नसाये ॥१०६॥ वज्रबाहु मुन देशमें कर विहार भविबोधे, दर्शन ज्ञान चरित तप करके निज परणाम सु सोधे। शुक्लध्यान असिलेय मुनीस्वर कर्म आदि सब नासे, केवलज्ञान लय सुख सागर शिवपुर कीनौ वासे ॥१०७॥

चौपाई

वज्रजंघ नृप पुन्य पसाय, राज संपदा बहु भोगाय।
न्याय थकी नृप राज सु करे, तातैं परजा आनंद धरे॥१०८

लावनी

चक्रधर एक सुदिनमांही सभा, सिंहासन बैठाई।

इंद्रकीसी लीला करतो, राज्यगण सेवत मन हरतो ॥१०६॥
तबै वनपालक तहाँ आयो, भेंटधर चरनन सिरनायो ।
हाथमें कमल तबै दीनौ, गंध संजुत अतिही मीनौं ॥११०॥
लखो चक्रीने तब वोही, मृतक षटपद उसमें सोई ।
निजही मृत्यु शंका जब कीनी, चित वैराग्य दशासु लीनी ॥१११
काम भोगादिक सब तजहूं, राज तज निज आतम भजहूं ।
अहो एक इंद्रीवस होके, भ्रमरने प्राण अविभोंके ॥११२॥
पंचइन्द्री जो भोगाई, लहे सो दुःख क्यों नाहीं ।
सकल जग दुखकर्ता जानौ, निंद्य दुगतिमैं उपजानो ॥११३॥

चौपाई

काया कर जो सुख भोगाय, काम दाहकी शांत चहाय ।
सो सब असुच वस्तु भंडार, नारीको तन अतिही सार ॥११४
पांचों इन्द्री तस्कर जहाँ, अरु कषाय शत्रु है तहाँ ।
क्षुधा तृषादिक रोग महान, तिस कायामें क्यों रतिमान ॥११५
एते दिनमैं योंही गमाय, वृथा शरीर जु पोखन थाय ।
भोगन करके तृप्त न भयो, अज्ञानीवत घरमें रहो ॥११६॥

पायता छंद

मैं ज्ञानत्रयकौ पायो, कछु काजनतौ भिसरायो ।
वसु कर्मतनौं क्षय करहूं, फुनमुक्तरमाको बरहूं ॥११७॥
धन धन्य वही जगमाही, जो शिव साधन सु कराही ।
यह है अनंत संसारो, दुख पूरित जास न पारो ॥११८॥
चहूं गत मैं बहु दुख पायौ, सुखको नहीं अंस लखायौ ।
जो इस जगमें सुख माने, विषयनकी इच्छा ठाने ॥११६॥

सो दुक्ख बहुत से पाके, संसार माह भटकाके ।
गृह आश्रम बुधजन निंदो, यह मोह अरीको फंदो ॥१२०
यह राज पाप संतानौ, संपदा नर्क दुख दानौं ।
यह बंधन समहै रामा, दुख की माता अघ धामा ॥१२१
सुत पास समान निहारौ, पिंजर सम कुटुम्ब बिचारौ ।
मृत की घटिका जब आवे, तब कोई हितू न बचावे ॥१२२
जब रोग ग्रसित न होई, तब होय सहाय न कोई ।
जो पुन्य उदैसे पाये, निधरत्नादिक मन भाये ॥१२३
सो काल अग्नि कौ पाई, सब भस्मीवत हो जाई ।
इम सब हि अनित्य विचारौ, चक्री विरक्तता धारौ ॥१२४
तब निज सुतको बुलवायो, निज राज देन उमगायो ।
जिस अमित तेज है नामा, शुभ जेष्ठ पुत्र गुण धामा ॥१२५
तासैं इम बैन उचारे, सब राज गहो तुम प्यारै ।
सो अति विरक्त परणामा, कहे राज नहीं मो कामा ॥१२६
मैं तुमरे संग रहूंगौ, दीक्षा गुरु पास गहूंगौ ।
इस राजमाह जो दोषा, तुमने निरखो सुख पोखा ॥१२८
तासो विशेष मैं जानौं, अनरथ की खान लखानौं ।
गृह आश्रम में सुख होई, तौ तुम ही क्यों त्यागौई ॥१२८
मैं तुमरे साथ लहूंगौ दीक्षा ग्रह नांहि रहूंगौ ।
इन उत्तर करके जानौ, तिसे राज परान्मुख मानौ ॥१२६
तब पुत्र हजार बुलाये, तिनकों सब बैन सुनाये ।
तुम राज ग्रहो सुखदाई, मैं दीक्षा लूं बन जाई ॥१३०
ते सबही ह्वै बैरागी, उच्छिष्ट समान ऋध त्यागी ।
तब पुंडरीक जिस नामा, सुत अमिततेजको तामा ॥१३१

बालक बय तिसकौं राजा दीनों विभूति समाजा ।
चक्री नृप चलौ तबैही, तपके कारणसु जबै ही ॥१३२

गीता छंद

सब त्रिया आदिक साथ लेके, सुत हजार मिलायके ।
तहां जिन यशोधरके सुगणधर, तिन नमो हित लायके ॥
मन वचन काया सुधकरी जिन, त्रै जगत हितकार हैं ।
बाह्याभ्यंतर त्याग परिग्रह, आतम मैं स्थित धार है ॥१३३
तिन पास चक्री लही दीक्षा, सहस सुत तप धारियो ।
फुनि सहस तीससु और राजा, सब परिग्रह छारियो ॥
अरु सहस साठ सुराणियौ, मिल सबनने तप तहां लियो ।
फुनि पंडिता जो धाय थी, निज योग्यताने तप कियो ॥१३४
सुभ पंडिताई सोई जानौं, जो संसार हितै तिरे ।
अब सब मुनि तप घोर करते, देश बन मध बीहरे ॥
अब वज्रदंत मुनीश करमैं, शुक्लध्यान सु असि गहो ।
सब कर्म रिपुकौ नाश करके, केवली पद को लहो ॥१३५
इंद्रादि बहुविध देव आए, सबन पूजा कर ठये ।
फुनि वज्रदंत सु मुक्त पहुंचे, सुख अनंते तहां लये ॥
अरु मुनी चरमांगिके, इक ध्यान असि करमै लये ।
दुठ कर्म अरिको नास करके, शिवपुरी बसते भये ॥१३६
और मुन तप तपनसे ही, स्वर्गमें जाते भये ।
सौधर्म सेती आदि लेके ग्रीवकादिनमैं गये ॥
सम्यक्त बलतै अर्जका सुरलोकमैं कितनी गई ।
सौधर्मसे अच्युत सु ताई, देव देवी बहु भई ॥१३७
अब पुंडरीक सुमात जानौ, लक्ष्मीमति जिस नाम है ।
सो करत चिंता राज केरी, भई दुखको धाम है ॥

यह चक्रवर्त विभूत थी, इतनाहि समरथ जानियो।
यह बाल वय अरु बुद्ध रहित, दुहू बात दुर्घट मानिये ॥१३८

चौपाई

वज्रजंघ बिन राज अबार, अरिगणसे पीड़ित उर धार।
सकल शत्रुकर पीड़त जोय, कैसे कर निकंटक होय ॥१३६
यह उरमें करके निरधार, मंदरमाली खग सुत सार।
गंधर्व पुर कोई स्वर जोय, चिंता गति मनगत सुत दोय ॥१४०
सकल काजकर्ता परवीन, तिन करमें पटयारी दीन।
अपनौ पत्र भेद जुत धरौ, तिन सौ सब ब्यौरो उच्चरौ ॥१४१
वज्रजंघके निकट सु जाय, तिनसे सब कहियो समझाय।
पुत्र सहित चक्री बन गये, घोर तपस्या करते भये ॥१४२
पुंडरीककौ राजमभार, स्थापो बालक तब निरधार।
कहां अद्‌भुत चक्रीकौ राज, कहां दुर्बल बालक बेकाज ॥१४३
ताके कोई नाहि सहाय, बिन सहाय नहीं राज रहाय।
तिस सु देश के पालन काज, आपहि चलै येह महाराज॥१४४
इस विध दूत दियौ समझाय, तब आकास मारगो जाय।
उत्पल खेट नगर पहुंचयो, नृप मंदिरमें जातौ भयो ॥१४५
बैठो सभा माह भूपाल, वज्रजंघ अरिगण उर साल।
तिनकौ नमस्कार इन कियौ, भेट करंडादिक सब दियो ॥१४६
पत्र खोलके बांचौ जबै, ताको रहस लखौ सब तबै।
कर अचरज इम कहते भयौ, देखो चक्राधिप पुन भयौ ॥१४७
राजलक्षको करके त्याग, जिनदीक्षा लीनी बड़ भाग।
धन्य धन्य चक्री सुत थाय, त्रहु साहस कीनौ उमगाय ॥४८१

पंचेन्द्री बैरी हत सही, पिता साथ जिन दीक्षा लई ।
अैसें तिनकी थुत बहु कीन, तिस कारज करणे परवीन ।।१४६
श्रीमति आगै सर्व सुनाय, पत्र माह जो बरनन पाय ।
तिस वृतांतकौ सुनके सही, श्रीयमती मन खेदित भई ।।१५०
ताकौ नृप संबोधत भयौ, तहाँ चलनेको उद्यम कियो ।
तबही दूत विसर्जन कियौ, तीर्थेश्वरपद पूजत भयौ ।।१५१
सर्व विघ्नहर्ता है सोय, स्वर्ग मुक्त कारण है जोय ।
चतुरंग सेन्या सब संग लई श्रीमतितिय भी साथे ठई ।।१५२
मतबर मंत्री संग सु ठान, आनंद नाम पिरोहित मान ।
श्रेष्टी है धनमित्र महान, सेनापति सु अकंपन जान ।।१५३
इन चारौंको संग सु लियौ, अन्य प्रधान पुरुष चालयो ।
वज्रजंघ नृप कियौ पयान, देवराज सम क्रीडा ठान ।।१५४
बाजे बाजत बहुत प्रकार, तिस विभूतकौ गिनत न पार ।
मंत्री आदिक सुभ सावंत, साथ चले सबही दुतवंत ।।१५५

अडिल्ल छंद

बन खंड माही सर्प सरोवर ढिग गये, सीतल तरु छाया लख तहाँ ठैरत भये । तहां मध्याह्न बेलामें धीर महाव्रती, लाभ अलाभ समान घोर तप धर जती ।।१५६।। मनुष देव अरु खेचर जिनकौ वंदते, ऋद्ध अनेक सु भूषित जगकौ निंद्यते । बन चर्याकी नेम सु तिनकौ नौ सही, तीन ज्ञान संयुक्त भव्य हितकी मही ।।१५७।। जो संसार उदधिके तारनहार है, दमथर सागरसेन नाम जुग धार हैं । चारण ऋद्धके धारक तहाँ जाते भये, पुण्य उदै परमाण राय तिन

लख लिये ॥१५८॥ वज्रजंघ तिन देखत निधि सम जानियो, श्रीमतिराणी साथ सु आनंद मानियो। मुन चरणनको नमस्कार कीनौ सही, तिष्ठ तिष्ठ इम भावभक्ति अधिकी ठई ॥१५९॥ ऊँचे आसनपे तिनको बिठलाइयो, सुद्ध सु जलसे पद प्रक्षाल कराइयो। अष्टद्रव्यसे पूजन कर वंदन करी, मन वच काय त्रिशुद्ध एषणा शुधवरी ॥१६०॥ ऐसे नवधा भक्तिकरी नृपने जबै, फ़ुन दातारतने गुण सप्त धरै तबै। श्रद्धाशक्त अलुब्धभक्त ये जानके, ज्ञानदया अरु क्षमा सप्त यह ठानके ॥१६१॥ मधुर पुष्टकारी अरु प्रासुक जानिये, छयालिस दोष रहित तप वृद्धक मानिए। श्रीमति राणी साथ भक्त करके दिये, विध संजुत अन्नदान परमपात्र-निलिए ॥१६२॥ तत्क्षण दान प्रभाव देव तौषित भये, नृप आंगणके माह पंच अचरज ठये। पुष्प वृक्ष अर रत्नधार बरषाइयो, गन्धोदक जुत वायु सु गंध चलाइयो ॥१६३॥ दुंदुभि बाजे बजे समुद जिम गरज ही, अहो धन्य यह दान धन्य दाता सही। धन यह दुर्लभ पात्र पोतसम जानियो, व्रहु देवोंने मिल इम वचन बखानिये ॥१६४॥ दान तनौ फल इम साक्षात लखौ तबै, लख करके राजा सुविचार करे तबै। दान थकी सब संपत होवे सारजी, दान स्वर्गको कारण है निरधारजी ॥१६५॥ ग्रह नायक यह दान सदा ही दीजिए, दानपात्रकौ सुखकर्ता लख लीजिए। देखो पुन्य उदैते चक्रि सुतागही, पुन्य उदैतैं राज संपदा सब लही ॥१६६ सर्वभोग उपभोग सु उनने पायही, ऐसो जान सो भव्य धर्म

रत थाय ही । दर्शन ज्ञान चारित्र गुण उर धरे, ऐसें पात्र गुणां बुध तिनकी नुत करे ।।१६७।।

गीता छंद

'तुलसी' सीतापति जिते हैं देव ते जु कुदेवजी ।
षट्खण्ड मंगल गयो कह गत दोय बंदो एवजी ।
तिमये भिदेव कुदेव हैं, नहिं देव लक्षण इन विषै ।
अब बुद्धिसागर वर्द्धनेको, चन्द्रसम जिनवर लखे ।।१६८।।

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचित श्री वृषभानाथचरित्रे वज्रसंघ श्रीमती विवाह पात्र दानं करण वर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ।।४।।

अथ पंचम सर्ग

गीता छंद

धर नगन मुद्रा बन बसे, पीछी कमंडल कर लिये ।
सागर सुबुध वर्धनकौ शशि वर पात्र तेई धर हिये ।
तिनको सुदान सु देय भविजन सोई, बटतरु समझ ले ।
जो देयदान अपात्र कोसो बीज वृक्ष सबै जलै ।।१।।

चौपाई

महा पात्र गुण पूरण सार, उत्तम गुरु जगके हितकार ।
जगजेष्ट जिनवर जग सार, बंदूं निजगुण दो हितकार ।।१।।
बुद्धवान भूपत तब एव, खोजेके मुख्य मुनि सब भेव ।
अपने लघु सुत जाने सार, बालकवय जिनदीक्षाधार ।।२।।
श्रीमति हर्षित चित उचार, भी स्वामी जगके हितकार ।
ग्रहो धर्म जो है सुखकार, सो भाखो अब किरपाधार ।।३।।

तिसके प्रश्न थकी मुनराज, जेठे दमवर धर्म जहाज ।
कहत भये ये वृषसागार, अति विभूत संपत दातार ॥४॥
अच्युत स्वर्ग विषैं उपजाय, राजसंपदा यहां बहु पाय ।
धर्म संजुत नित काल बिताय, षटकर्मोमें रत नित थाय ॥५॥
जिनपूजा सतगुरुकी सेव, स्वाध्याय संजम बहु भेव ।
तप अरु दान भक्तिजुत करौ, शक्ति समाना सुख आकरो ॥६॥
दोहा—षट सुकर्म इस विध कहे, धर्म मूल सागार ।
विध संजुत तुम नित करौं, धर्मसिद्ध हितकार ॥७॥
हर्षित चित इम धर्म सुन, नमन कियो ततकार ।
अपने गुरु निजनारके, भव पूछे नृप सार ॥८॥

पद्धड़ी छन्द

तब सो मुनि कहत कृपा निधान, जयवर्मादिक भव सब बखान। मुनि अवधिज्ञान संयुत निहार, भव सुन नृप कीनो नमस्कार ॥९॥ फिर पूछत है योगी सुसार, मतिवर मंत्री आदिक सु चार । इनके उपर मम अति सनेह, वर्तत हैं प्रभु कारण सु केह ॥१०॥ तब मुनिवर इम उत्तर बखान, एकाग्रचित सुन बुधवान । तुम पूरव भवकी जो कथान, मैं कहूं सर्व संक्षेप जान ॥११॥ जंबू सुदीप पूर्व विदेह तहां देश वत्सकावति गिनेह । तहां प्रभाकरी नगरी विचार, तहां मुक्तिकाज वृष बहुत धार ॥१२॥ अतिग्रद्धि नामक राजा सुजान, अतिलोभी वृषसे रहित मान । अति मूढ विषय आशक्त जोय, सब धर्म कर्मसे रहत सोय ॥१३॥ बहु आरंभ

परिग्रहमैं सु लीन, तब नरक आयुकौं बंध कीन। मर चौथे नर्कहि माह जाय, तहां दस सागरको आयु पाय ॥१४॥ तहां बहु दुख भुगते नाहि पार, वहांसे निकलौ तन व्याघ्र धार। तहां प्रभाकरी नगरी सु पास, ध्रतनाम सु पर्वत द्रव्य रास ॥१५॥ एक दिन पुरके बाहर उद्यान, प्रीतीवर्धन राजा बखान। सो जात भयो बन क्रीडा काज, तहां तरु कौटरमें मुनि विराज ॥१६॥ पहताश्रव नाम योगिन्द्र सार, बैठे सु मास उपवास धार। मनमैं सुधर्म अनुराग धार, नृपने कीनो तब नमस्कार ॥१७॥ मुन धर्मवृद्ध तब ही सु दीन, राजा मनमैं आनंद लीन। निज नगर माह ततक्षण सु आय, सब ग्रहमें तोरण बंधाय ॥१८॥ सब नगरीमें घोषण दिवाय, मुनको अहार कोई नाह द्याय। सबके आंगन अरु मार्ग माह, सब यान पुष्प दीने बिछाय ॥१९॥ जब मुन आवे करुणा निधान, अप्राशुक मारग नहि चलान। स्वयमेव राजमंदिर सु जाय, तब ही मम कारज सिद्ध थाय ॥२०॥ आये मुनवर करने अहार, पथको सचित तब ही निहार, तिस ऊपर गमन अयोग्य जान, नृप मंदिर पहुंचे दया खान ॥२१॥ सो राजा अति आनंद पाय, मुनको नमोस्तु तब ही कराय। तब नवधा भक्त संजुक्त जान दातार तने गुण सप्त ठान ॥२२। प्राशुक मुमधुर आहार दान, निज पर उपकारक सर्म खान। सो देत भयो राजा महान, जो सेती होवे मोक्ष थान ॥२३॥ ता दानथकी बहु पुण्य लीन, सुरगण तब पंचाश्चर्य कीन। बररत्न वृष्ट वह व्याघ्र देख, पूरवभव अपने सर्व पेख ॥२४॥

चौपाई

परिग्रह आस तजी दुखकार, सब आहार कीनौ परहार।
सुभ संवेग माह धर चित्त, लियो परम सन्यास पवित ॥२५
अनसन जुत तिष्टो सेल जाय, ज्ञान थकी मुन सर्व लखाय।
भूपतसे मुन इम बच चये, नृप आज्ञा सिर धरते भये ॥२६

पद्धड़ी छन्द

भो नृपत व्याघ्र यो थो मलीन, सन्यासमर्ण अब ग्रहण कीन।
संबोधन वच तुम देहु जाय, जासेही भव भिरमन नसाय ॥२७

चौपाई

आदि तीर्थंकरके सुत सार, चक्री भरत होय निर्धार।
तप धर जाय मोक्षपुर माह, यामैं संसय कछु भी नाहि ॥२८
दोहा—इस प्रकार मुन वचन सुनि, विस्मय धरौ नरेश।
गयो नृपत मुन युन निकट, साहस धार विशेष ॥२९॥

अडिल्ल छन्द

दिया धर्म उपदेश मुनीश्वरने तबैं, नमोकार वर मंत्र सुरनायो शुभ तबै। दिन अष्टादश तनौं सन्यास सुधारियो, निजवपु शेष न ठान ध्यान जिनको कियो ॥३०॥ तप तज कर ईसान स्वर्गमें जानिये, नाम विमान दिवाकर प्रभसु बखानिये। तहां दिवाकर देव भयौ रिध जुत सही, सो व्हां तिष्टे और कथन अब सुन सही ॥३१॥ तुमरे दान प्रभाव पंच अचरज भये, सेनापति मंत्री प्रोहत लख लिये। सब अनुमोदन ठान भोगभूमें गये, जंबू दीप मंझार उत्तर कुरुमें ठये ॥३२॥ भोगभूमि उत्कृष्ट तने सुख पाइयो, कल्पवृक्ष दस

जात थकी भोगाइयो। प्रीतीवर्धन राय तिसी मुनकेनषैं,
दीक्षा ले विध जाल पाइयो पद लषैं ॥३३॥

चौपाई

मंत्रीचर जो आर्य महान, अन्त समाधयुक्त तज प्राण।
दिव ईसान मध कनक विमान, भयो कनकप्रभ सुर द्युतवान ॥३४
सेनापत चर भो तिस थान, जान प्रभंकर नाम विमान।
नाम प्रभंकर सुर अभिराम, होत भयौ बहु सुखकौं धाम ॥३५
प्रोहितचर सुभ आरज सार, आयु अंतमें तनकौं छार।
जाय ऊपनौ रुखित विमान, देव प्रभंजन सुखकी खान ॥३६॥

पद्धड़ी छन्द

ललितांग देवके मित्र सार, ये होत भये चव सुक्खकार।
ललितांग देवको प्रीतदाय, वर होत भये परवार माह ॥३७

छन्द चौपाई

सिंह जीव दिवसेतो चयो, श्रीमति मत सागरके भयो।
सुत मतिवर तिस नाम सु धरौ, ताने मंत्री पद तुम बरौ ॥३८
देव प्रभाकर चय इस थान, नाम अकंपन उपजो आन।
मात आर्जवा पुन्य निधान, पिता नाम अपराजित जान ॥३९
नाम कनकप्रभ सुर थो जोय, स्वर्ग ईसान थकी चय सोय।
श्रुत कीरत जो पिता बखान, अनंतमती माता सुख खान ॥४०
तिनके सो सुर चय सुत भयो, आनंद नामसु तिसकौ दियो।
नाम प्रभंजन जो सुर थाय, सो चयकर उपजो यहां आय ॥४१
दोहा—पूरव भवके स्नेह बस, अब भी बरते स्नेह।
अबसे अष्टम भव विषै, तुम सुत होवे येह ॥४३॥

छन्द गीता

जब क्षेत्र भरतसु माही जिनवर, वृवभ तुम होगे सही ।
सुर नरन करके पूज ह्वै के, मोक्षपद पावौ तुम ही ।
मतिवर सु नामा मंत्रि तुमरो भरत सुत होवे वहां ।
षट्खंड कोपत आदि चक्री अर्षपद पावै तहां ।।४४।।
तुमरो जो सेनानी अकंपन, बाहुबल सुत थाय जी ।
आनंद प्रोहित होय गणधर, बृषभसेन सु भायजी ।
सो अंग पूर्वन तनी रचना सु करे तुम सुत होयके ।
धनदत्त श्रेष्टी सुत तुमारो नंत वीर्य सु जोयके ।।४५।।

पायता छन्द

इम सनके बहु सुख पायो, राजा मनमें हरषायो। मानो तीर्थंकर पद लीनौ, इम चित उत्साह धरीनौ ।।४६।। फुर्नसिंह सुर कपि आई, चौथो न्यौलो सुखदाई । नृप चारों जीव निहारे, बैठे मन समता धारे ।।४७।। सुन पूछो नृप सिरनाई, श्रीगुरु इन भेद बताई । तिन दानुनुमोदन कीनौ, राज. चित अचरज लीनौ ।।४८।। ये व्याघ्रादिक क्रुठ भावा, किम शांत रूप सु लखावा । तुम चरण कमल दिठ दीनी, अटवी तज यहां थित कीनी ।।४६।। यह जन पूरित जु प्रदेशा, क्यों तिष्टे ये तज क्लेशा । पूरब किम पाप कमाये, जातैं पशुजनम धराये ।।५०।। यह सबही बरनन कीजे, मेरो संसय हर दीजे। इम राजाकी सुन बानी, श्री मुनवर बोले ज्ञानी ।।५१।। सुन राजा तुम हित करके, भव व्याघ्र तने चित धरके । इस देश मध्य तुम जानौ, पुरहस्त नाम सु बखानौ ।।५२।। वैश्य सागरदत्त सु नामा, धनवती त्रिया है तामा। उग्रसेन नाम सुत थायो, राखो तुम सठ अधिकायो ।।५३।। विषयांध कुशील भयो सो, अघ उदै

पुन्य रह तोसो। सो क्रोध अप्रत्याख्यानी, बल तिर्यग आयु बंधानी ॥५४॥

चाल मद अवलिप्त कपोलकी मात्रा

नृप भंडार मभार करी चोरी अति भारी, नृप आज्ञा कर कोटवाल पकड़ो दुखकारी। लट्ट मुष्ट बहु मार करी तब मृत्यु लहाई, आरत ध्यान कुधार मरो गति व्याघ्र जु पाई ॥५५॥ अब बराह भव सुनौ नगर है विजय सु नामा, महानंद तह राय सकल गुणगणकौ धामा। तिय बसंतसे नाहर बाहन पुत्र बखानौ, अति अभिमान सुधार पितादिक अविनय ठानौ ॥५६ अप्रत्याख्यान मान थकी पशु आयु बधाई, पिताने शिक्षा दई सोई इम नाह सुहाई। दौड़ो मारग माह थंभ लागो सिर माहो ॥५७॥ मस्तक फूटनथकी आरत ध्यान कराई। प्राण छोड़ अघ थकी यही सूकर उपजाई। पैड पैड पै दुःक्ख लहे सो कहे न जाई, अब बानरकी कथा मनौ नृप चित लगाई ॥५८॥

लावनी

सुधन्यापुरी बड़ी सोहै, तहां श्रेष्टी कुबेर जो है।
सुदत्ता सेठानी थाई, नागदत्त पुत्र जु उजाई ॥५९॥
भयो अति ही मायाचारी, पुन्यसे रहित पापधारी।
अप्रत्याख्यान कुछ लवानो, मेषके अंगसम जानौ ॥६०॥

गीता छन्द

अति कुशीलरु पाप करके, तिर्यगायु बंधाइयौ, अपनी बहन के भात देने ब्याहमैं सो धाइयौ। तहां इक सलाका स्वर्णमय दौनी सबै ही देखयौ, नृपके सुचाकर आन पकड़ौ रायमुद्रा

पेखयौ ।।६१।। फुन बांधके बहु कष्ट दीनो ले गये नृप पासजी,
तह दंड बहु सहके मरे बानर हुवो दुखरासजी । अब नकुल
के भव हम कहें सुन राय मनमैं ठानिये, सुप्रतिष्टपुरमैं हैके
दोई नाम लोलुप जानिये ।।६२।। सो लोभ अप्रत्याख्यान
वसतैं आयु पशु बांधी सही, इक दिवस राजाने सु मंदिर
निर्मयो हितकार ही । तहां को मजूर जु चोर लायो ईंट
सुन्दर जानिये, छिपकर कुबुद्धीने जु लीनी तिन पुवे पापड़
दीनये ।। तिस ईटको ले ग्रह गयो जब धोइयो हितकरि मही ।
जानी सु कांचन तनी तब ही लोभ पूरित ह्वै वही । तब उस
मजूरसे नित लेवै पुवे पापड़ धाइयौ, सो एक दिवस निज
सुतके ग्रह चलनेको उमगाइयो ।।६४।। निज पुत्रसे कहके
गयो, तुम ईट नित्य लाया करो । तब पुत्रने नहिं ईट लीनी,
राज भय उरमें धरो ।। सो दुष्ट निज घर आयके, सब बात
सुन दुख पाइयो । निज पुत्र की बहु मार दीनी, लकुट ले
ताडन कियो ।।६५।।

दोहा–मैं क्यौं गांव चलो गयौ, यो निज निंदा ठान ।
अपने पग तोडे सही लेकर इक पाषान ।।६६।।
नृपने इम जानी सही स्वर्ण ईंट इस लीन ।
तब बुलाय बहुं दंड दियो, मर्ण तबै इन कीन ।।६७।।
इस भवमैं जु नकुल भयो, तुमरो दान सु देख ।
चारों जीव खुशी भये, पूर भव निज पेष । ६८।।

छंद पद्धड़ी

यह दान सु अनुमोदन सु वान, सब भोग भ्रम जावे प्रमाण ।

अब धर्म सुननके अर्थ येह, चारौ जिय तिष्ठे धर सनेह ॥६९
अबसे अष्टम भवके मंझार, तुम तीर्थंकर होंगे उदार।
जब तुमरे सुत ये होय सार, तप धर पावे शिव शर्मकार ॥७०
अरु पहले भी बहु सुक्ख खान, नरदेव तने सुख तुम समान।
भोगेंगे तुमरे ही सु लार, नृप सुनके अपने चित्त धार ॥७१॥

चौपाई

श्रीयमतीचर ह्वै शुभ सार, राय श्रेयांस महा सुखकार।
आद दान तीर्थहि कर्तार, तप धन जावे मोक्ष मझार ॥७२॥
महा ऋषीके वाक्य अनूप, अमृत पान कियो जिम भूप।
रोमांचित ह्वै अंग नमाय, मानो पुन्य अंकूर उठाय ॥७३॥
इस अन्तर योगीकौ बंद, नृप चित भयो सु परमानंद।
मतिवर आदिक मंत्री सार, प्रीत सहित तिष्ठे हितकार ॥७४
मुन जग हित कर्ता शुभ सार, संसाराबुध तारनहार।
ध्यानाध्ययन सिद्धके काज, नभमारग चाले मुनराज ॥७५॥
भूपत मुनवरके गुण ग्राम, उरमैं चिते आठों जाम।
केई प्रयाण करके नरराय, पहुंचौ पुंडरीकपुर जाय ॥७६॥

दोहा—लक्ष्मीवति आदिक सुजान, सर्व शोक संजुक्त।
तिनकौं बहु धीरज दियो, शास्त्र तनी कह उक्त ॥७७॥
पुंडरीकके राज्यकौ पूरबवत थिर थाप।
कोयक दिन रहते भये, वज्रजंघ निःपाप ॥७८॥
गुणजनको सन्मान कर, दियो द्रव्य जो धान।
बालक को राजहि दियो, मंत्री अपने ठान ॥७९॥
तिस मंत्रीकी बुद्धसे, होवे सगरे काम।
सकल कार्ज थिनकर चले, पहुंचे अपने धाम ॥८०॥

तहां पूजा जिननाथकी, करत निरंतर सोय ।
पात्रनिकौं नित दान दे, भक्तवान मुद होय ॥८१॥

पायता छन्द

जिनवाणीकौ उर धरहैं तीरथयात्रा बहु कर है ।
सब बंध बर्गकर सहिता, इम पुन्य उपार्जे महिता ॥८२॥
सुख पुण्य उदै भोगाई, कांता संग प्रीत बढ़ाई ।
इम बहुत काल बीताई, सुखमैं सो अल्प गिनाई ॥८३॥
एके दिन महल सु माही, भामा संग सैन कराई ।
शय्याग्रहके अधिकारी, तिन धूप खेई अति भारी ॥८४॥
कालागुर आदि क्षिपाई, जाली उन खोली नाही ।
धूवो बहु रुकौ जो जबही । दंपत पीड़ा लही तबही ॥८५॥
दोनोंको मूर्छा आई, तब स्वास रुकों अधिकाई ।
भोगाकृत पाप उदै सों, निद्राकर चक्षु मुदे सो ॥८६॥
तब मृत्यु लही छिन मांही, बिन पुन्य सुक्ख किम थाई ।
इन भोगनको धिक्कारा, प्राणौंके हरने हारा ॥८७॥
भोगनमें मूढ़ फंसे हैं, नरकादिक जाय बसे हैं ।
यह भोग भुजंग समाने, बुद्ध क्यों नहि त्याग सु ठाने ॥८८॥
इम जान सु सज्जन लोगा वैरी सम तजो जो भोगा ।
जो मुक्त वधू संग थाई, शास्वत सुख रहै सदा ही ॥८९॥
तब दान तने पर पाई, उत्तर कुरु आयु बंधाई ।
यह जम्बूद्वीप सु जानौ, मेरोत्तर भाग बखानौ ॥९०॥
उत्तर कुरु नाम तहां है, उत्कृष्ट भोगभूमा है ।
तिस सत्याग्रहके माही, व्याघ्रादिकचव तिष्टाई ॥९१॥
सो भी तिस धूपकी धूवां, पाकर प्राणांत जु हुवा ।

तिन दाननुमोदन कीनौ, ताकर बहु पुन्य लहीनौ ॥९२॥
षट् जीव सु पुण्य उपायौ, सो भोग भूम उपजायो।
जिन दाननुमोदन कीनौ, तिन हूं बर सुक्ख लहीनो ॥९३॥
तातैं बुध भावन ठानौं, भव नाशन सो उर आनौ।
नव मास रहे गर्भ माही, जिम रत्न महल तिष्टाई ॥९४॥

गीता छन्द

ते सात दिन चूंसे अंगुठे, सात दिन बैठे सही।
पुन सात दिन डिगमिग चले, दिन सातमैं भाषा गही।
पुन सात दिन थिर पद चले, दिन सप्त सब गुण ज्ञान है।
दिन सातमैं योवन लहे, इन दिन उनंचस जान हो ॥९५॥

इम वज्रजंघादिक सुषट जियदान पुन्य थकी गये।
सुन्दर सु भूवण वसन पहरे, भोग भूसुख भोगये।
दस कल्पतरुके भोग भोगे, तास नाम सुनौ अबै।
मध्यांग अरु वादित्र भूषण, माल दीपादिक फबै ॥९६॥

जोतिग्रहांग सुभोजनादिक, वस्त्रभाजन देत है।
मध्यां नामा तरु सु जानौ, सर्व बलके हेत है ॥
वादित्र नामा वृक्ष देवे, पटह ताल सु झल्लरी।
बानीसु वंसि मृदंग जानौ, संख देय उसी घरी ॥९७॥

भुषांग वृक्षके पूरमाला, मुकट आदिक दे सही।
सब ऋतु तनें जो कुसुम देवे, सो श्रगांग कहो तही ॥
मणि दीप जिम उद्योत हो, दीपांग सोई जानिये।
सूरज सहसकी जोति जीते, जोतिरांग बखानिये ॥९८॥

ऊंचे महल अरु सभाग्रह, शुभ मंडपा जासे लहैं।
वरनाटयशाला चित्रजुत, ताकौ ग्रहांग सु बुध कहे ॥
चतुर्विध आहार सुन्दर, अमृतसम सुखदाय है।

भोजनांग सु वृक्ष दे षट्रस, सु पूरित थाय है ॥९९॥
थाली कटोरा आदि बर्तन, अरु भ्रंगार सु जानिए।
ये भोजनांग सु वृक्ष देवे, पुन पुन उदै परमाणिए॥
रैशमतने शुभ वस्त्र कोमल, अति महीन सुभानिए।
वस्त्रांग जात सु कल्पतरुवर, देव सब सुख खानिए॥१००॥

चौपाई

नहीं वनस्पतिकाय सु जान, देवाधिष्टित नाहीं मान।
केवल पृथ्वीकाया सार, कल्पवृक्ष सब सुख कर्तार॥१०१॥
जाको आदि अंत है नाहि, ऐसे तरुवर तहाँ तिष्टाय।
पात्रदान फलतें उपजाय, दाता बहुविध सुख लहाय॥१०२
दिपे रत्नमय पृथ्वी जहाँ, सर कमलनजुत सोभै तहाँ।
क्रीडा पर्वत सुंदर खरे, फल फूलनसे सब वन भरे॥१०३॥
उंगल चार प्रमाण जु घास, सुंदर मृग चरते सुखरास।
नहीं चांदनी नही आताप, शीत ग्रीष्मको नहीं कलाप॥१०४
वर्षादिक ऋतु फिरत न जहाँ, रात्रि दिवसको भेद न तहाँ।
सौम्यकाल सुखदायक तहाँ, कोई उपद्रव होय न जहाँ॥१०५
आदि व्याधि अरु जरा जु रोग, स्वपने नाहीं व्यापे सोग।
इष्टवियोग होय नही जहाँ, तिम अनिष्ट संजोग न तहाँ॥१०६
नही आलस नही निंद्रा जान, नही नेत्र माही झपकान।
नही मल मूत्र होय सर्वदा, स्वेद लाल जहाँ नाही कदा॥१०७
नार पुरुषको नाहि वियोग, अनाचारको नही संजोग।
नहीं भोगोंमें अंतर होय, अरुच खेद मद ग्लान न कोय॥१०८
बाल सूर्य जो दिपे अभंग, तीन कोसकी देह उतंग।

तीन पल्यकी आयु सु धार, अद्भुत सुंदर शुभ आकार ॥१०६॥

अडिल्ल

वज्र वृषभ नाराच संहनन जानये, दिव्य रूप लावण्य सहित उर आनये। भोगोपभोगतनी सामग्री सम कही, सब समान सुख भोग करें निश्चय यही ॥११०॥ बदरी फल सम ले अहार दिन त्रय गये, सबके मंद कषाय इसे होते भये। शुभ आशय सब धरें आय निश्चित हो, हीनाधिक बिन दसविध सुख भुंजत तहीं ॥१११॥

चौपाई

दसविध कल्प तरोवर सार, कल्प साखि छाया सुखकार।
पात्रदान अनुमोदन पसाय, नाना विधके सुख लहाय ॥११२॥
दंपत साथही जन्म लहाय, मात पिता तबही मर जाय।
भगनी पुत्र सुविकलप नाह, छीक जंभाईसे मृत्यु पाय ॥११३
जिनके है कोमल परणाम, मरण सु कर पावे सुरधाम।
दान कुपात्र करें जे जीव ते वहाँके मृग पशू सदीव ॥११४
ते भी युगल सुजन्मत सोय, तिने उपद्रव कोय न होय।
इस प्रकार कुरुक्षेत्र मंझार, वज्रजंघ आदिक चर सार ॥११५
पात्र दान फलसे उपजाय, सुख सागरसे मगन रहाय।
अब मतिबर आदिक परधान, नृप वियोग दुख ठान महान ॥११६
चारौं उर वैरागित भये, जग सुख सबै अथिर लख लये।
वज्रबाहु नृप सुतको राज, देकर कोनौ आतम काज ॥११७
दृढ़ धर्मी नामा मुनि पास, छोड़ो सब परिग्रह दुख रास।
लीनी दीक्षा तब हर्षाय, जासेती शिव शर्म लहाय ॥११८
यतन थकी विहरै मुनि सार, पुर अटवी शुभ देश मझार।

बसे विषम अति बनके बीच, पढ़ें जिनागम सहत मरीच ॥११६
मोह कषाय अरी कृष करे, दस विध धर्मसु उरमें धरें ।
द्वादस विध तप तपते भये, घोर परीषह चिरलौं सहे ॥१२०
अन्त विषै सन्यास सुधार, आराधी आराधन चार ।
समता जुत तजके निज प्राण, तपजपसे फल लहो महान ॥१२१
ग्रैवक अधो नाम सुखकार, जाय मुनीश लियो अवतार ।
अहंमिदर पद पाय महान, ज्ञानादिक गुण भूषित जान ॥१२२
दोय हस्तको देह उतंग, दिव्य अंग अद्भुत सुअभंग ।
तेईस सागर आयुष धार, शुभ विक्रय धारे सुखकार ॥१२३
निज स्थान बैठे हितकार, वंदे जिन कल्याणक सार ।
अतुल सुक्ख भोगे अधिकाय, प्रिया राग जिन दूर बगाय ॥१२४
वज्रजंघ वर आरज जबै, निज स्त्री संग बैठो तबै ।
निज लक्ष्मी अवलोके सोय, कल्पवृक्षसे उपजी जोय ॥१२५
सूरजप्रभ नामा सुर सार, जाबेथो आकाश मझार ।
निरखत जाती सुमरण भयो, पूरब भव अपने लख लयो ॥१२६
तबहीं नभ मंडलके बीच, युगचारण मुनि सहत मरीच ।
ज्ञान सु गुण वारध मुनिराज, उतरत देखे धर्म जिहाज ॥१२७
तिनकौ निरखोआर्य महंत, प्रिया सहित उठ नमन करंत ।
पूरब भव संस्कार पसाय, बारंबार नमो सिर नाय ॥१२८
मुनिवर तिनकौ नमन करंत, निरख सुधर्म वृद्ध उचरंत ।
नमके मुनिसे प्रश्न सु कीन, हे स्वामी जग करुणा लीन ॥१२९
तुम यहाँ किस कारणते आय, तुम कुण होये सर्व बताय ।

हे मुनिवर तुम दर्शन मात्र, स्नेह बढ़ो अधिको मम गात्र ॥१३०
किस कारणसे स्नेह सु करौ, हे सुखद सो सब उच्चरौ ।
इस प्रकार सुन प्रश्न अनूप, जेठे मुन बोले हित रूप ॥१३१
कारण स्नेह तनौ मैं कहूं, जासेतो सब संशय दहूं ।
महाबल नृपके भव सु मझार, वृष उपदेश दियो हितकार ॥१३२
स्वयंबुद्ध मंत्री बुद्धवान, जैनी पंडित मुझको जान ।
तुम वियोग कीनौ दुखकार, बोध पाय बैराग्य सुधार ॥१३३
दीक्षा धर तप कीनो सार, तातैं उपजो स्वर्ग मझार ।
प्रथम कल्प सौधर्म सु नाम, जान विमान स्वयंप्रभ ताम ॥१३४
मैं मणिचूल नाम सुर भयौ, एक जलध तक सुख बहु लहो ।
जंबूद्वीप सु पूर्व विदेह, पुष्कलावती देश गिनेह ॥१३५॥
तामध्य पुन्डरीकनी पुरी, जा आगे सुरपुर दुहदुरी ।
प्रियसेन राजा सुखरास, सुंदर नाम तिया ग्रह तास ॥१३६
स्वर्ग थकी चय करमैं आय, इनके उपजे बहु सुखदाय ।
जेठो मैं प्रीतंकर भयो, प्रीतदेव लघु भ्राता थयौ ॥१३७
जिन स्वयंप्रभके ढिगसार, विरकत ह्वै हम दीक्षा धार ।
तपबल अवधिज्ञान उपजाय, चारणऋद्धजुत गमन कराय ।१३८
ज्ञानथकी तुम यहां लखाय, हितधर हम संबोधन आय ।
समकित ग्रहण करावन काज, जासे पावो शिवपुर राज ॥१३९
नृप महाबलके भव सु मझार, ह्वै प्रबोध तौ पण भो सार ।
समकित दर्शन नाही पाय, काल लब्धि बिन क्यों कर थाय ॥१४०
काल अनादि थकी यह जीव, मिथ्या तपकर तपत सदीव ।

काललब्धि बिन कबहू न पाय, समकित दर्शन शिवसुखदाय ।।१४१
कालब्धि जब प्रघटे आय, समकित दर्शन तबही थाय ।
तिनकौ हेत सुनौ धर ध्यान, मैं भाषूं सो निज चित आन ।।१४२
देव शास्त्र गुरु गुणयुत जान, इनकौ सांचौ जो सरधान ।
तत्व सु धर्म पदारथ मान, सोई समकित दर्श महान ।।१४३
जिन गुरुतत्व संक नहि आन, सोइ निसंकित गुण परधान ।
इस परलोक भोगको आस, छांड़े सोनिःकांक्षित भाख ।।१४४
मुनि शरीरमैं होय पसेव, देखग्लानि नहि करे सु एव ।
निर्विचिकित्सा अंग है सोय, धर्मतत्व परखे बुद्ध जोय ।।१४५
छांड मूढ़ता चेतन होय, सोइ अमूढ दृष्टगुण लोय ।
ढके सुधर्मी जनको दोष, सोई उपगूहन गुण पोख ।।१४६
धर्मचलितको वृषमैं थाप, सोई स्थितिकरण निःपाप ।
चार संघसों धारे प्रीत, वात्सल्य अंगकी यह रीत ।।१४७
जिनशासन उद्योत सु करै, सो प्रभावन अंग चित धरे ।
इम आठौं यह अंग महान, समकित धर्म तने सुख खान ।।१४८
दुष्ट कर्मकी जो संतान, ताके घातक बुद्ध निधान ।
तीन मूढता तज दुखदाय, देवशास्त्र गुरु परख सु भाय ।।१४६
जात्यादिक आठौं मद त्याग, षट अनायतन तज बड़ भाग ।
तज संकादिक आठौं दोष, पच्चीसमल तज दर्शन पोष ।।१५०
कैसी है समकित हित सार, मुक्त धामको सीढ़ी सार ।
ज्ञान चरितको मूल विचार, दर्शन उत्तम सुख करतार ।।१५१
समकित दर्शन जो धारंत, कैयक भवमैं मोक्ष वसंत ।

तीन जगतमें जो कछु सार, सुख संपत वर पद निर्धार ॥१५२
बड़ी विभूति अचरज कर्तार, जिनवर भक्त लहे सुभ सार।
तीर्थंकर होवे सुखदाय, तीन जगत सेवे तिसपाय ॥१५३॥

गीता छंद

अर्हमिंद्र चक्री शक्र संपद पाय सम्यक्तीसदा, बरजन्म जीवत बुध सकल जो धरे समकित उरमदा । दृगरत्न भूषित अंग जाको निज अलिंगन देत हैं। शिवतिय मुदाफुन क्या कथा-सुरप्रियांगणकी कहत हैं ॥१५४॥ सम्यक्त सम नहि धर्म कोई लोकमे सु महान है। मिथ्याय सम नहि पाप दूजो देय नर्कसु थान है । हे आर्य इसविध जानके सम्यक्तको ग्रहण करो, शिवकाज जिनवर गुरोंकी आज्ञा सुनिज उरमें धरो ॥१५५

चौपाई

हे आर्या अब तुमभी सारा, सम्यक्त रत्न धरो हितकार।
जासें स्त्रीलिंग न होय, अव्वल सुख पावो मल खोय ॥१५६
सम्यग्दृष्टि जो नर होय, ऐसी गति पावै नहीं सोय ।
स्त्री नपुंसक अरु कुल नीच, लघु आयुष मैं लहे न मीच ॥१५७
विकल अंग दारिद संजुक्त, सम्यक्ती नहो ह्वै जिन उक्त।
नीच स्थान अर पदवी नीच, नर्कादिक तिर्यग गति बीच ॥१५८
वृत नाहो तो भी नही लहे, उत्तम सम्यकधारी बहे ।
बहु कहनेसे कारज कौन, सुरनर गति पावे सुख भौन ॥१५९
अरु बहुत गति दुख दातार, सो नाहि पावै दर्शनधार ।
पात्रदान वृषके पर भाय, खाद्य स्वाद्य अमृत जिन पाय ॥१६०
उत्तम अंग शरीर अनूप, तीर्थङ्कर होवे शिवभूप ।
ज्ञानथकी दरशन सुमहान, श्री सर्वज्ञ सुभाषित मान ॥१६१

अथवा जिम सब रत्न मझार, चिंतामणि सम दर्शन सार।
इम बच सूरज किरण समान, ताकर मिथ्या तमकौ हान ॥१६२
अंतर थित अज्ञान नशाय, मुनि पदांबुज नमन कराय ।
स्त्री पुरुष तबै हरषाय, समकित अंगोकार कराय ॥१६३॥
संकादिक दूषण कर मुक्त, अष्टगुणन करके संजुक्त ।
व्याघ्रादिकके जीव सुजान, मुनि बच अमृतको कर पान ॥१६४
मिथ्या विषको बमयो तबै, दर्शन ग्रहण किया तिन सबै ।
तिन चारण मुनिको तिस धरो, सब जियने मिल वंद करी ॥१६५
मुनिनैं धर्म वृद्ध तब दियो, गमन अकाश मांहि मुन कियो ।
जब चारण मुन दोनौं गये, तब यह नर तिय चितवत भये॥१६६
इन म्हारो कोनो उपकार, इम स्तवन कर बारंबार ।
देखो यह योगीन्द्र रिसाल, परकारज साधत सु विशाल ॥१६७
ज्ञानऋद्ध गुणके भंडार, सार्थवाह शिव पथ निरधार ।
कहां मुनी वह वीतसुराग, हम पर कीनों धर्म सुराग ॥१६८
निधि अरु कल्पद्रुम सुखकार, चिंतामणि कर पर उपगार।
तैसे ही सज्जन जन सदा, पर उपगार करै ह्वै मुदा ॥१६९
धन्य वही योगीन्द्र महान, पर कारजमें तत्पर जान ।
पर दुख देख दुखी जे होय, निज दुख याद करै नहीं कोय ॥१७०
सर्व पापको कियो विनाश, स्वच्छ पुन्यको कियो प्रकाश ।
तिन मिलापसे यह फल भयो, सुमति प्रथाको मुख लख लयौ॥१७१
जिम जिहाज बिन समुद न तिरे,त्यों सतगुरु बिन भवदुख भरे।
जिम दीपक बिन रजनोमांह कोई पदारथ दीखत नांह ॥१७२

तैसे गुरु बिन धर्म न सूझ, मुक्त मार्गसे रहे अबूझ ।
जिम पयोज बिन सरवर जान, लवण बिना जो भोजन मान ।।१७३
बिना दान जो लक्ष्मी होय, इनकी शोभा नाहीं कोय ।
त्रिय पुरुष बिन सोभै नांहि, शील क्षमा बिन पंडित कांह ।।१७४
संजम बिन त्यागी नहीं थाय, इंद्रीजय बिन तपसी नांह ।
तत्वज्ञान बिन ध्यान निकाम, दर्शन बिन व्रतविध है ताम ।१७५
तैसे ही गुरु बिन जन सही, शोभा कबहूं पावै नहीं ।
इम परोक्ष स्तवन सु कीन, नमकर ह्वै दर्शनमैं लीन ।।१७६।।

गीता छंद

इम पुण्य फल कर सबहि आरज कल्पतरु दशविध तने,
सुख भोगते अनुपम सु तबही दुक्ख नाम नहि सुने ।
दर्शन रतन प्रापत भई सो मुक्त कारण जानिए,
इम ज्ञानवान सु जानकर नित धर्म उरमें आनिए ।।१७७।।
इस धर्मसेती गुण सु पावे अर्थ सुक्ख सबै लहै,
इस धर्म करके मोक्ष पद लह जग उदधिमैं ना बहै ।
त्रै जगतमैं हितकार वृष सो दूसरो कोई नहीं,
जिस धर्म बीन क्षमा सु जानो सोई मम उर हो सही ।।१७८
तुलसी पतादिकको निरख मैं वर विशेष सु मानिया,
उनिका स्वरूपजु देखिके तुम वीतराग पिछानियां ।
तुम देखते वे कुछ नही जिन कांच मणि अंतर कहो,
सागर सुबुद्धवर्धनको शशि तुम और देव नही लहो ।।१७९।।

इति श्री भट्टारक श्रीसकलकीर्ति बिरचित श्रीवृषभनाथ चरित्रे मंत्री प्रोहत सेनापति श्रेष्ठ व्याघ्र सूकर नकुल बानर भवांतर वज्रजघराय श्रीमती चरार्या भोग सुख सम्यक्त लाभ वर्णनो नाम: पंचमो सर्ग: ।।५।।

—:०:—

अथ षष्ठम सर्ग

दोहा—गुरु गुणगणकर पूर्ण है, सम्यग्दर्शन दाय ।
बिन कारण जग बन्धुवर, वन्दूं तिनके पाय ॥१॥

पायता छंद

अब ते षट जिय सम्यग्दृष्टी, भोगे सुखतैं उत्कृष्टी ।
त्रैपल्य आयु भुगताई, सुखकर सो प्राणत जाई ॥२॥
सम्यक्रत्न चित धरके, वृषमाही ध्यानसु करके ।
जगमैं सुखकारी जो है, ईसान स्वर्ग सु लहो है ॥३॥
तहाँ श्री प्रभनाम विमाना, वज्रजंघ जीव उपजाना ।
तिह श्रीधर नाम धरायौ, बहु ऋद्ध सहित सुख पायो ॥४॥
श्रीमति राणी जो थाई, तिन स्त्रीलिंग छिदाई ।
सो विमान स्वयं प्रभ माही, सुर नाम स्वयं प्रभ थाई ॥५॥
सिहकौं जो जीव बखानौं, चित्रांगद नाम विमानौ ।
चित्रांगद नाम सुदेवा, तिन ऋद्ध लही बहु मेवा ॥६॥
जो पूर्वबराह बतायौ, तिन नंद विमान सुपायो ।
निजरमणी कुण्डल नामा, नाना विध ऋद्धकौ धामा ॥७॥
वानर चर पूर्व बखाना, सो नंदावर्त विमाना ।
सुरनाम मनोहर थाई, लह सुंदराग सुखदाई ॥८॥
जो नकुल जीव सुखदाई, सो विमान प्रभाकर थाई ।
निर्जर सुमनोरथ नामा, हुवो सो तिस ही ठामा ॥९॥
तिन सम्यक धर्म फलाई, सो देव भयो दिव जाई ।
तेतिस वृषके सिद्ध काजे, पूजासु करत जिनराजे ॥१०॥
जिन मूर्ति त्रिलोकीमें जो, कल्याण जिनेश्वरके जो ।
तिन सबकी पूजन करते, इम पुन्य भंडार सु भरते ॥११॥

सुख नाना विध भोगाई, देवो आदिक सुखदाई ।
अंज्ञान विक्रया मांही, रम है सुखसागरमाही ॥१२॥
एके दिन उन सुर जानौ, प्रीतंकर मुनि महानौ ।
तिन केवलज्ञान उपाई, सो मम गुरु है सुखदाई ॥१३॥
ऐसो विचार सु कराये, श्री प्रभ पर्वतपे आये ।
परवार सबै संग लीना, गुरु भक्ति माह चित दीना ॥१४॥
सर्वज्ञ सुदर्शन पायो, हितसो तिन शीश नमायो ।
सब देवन पूजा ठानी, आनंदजुत तहाँ बैठानी ॥१५॥
तिन धर्म श्रवण रुचकीनी, गुरुचरणनमैं दिठ दीनी ।
फुन केवल की ध्वन सुनके, तत्वादिक गर्भित मुनके ॥१६॥
तब श्रीधरदेव पुछायो, उठकर परणाम करायो ।
जो महाबल सबके मांही, त्रय मंत्र कुदृष्टी थाई ॥॥१७॥
उनने मिथ्यात पसाई, किम किम दुर्गत दुखपाई ।
इम प्रश्न कियौ सुर जबही, दिव्य ध्वन खिरीसु तबही ॥१८

चौपाई

बुद्धवान सुन धरके कान, फल मिथ्यात अशुभ गति थान ।
मंत्री दो मिथ्यात पसाय, ते निगोद गति पाई जाय ॥१९॥
तिन भुगतो दीरघ संसार, जामैं दुखके नाही पार ।
दुमत्यादिजो दुख पाय, सो दुख भोगे कहे न जाय ॥२०॥
नास्तिक मत खोटो आचार, मनमैं धर मित्यात्व असार ।
शुद्ध धर्मकी निंद्य जो करी, खोटे मारगमैं बुद्ध धरी ॥२१॥
देव शास्त्र गुरु निंदा करो, सो निगोद पहुंचे दुखभरी ।
धरे कुशील पाप बुध धार, चिरलों दुख भुगते नही पार ॥२२
मनमति जो तीजो परधान, मिथ्या दुर्मत अघको ठान ।
रौद्रध्यानसे पाई मौच, उपजौ द्वितीय नर्कके बीच ॥२३॥

पद्धड़ी छंद

ये रौद्रध्यान करके अतीव, आरंभ परिग्रह धर सदीव ।
खोटी लेश्या मद तीव्र धार, अव्रती धर्म द्वेषोविचार ॥२४॥
मिथ्या मारगमें लीन होय, अब कीने तिन गिनती न कोय ।
नित स्वभावमें धरे कषाय, नर्क विले उपजो दुख काय ॥२५॥
इस प्रकार सुन गिरा अनूप, प्रश्न कियो श्रीधर सुख रूप ।
जिन क्या-२ दुखनर्क मझार, अरु कैसी यक स्थित निर्धार ॥२६
तब जिनवर वच भाषे ऐम, बुद्धवान सुन धरके प्रेम ।
नर्क तनौ लक्षण दुखदाय, होवे मिथ्या पाप पसाय ॥२७॥
पल आसक्त जल थल नभ चार, होय असैनी पापाकार ।
प्रथम नर्क ये जावे सही, यामैं संशय रंचक नहीं ॥२८॥
श्री सर्प जो महा अघकार, द्वितीय नर्क जावे निर्धार ।
पक्षी तीजी धरा मझार, चौथी लहे सर्प अघकार ॥२९॥
सिंह पंचमें नर्कहिं जाय, षट सप्तम नरमत्स लहाय ।
रत्न शर्कराप्रभा सु जान, त्रितिय बालुका प्रभा बखान ॥३०
पंक प्रभा चौथी दुखकाय, धूम्र प्रभा पंचम लख भाय ।
षष्टम ततनामा दुख खान, अंतम महातमा दुख दान ॥३१
ये सातौंकी प्रभा बखान, अब इन नाम सुनौ धर कान ।
सातौं नीचे नीचे कही, धम्मा नामा प्रथमकी मही ॥३२॥
दोहा—वंसा मेघा अंजना, और अरिष्टा जान ।
मधवी षष्टम जानिए, अन्त माघवी थान ॥३३॥

चौपाई

तिनमें जो उत्पादिक स्थान, मधु छत्तावत दुक्ख निधान ।

नीचे मुख ऊपरको पाय, पापी ऊंच दशा न लहाय ॥३४॥

पद्धड़ी छंद

पर्याय अन्त लो दुक्ख पाय, दुस्सह दुर्गंध सहो न जाय ।
पूरण शरीर दो घड़ी बीच, तिनको है आकृत अतिही नीच ॥३५
तहाँ भूमपरस दुख इसो जान, बिच्छू सहस्र जो डसे आन ।
तासे भी अधिको पीड़ होय, यामैं संशय नाही सु कोय ॥३६॥
जहाँ भूमी कंटक सहित थाय, उद्धरत सुररित दुख बहु सहाय ।
तिस पृथ्वीकी गरमी पसाय, नारकी गिरे उछले अथाह ॥३७
जिम ततवा तिल उछल जाय, तैसी वेदनको ये लहाय ।
तिस काल नयौ नारक, जु पेख, सब धाय धाय मारत विशेष ।३८
जब छिन्न भिन्न सब अङ्ग थाय, तबही पारेवत फिर मिलाय ।
पूरब भव कौंक-२ बैर याद, आपसमें करये बहु वेवाद ॥३९॥
आपसमैं देवें दंड घोर, तिनको कहते आवे न ओर ।
तहां असुरकुमार सु देव आय, त्रय पृथ्वो तक दुख दे अपाय ।४०
पुर जन्म बैरकौ दे बताय, तब ते नारक अति युद्ध कराय ।
जहां नारक बिक्रय रूप धार, गृद्धादिक बन करते प्रहार ॥४१

पायता छंद

केई कोलूमैं पिलवाहो, केई तले कडाहे माही ।
जिन पूरव मांस जु खायो, तिन लोह तप्त कर प्याओ ॥४२॥
तिम पोने सेती जानो, मुखकण्ठ हृदय सु जलानो ।
जे पर त्रिय प्रीत कराई, ते लोहांगन लिपटाई ॥४३॥

तिस आलिंगन कर तब ही, होवे मूर्छागत जब ही ।
मर्मांग विषैं दुखकारा, दे बज्रदंडको मारा ॥४४॥

लावनी मरहटी

शाल्मली द्रुम जहां दुखकारी, वज्र कंटक मय सुखहारी ।
तिसके ऊपर जु चढ़ावे, फिर नीचेकौं घिसटावें ॥४५॥
नदी वैतरणीके माही, बहुत दुर्गंध तहां पाही ।
राध अरु रुधिर तनी कीच, न्हलावें हैं ताके बीच ॥४६॥

मरहटी

चारों तरफ फुलंगे निकसे, ऐसी सेजपैं सुलवावें ।
छुवत मात्र सब अंग भस्म हो, ऐसे बहुविध दुख पावें ।
तहां असपत्र जु वन हैं भारी, दाह मेटने तहाँ जावें ।
तिनके दल तरवार सारखे, लगत छिन्न भिन्न वपु थावे ॥४७
सुख कारन पर्वत पर जावे, वहांसे नारक पटकावे ।
केई आरे सौं तन चीरे, मर्म अस्थि सब भिद जावे ॥
केई तप्त सुई कर लेकर, मस्तक माही चुभवावें ।
केई नारको घाव सुमाहीं, लेकर नून सु बुरकावे ॥४८॥
जिन पहले अन्याय जु कीनौ, तिन तप्तासन बिठलावें ।
केई अन्तर भाल सु तोड़े, केई अग्निमें जलवावे ॥
केई नारक आंख उपाड़े, जिन नेत्रननसे अघ कीने ।
केईक तांबा गाल पिलावे ॥४९॥

गीता छंद

जहां तृषा इतनी होत है, जो सर्व सागर जल पिये ।
तौभी न उपसम थाय है, बहु काल यौं दुख भुगतये ॥
जो तीन लोक सुनाज सबहो, खाय तौ नहि है धापहै ।
यहां एक कणभी नांहि मिल है, किये पूरे पाप है ॥५०॥

इत्यादि नानाविध सु दुक्ख कर युक्त नर्ककुसूम है।
हिंसक दुराचारी कुव्यसनी जाय व्हांके दुख सहे ॥
जे पांच इन्द्री विषय लोलुप, ग्रहारंभ मगन सदा।
मिथ्यात्व ग्रादि कषाय संजुत, कटकु फल पावै तदा ॥५१॥
भार्या कुटुंब जु सर्व मिलकर भोगमैं भोगे सही।
ते सर्व साथी बीछड़े मैं ग्रानकर यहाँ दुख लही ॥
ते सब कुटुंबी ग्रन्य है यह बात ग्रब निश्चै भई।
तिम कारणमैं दुक्ख भोगे हाय मो मति कहाँ गई ॥५२॥
यहाँ पर ये क्षेत्र कु दुखमई ग्रब हाय मैं यहाँ क्या करूं।
कोई न पूछे बात मेरी पाप फल मैं दुख भरूं ॥
सब दिश विषे यह नारकीके वृन्द मारनकौं खड़े।
ते रौद्र परणामी सबै मिल तेज शस्त्र लिए ग्रड़े ॥५३॥
दोहा–स्वामी स्वजन न दिठ पड़े, रक्षक कोई नाह।
निज दुख ग्रब किससे कहूं, सुनने वाला काह ॥५४॥

चौपाई

ये ग्रनंत दुख सागर भरौ, मोपं कैसे जावे तिरौ।
ग्रांगोपांग खंड ह्वै जाय, तौ भी ग्रकाल मृत्यु नहीं थाय ॥५५
इत्यादिक चिंतवन कराह, विषम व्याध वेदन तन थाय।
होय ग्रसाध्य पीड़ तन मांह, कोई कहे वे समरथ नाहि ॥५६
बहुत कहबेसे कारन कौन, सर्वोत्कृष्ट दुक्खकौं भौन।
जगमैं रोग क्लेश दुख जेह, नरक भूममें सब ही तेह ॥५७॥
दोहा–चख टिमकारे मात्र भी, सुख दोसत जहाँ नांह।
दुखसागरमें नित रहे, पापी सुख किम पाय ॥५८॥

चौपाई

धम्मा ग्रादिक पृथ्वी चार, तहाँ उष्णता ग्रति दुखकार।
तीन नर्कमैं शीत महान, ताकी उपमा नाही कहान ॥५९॥

योजन लाख लोहको पिंड, तिसके गलि होवे बहु खंड।
ऐसी शीत उष्णता जहाँ, तिस बरननकौं कविबुध कहां ॥६०
तीस लाख बिल प्रथमही जान, द्वितीय लाख पच्चीस प्रमाण।
तीजी भूमें पंद्रै लाख, चौथीमें दस लाख जु भाष ॥६१॥
तीन लक्ष पंचममें कहै, पण कम इक लख छट्टी थये।
पांच बिले सप्तममें जान, सब चौरासी लक्ष प्रमाण ॥६२॥
सबही कारागार समान, सबही दुखदायक पहचान।
केई संख्याते जोजन जान, केई असख्यात परमाण ॥६३॥

दोहा—एक तीन अरु सातको, दस अरु सत्रह जान।
बाइस तेतिस उदधिकी, नर्क आयु जु बखान ॥६४॥
सप्त धनुष त्रय हस्तको, षट अंगुल अधिकान।
प्रथम नरकमैं जानिए, काय नारकी मान ॥६५॥

अडिल्ल

दूजी तीजी माहि दुगुण होती गई, सप्तममें धनु पांच शतक काया भई। सपरस अरु गंध वर्ण महा, दुखकार है, हुंडक वपुसंस्थान देख भयकार हैं ॥६६॥ आरत रौद्र कुध्यान कुलेश्या है जहां, निज अंगनको शस्त्र बनावत है तहां। ढालक्रमूनहि बने खड्ग वन जाय है, अशुभ विक्रिया होय पाप परभाय है ॥६७॥ होत विभंगा अवधि तहां दुखदाय है, पूरब भवके बैर याद जु कराय है। जेतो जगत मझार वस्तु दुखदाय है, पाप उर्द तिन सबकौ तहां समुदाय है ॥६८॥ पापकर्ममें चतुर मिथ्याती जे सहो, दुक्ख अग्नकर तप्त नर्क भू तिन लही। इस विध दूजे नर्क माह दुखको सहै, शतमति नाम प्रधान पाप फलको लहै ॥६९॥ तुम तहां जाय संबोधो

उस जियको सही, दर्शन ग्रहन कराय धर्म उपदेश हो। धर्म सिवाय न कोय नर्कसे उद्धरे। जीवोंको स्वर्ग मोक्ष तनी प्रापत करे ॥७०॥ धर्महीसे हो ऊंची गति सुखदायजी, पाप थकी नीचीगति सहजे पायजो। तिस कारणतैं जो जिय दुखसे डरत हैं, सुक्ख तनी बांछा मनमाही धरत हैं ॥७१॥ तिनकौं यही उपाय पाप तजके सदा, सम्यक्दर्शन आदि धर्म धारो मुदा। ऐसे जो सर्वज्ञ चंद्रतैं वच करैं, धर्मामृत सम जानदेव निज उर धरे ॥७२॥ धर्म विषैं रुच धार तबैं श्रीधर सही, जिनकौं नमन सु ठान नरक जा निरख हो। तहां सत मित अमात्यकौ जिय जो थो सही, तासेती यूं कहो महाबल में थई ॥७३॥ पुण्य पापकों फल अब क्यौं नहिं पे खरे, तैं मिथ्यात्व प्रशाद यहै दुख देखरे। इस दुख-सागर मांह कोई न सहायरे, दुक्ख हरन सुख करन सुबृष बतलायरे ॥७४॥ धर्म मूल सम्यग्दर्शन मन आनिये, मन बचननकर शुद्ध मिथ्या तज ठानिये। काललब्धिवस इम बोधन सुन हर्षियो, कर साचो सरधान मिथ्या विष वम दियो ॥७५॥ दर्शन लाभ थकी मन बहु आनंदियो, श्रीधर सुरकौं नमकर थुत करतो भयो। प्रभु तुम स्वामी पहले भवमैं थे सही, वृष उपदेशन थकी यहां भी गुर लही ॥७६॥ इम अस्तुति कर नमस्कार करतो भयो, सम्यक ग्रहण कर राय देव निज थल गयो। अब वो नारक चयकर जहां उपजाय है, सौही वर्नन सुनौं सु मन हुलसाय है ॥७७॥

त्रोटक छंद

शुभ पुष्कर दीप विषै सुनिए, वर पूरब मेरु तहाँ गुनिए ।
तह पूर्व विदेह विराजत है, मंगलावती देश सुछाजत है ।।७८।।
मणि संचेपुर तहं शोभ धरे, नृप नाम महीधर राज करे ।
तिम सुन्दर नाम सुनारी सही, तिम गर्भ विषैं थित आन लही ।७६
सतमत मंत्री जो पूर्व कहो, तिन छांड़ नर्क यह थान लहो ।
तिस नाम धरो जयसेन सही, दर्शन फलकर यह थान लहो ।।८०
सब ज्ञान विज्ञान कला जु गही, शुभरूप गुणादिककी जु मही ।
जब ज्वान भयो शुभ शक्तियुता, तब व्याह करनमैं लीन हुता ।।८१
जब श्रीधर नाम सुदेव सही, तब श्राय उसे इम बोध तही ।
तुम भूल गये दुख नर्क समं, जो कर्न लगे हि विवाह अबे ।।८२
उपदेश सुनौ नृपने जबही, दुखसे भयभीत भयो तबही ।
नरकादिक कारण व्याह यही, तिय वैतरणीय सम जान सही ।८३
यह जान विवाह विरक्त भयो, मुन यमधर नाम सु पाय गयो ।
सुशास्त्र सुनो हितकार सही, शिवकारण संजम बेग गही ।।८४

पद्धड़ी छंद

तप घोर कियो शोखो कषाय, जिन शुद्ध किया मन वचन काय । सन्यास सहित मृतकौ लहाय, बर ब्रह्म स्वर्ग पंचम सु पाय ।।८५।। वृष फल तहाँ इन्द्र भये महान, सब देवन कर पूजित सु जान । वर धर्म कर्ममें रत सु थाय, शुभ अवधि ज्ञानसे सब लखाय ।।८६।। श्रीधरको निजगुरु जान सोय, तिसको अस्तुति कीनो बहोय । अब जंबूदीप विषै सु जान, पूरव विदेह शुभ सिद्ध दान ।।८७।। तहां नाम महा-वत्सा सु देश, नगरी जु सुशीमा जान वेष । तहां नाम सुदृष्ट

जु राय थाय, तरुणी नंदा नामा लखाय ॥८८॥ सो श्रीधर निर्जर यहाँ आय, इन पुत्र सुविध नामा सु थाय। वरकांत कला धारे अनूप, लावण्य सोमयुत दिव्यरूप ॥८६॥

चौपाई

निज स्वरूपसे जीतो काम, नानाविध शुभ लक्षण धाम।
सर्व बंधुजन प्रीत कराय, बालचन्द्रवत वर्द्धत काय ॥६०॥

पद्धड़ी छन्द

जब अष्टम वर्ष भयो कुमार, पाठक सु जनके पास सार।
विद्या सागरको पार पाय, ये जीव तनो लक्षण बताय ॥६१॥

चौपाई

पूरब भव संस्कार, पसाया, धर्म विषै रति धरै अघाया।
दान सुवृत पूजा शुभ करैं, जासे भवभव पातिक हरैं ॥६२॥
क्रमसो योवन लह सुखदाय, गुणगण कर शोभित अधिकाय।
पितुकी राजलक्ष्मी सार, सब ही कोनी अंगोकार ॥६३॥
अभयघोष मातुल चक्रेश, मनोरमा ता सुता विशेष।
गीत नृत्य वादित्र बजाय, पाणीग्रहण ता संग कराय ॥६४॥
बुद्धवान तिस संग नित मुदा, भोगे भोग निरंतर सदा।
धर्म विषै अति दृढ़ चित धरे, श्रावक व्रत शुभ पालन करे ॥६५

अडिल्ल

श्रीमतिचर जो देव स्वयंप्रभ थायजी, दिवसे चय सुत इनके उपजो आयजो। केशव नाम महान पराक्रमधर कह्यो, पिता समान सुगुणगणकौ धारक भयो ॥६६॥

गीता छन्द

श्रीमतीनामा प्रिया जो वर वज्रजंघ तनो कही, सो आन

केशव सुत भयो, संसार रूप लखो यही। पूरब सुभव संस्कार बस नृप स्नेह बहु बढ़तो भयो, शार्दूल चर आदिक सु प्राणी देश इसही जन्मयो ॥९७॥ वो भोगभूम गये हुते वहाँसे सुरालय थायजी, तहाँसे सु चय नृप सुत हुवे तिन कथन सुन सुखदायजी। प्रियदता मातासु भिभीषण पितु कहो। बरदत्त नाम सुजान व्याघ्र चरने लहौ ॥९८॥ नंदषेण राजा सु अनंतमती तिया, सूकर चर जो मणि कुंडल देवहि भया। सो चय इनके पुत्र भयो सुखदायजी, संवरसेन सु नाम पुन्यमय थायजी ॥९९॥ है महीपर रतिषेण चंद्रमति तिय सहो मर्कट चर चित्रांगद सुत हुवो वही। नाम प्रभंजन राय चित्र मालन तिया, तिनके नकुल सु आय प्रशांत मदन भया ॥१००॥ सब सुंदर आकार समान सु पुनधनो सम है राज विभूत धर्म दृढ़ता घनो। सुविधरायसे प्रीत सभी करते भये, पूरबभवके स्नेहतने बस सब थये ॥१०१॥ अतिशय करके धर्मविषैं चित लायजी, चिरलौं नानाविधके सुख भोगायजी। ऐके दिन चक्रीके संग सब रायजी, नाम विमल-वाहन जिन वंदन थायजी ॥१०२॥

पद्धड़ी छंद

तिनकी पूजन चक्री सु कीन, तपको परभाव लखो नवीन।
मनमें इसविध चिंतवन ठान' तपसे पावै संपत महान ॥१०३॥
तौ अब विलंब हम किम कराय, जो चक्रवर्त लक्ष्मी तजाय।
इसके बदले हो मोक्षरात्र, तौं हमको तजते कहा लाज ॥१०४
इत्यादिक शुभ मन कर विचार, तज काम भोग वैराग्य धार।

रत्नादिक निध तृणवत सु त्याग, निज आतम मांही चित्त पाग ।।१०५।। मन बच काया जिन नगन ठान, जिनदीक्षा ली शिवसुक्खदान । अरु चक्रवर्तके साथ सार, सुतपंच सहस जिन तप सुधार ।।१०६।।

चौपाई

दस सहस तियधर संवेग, राज अठारह सहस सुवेग ।
इन सबली जिन दीक्षा सार, स्वर्ग मोक्षके सुख करतार ।।१०७
अब ये अभयघोष मुनराय, ध्यान अग्नितें कर्म जलाय ।
नव सुलब्ध लह सुखकी रास, केवलज्ञान कियो परकाश ।।१०८
बहु सुर आय सु पूजन कियो, अपने सुर पदको फल लियौ ।
योग निरोध किये मुनराय, मोक्षथानमैं निवसे जाय ।।१०९।।
वरदत्तादिक भूपत सार, जो सिंहादिक जीव निहार ।
तिन चारन मिल दीक्षा लई, घरकी ममता सब तज दई ।।११०
ग्राम देश वन करत विहार, निःप्रमाद इंद्रीजित सार ।
उत्तम क्षमा आदि दस धर्म, शुभ ध्यानन कर हरते कर्म ।।१११
घोर तपस्या तपते भये, मोक्षमार्ग परिवर्तन ठये ।
सुविधराय जो पुण्यनिधान, सो वैराग्य भये सु महान ।।११२।।

पद्धड़ी छंद

संसार देह भवसे विरक्त, तौहूं सुत नेह धरे सु चित्त ।
तातैं घरकौ न तज कराय, तब राजभार केशव थपाय ।।११३
उत्कृष्ट सु श्रावक पद सुधार, एकादसमो प्रतिमा संभार ।
केशव निज योग्य सुव्रत गहाय, केवलको नमि निजगृह सु आय ।।११४।। ग्यारह प्रतिमा श्रावक सु थान, तिनको

संक्षेप करूं बखान। जो सप्त व्यसनको करे त्याग, वर अष्ट मूलगुणमें सु पाग ॥११५॥ दर्शनविशुद्धको धार सोय, सो दर्शनप्रतिमा धार होय। पच्चीस दोषकर रहित थाय, वर अष्ट अंगकर सहित भाय ॥११६॥ जो पंच अणुव्रत धरे धीर, त्रंगुण व्रतकौ पाले गंभीर। शिक्षाव्रत चार धरे महान, इम बारा धारे सुजान ॥११७॥

गीता छन्द

मन वचन काय त्रिसुद्ध कर त्रस जीव की रक्षा करे।
सब व्रतकौ है मूल ये ही प्रथम अनुव्रत चित धरे।
जो स्थूल झूंठको त्यागकर सतवचन हितमित उच्चरे।
सोई सुबुद्ध ज्ञान सु श्रावक द्वितीय अणुव्रत आदरे ॥११८॥
भूलो जु बिसरो वस्तुको जो ग्रहण चित नाहो करे।
अहिवत गिने पर वस्तुकौं सो त्रितीय व्रत चितमैं धरे।
पर त्रिय बड़ीको मात सम वय सदृशको भगनो चया।
लघुको सुता सम जो गिने बुद्ध सोई चौथा व्रत कहा ॥११९
क्षेत्रादि दसविध संगकौ परमाण चित मांहो करौ।
यह लोभ पाप पिता समझ तृष्णा कुनागन पर हरौ।
इम पंच पापन प्याग कारण पंच व्रत उर धारये।
दिग्देशकी मर्याद कर कु अनर्थदंड निवारये ॥१२०॥
सब जीव मात्र बिषै सु समता भाव संजम उर धरे।
शुभ देव शास्त्र गुरुनकी त्रैकाल नित वंदन करे।
सोई सामायिक जान ये शिक्षा सुव्रत पहलो यही।
उपवास चारौं सदा कीजे एक महीनोंमें सही ॥१२१॥

मुनिवत सकल आरंभ तजके जाय जिनमन्दिर रहे।
ये जान शिक्षा व्रत सु दूजो नाम इस प्रोषध कहे।
जहाँ चव प्रकार आहार त्यागे पंच इन्द्री विषय तजें।
अरु त्याग शिक्षाव्रत सु दूजो ॥ नाम इस प्रोषध कहै ॥१२२॥

उक्तं च श्लोक–कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते, उपवासो सः विज्ञेया, शेषा लंघनकं विदुः ॥१२३॥ भोग और उपभोगकी मर्याद जो धारे सदा। अरि पांच इंद्री वस करे नहीं कंदमूल गहे कदा, सब हरित काय तनी सु संख्या करे आयु पर्यंत ही। सत्रह सु नेमहि नित्य धारे, तास सुन विरतंत ही ॥१२४॥

उक्तं च १७ नेमके श्लोक–भोजने १, षटरसे २, पाने ३, कुंकुमादि ४, विलेपने पुष्प ५, तांबूल ६, गीतेषु ७, नृत्यादौ ८, ब्रह्मचर्यके ९, स्नान १०, भूषण ११, वस्त्रादौ १२, वाहने १३, सयना १४, सने १५। सचित १६, वास्तु १७ संख्यादौ, प्रमाणं भज प्रत्यहं ॥१२४॥ नित पात्रकी जो बाट देखे आय गृहके द्वारजो, जा दिन सुपात्रहि नाह आवे दुख अति चित धारजो, अथवा सु बेला टालके नित आय भोजनकौ करे, चित माह दान सु भाव राखे अन्त शिक्षाव्रत धरे ॥१२५॥ बारह सुव्रत इम पालक अन्त सल्लेखन ग्रहे, यह दूसरी प्रतमातनी विध सुबुधजन चितधार है विषयुक्त बर सु करे समायक तीनकाल विषैं सही, सो तीमरी प्रतमा सु जानो पुन्य उपजनकी सही ॥१२६॥

अथ सामायिक काल लिख्यते ॥ उक्तं च ॥ नीतिसार ग्रथे इन्द्रनंदि आचार्य कृत ॥ श्लोक ॥ घडी चतुष्टये रात्रै कुर्यात् पूर्वाह्न-वंदना मध्याह्नस्यापि नियते मो नाडीद्वंमुदाहृता (११६) अपराह्नेतु

नाडीनां चतुष्टाटय्यासमाहितं नक्षत्रदर्शनान्मुंचे सामायक परिग्रहं (११७) जो नियमसे षट दस पहर पर्वीनमें प्रोषध करे, अतिचार पांचो सदा त्यागे तुर्य प्रतमा सो धरे। जो बीज पत्रादिक सचित ही त्याग प्रासुक जल गहे, सो सचित त्याग सु नाम प्रतमा पंचमो जानो यहैं ॥१२७॥

पद्धड़ी छंद

जो रात्र विषै भोजन तजंत, ब्रह्मचर्य दिवस मांही धरंत।
जो खाद्य स्वाद्य अरु लेय पेय, निस विषै सर्व भोजन तजेय ॥१२८
सो षष्टम प्रतिमा धार जान, षट मास बरसमैं व्रत महान।
जो ब्रह्मचर्य निसदिन धराय, सो सप्तम प्रतमा धार भाय ॥१२९
गृहके मध्य अघकारज कुथाय, वाणिज्यादिक बहु विध सु भाय। तिन सर्व तजे अघते डराय, आरंभ त्याग अष्टम कहाय ॥१३०॥

चौपाई

वस्त्र बिना सब परिग्रह त्याग, गृह आदिकसे तज अनुराग।
ह्वै निर्लोभ चित्त वृषमैं पाग, नवमी प्रतमासो बड़भाग ॥१३१
कार्य विवाहादिक नहि करै, पापारंभ सबै परहरे।
काहू अघ उपदेश न देय, दसमी प्रतमा सो गिन लेय ॥१३२॥
घर तज मठ मंडपमैं रहै, खंड वस्त्र कोपीन जु गहे।
निज निमित्त जो कियो अहार, ताकौं नाह गहे बुध धार ॥१३५
भिक्षा करके भोजन लेय, ये छुल्लककी रीत गनेय।
ऐलक एक कोपीन जु धरे, पीछी कमंडल लोच सु करे ॥१३६॥
विधसूं बैठे लेय अहार, सो ग्यारहमी प्रतमा धार।
जो यह ग्यारह प्रतमा धरे, स्वर्ग मोक्षको सोई वरे ॥१३७॥

अथ ग्यारह प्रतमाके नाम—उक्तं च गाथा—दंसण १, वय २, सामाय ३, पोसह ४, सचित्त ५, राय भुत्तीयो ६, बभारंभ ७, परिग्गह ८, अनुमति ९, त्यागिउ १०, उद्दीट्ठी ११ ॥१३८॥

उत्तम श्रावकके व्रत जान, सुविध राय पाले सुखदान ।
द्वादश तप तपते भये, शिवकारण निज बल प्रगटये ॥१३९॥
अंतकाल में अनसन धार, सर्व परिग्रह तज दुखकार ।
परम दिगंबर पद को धार, चारों आराधन संभार ॥१४०॥
तन समाध युत तजते भये, धर्मफकी उत्तम गत गये ।
अच्युत स्वर्ग माह हरि थाय, वृषफल सुरगण पूजे पाय ॥१४१
केशव तब ही विरकत भयो, सब परिग्रहकों पानी दयो ।
दीक्षा अंगीकार सु करी, घोर तपस्या कर अघ हरी ॥१४२
अन्त विषं सन्यास गहाय, तन तज षोडश स्वर्ग हि जाय ।
तहां प्रत्येंद्र पद पाय महान, बाईस सागर आयु प्रमाण॥१४३
वरदत्तादि चार मुन चंद, नाना विध तप कर गुण वृंद ।
ते भी षोडश स्वर्ग जु गये, सामानिक सुर होते भये ॥१४४
तहां उपपाद सिला सुभ जान, मणि पल्यंक सु संपुट थान ।
तहां जाय सब जन्म लहाय, एक महूरत यौवन पाय ॥१४५॥
वस्त्राभूषण संयुत सबै, मालादिक कर सोभित फबै ।
संपूरण यौवन जुत सार, हर्षित इंद्र उठो तत्कार ॥१४६॥
जिम निद्रा तज जागत कोय, इम दश दिस अवलोकत कोय ।
लक्ष्मीदेवी गुणको देख, अचरज युत चितवे विशेष ॥१४७॥

चाल अहो जगतगुरको

अहो कौन हम थाय कौन यह सुन्दर देशा, किस पुनते यहाँ

आय जनम लहो सुसुरेशा । किम यह सुंदर नार कहां सुभ महल सु थाई, सप्त प्रकारी सेन सुभग सिंहासन ठाई।। १४८
यह सुभ सभा सुथान देव चाकर वत ठाडे, संपत विविध द्रव्यादि निरूप विमान मझारे । यह मुझ देख आनंद भये सबई सही बारी, सेना के सब लोग देख मुझ हर्ष सु धारी ।।१४६।।

चौपाई

जौं लग यह चितवन कराय, निश्चय मनमैं नाही थाय ।
अवधिज्ञान चख लेसु तुरंत, मंत्री कहो सकल विरतंत ।।१५०
यह सेन्या जो गजकी सार, गणना याकी बीस हजार ।
और जो षटकक्षा है सोय, द्विगुण द्विगुण गज तामैं जोय ।।१५१
हम सब तुमको करत प्रणाम, तुम आदेश चहत सुखधाम ।
देव प्रशाद करौ सुखकार, मेरे बचन सुनौ हित धार ।।१५२
धन्य भये हम नाथ जु आज, तुम उपजनतैं हे महाराज ।
तुमरे जन्म थकी प्रभुसार, हम पवित्रता लई उदार ।।१५३
अच्युत नाम कल्प यह सार, ऊरध चूड़ामणि उन हार ।
जगत ऋद्ध भोजन को धाम, मन संकल्पित है यह काम ।।१५४
बचनातीत सु सुख अभिराम, यौवन सदा रहे इस ठाम ।
नाना संपत ऋद्ध निदान, सब कारण अनुकूल बखान ।।१५५
पुण्य उपाय इंद्र तुम भये, अच्युत स्वर्ग सु स्वामी थये ।
यहांकी शोभाकौ विरतंत, सर्व सुनो मैं कहूं तुरंत ।।१५६।।
योजन असंख्यात संख्यात, रत्न विमान स्वेतको पांत ।
एक सतक उनसाठ प्रमाण, अच्युतेंद्रके सर्वविमान ।।१५७।।

तामध्य एक सतक तेईस, परकीरणक जानो हे ईश ।
इंद्रक श्रेणी बद्ध सु कहै, संख्या तिन छत्तिस सरदहै ॥१५८
त्रायस्त्रिंशत देवमहान, पुत्र मित्र समतें तिस जान ।
ये सामानिक जात सु देव, संख्या दस सहश्र गिन लेव ।१५६
आज्ञा बिन तुम सम सुख भोग, सब तुमरो चाहै संजोग ।
तुमरे वपुकी रक्षा करे, सो चालीस सहस यह खरे ॥१६०॥
आत्मरक्ष इनको है नाम, रक्षा करें सु आठौं जाम ।
तुमरी सभा तीन जो जान, देव पारषद तहां तिष्टान ॥१६१
एक सतक पच्चीस प्रमाण, पहलो सभा माह सुर जान ।
द्वितीय सभा द्वैसत पंचास, पंचसतक तीजोमें भास ॥१६२
लोकपाल चव सुख की रास, कोटपाल सदृश सोभास ।
बत्तिस बत्तिस तिनके नार, रूपसो तिनको अपरंपार ॥१६३
अर अच्युतेंद्रके आठ महान, पटराणी वर रूप निधान ।
द्वैसै पंचास राणी गिनौ, तिनपर एक पटराणी भनौ ॥१६४
अन्य वल्लभा त्रैसठ सार, दो सहस्र इकहतर धार ।
इन समस्त देवनके संग, भोग भोग सदा निर्भंग ॥१६५॥
एक लक्ष चौबीस हजार, रूप करे इक इक सुरनार ।
पटराणी बहुभाषो सोय, त्रैत्रै सभा तिन्हौंको जोय ॥१६६
परषद जात तहां अपछरा, निवसे रूप सो सोभा भरा ।
पच्चिस पहलो सभा मझार, दूजी में पचास निर्धार ॥१६७
एक सतक तीजोमैं सार, पौने दोसै सब निरधार ।
इक इक इंद्राणीकी लार, इतनी देवी सभा मझार ॥१६८॥
ये तुमरी सेना जो सात, ताका कथन सुनो इस भांत ।

हस्ती घोटक रथ सुभ जान, त्यादे वृषभ पंचमो मान ॥१६९
गंधर्व नित्यकारणी कही, सेन्या सप्त पुन्यतें लही ।
एक इकमैं सप्त सुकक्ष, तिनकी संख्या लखो प्रत्यक्ष ॥१७०॥
इक कक्षामें बीस हजार, सो तो द्विगुण द्विगुण चित धार ।
इत्यादि वर्णन युत सार, देव महर्द्धक तुम परवार ॥१७१॥
जगत सुसुख भोगौ सुखदाय, नाथ सु अद्भुत पुन्य पसाय ।
इसप्रकार वच सुनें महान, ततक्षण उपज्यौ अवधि सुज्ञान ।१७२
अच्युतेंद्र पूरब भव सबै, धर्मादिक फल चितौ तबै ।
अहो पूर्व भव मोह कु अरी, काम इन्द्रिया तस्कर बुरी ॥१७३
रिपु कषाय क्रोधादिक सोय, असि वैराग्यसे हनि यो जोय ।
क्रिया संजुक्त सुव्रत धर सार, चिरलौं पालें नियम सुधार ॥१७४
द्वादश विध तप कीने घोर, बारह व्रत संजम धरजोर ।
द्रव्यादिक तज शुभ वृष धरौ, तातें इंद्र आय अवतरौ ॥१७५
ऐसो प्रवर सु पदवी माह, धर्महिने थापो सुखदाय ।
क्रिया सुव्रत शीलादिक सोय, जातै पुन्य उपार्जन होय ॥१७६
व्रतको उदै न यहां पर कहो, अव्रतीनाम देवगण लहो ।
यहाँ उपजै को समकित सार, यही ग्रहण करनौ सुखकार ।१७७
श्री जिनकी पूजा जे करै, तेई पुन्य भंडार सु भरे ।
इम विचार जिन मंदिर गयो, श्री जिनपूजा कर हर्षयो ॥१७८
जल आदिक वसु द्रव्य चढ़ाय, बहु विध पूजन कर हुलसाय ।
स्तुति बहु परकार सु ठान, फुनि सुरेश आयो निज स्थान ॥१७९
पुन्यजनित निजल लक्ष्मी सार, कर सुरेश सब अंगीकार ।

तीर्थंकरके पंचकल्याणक, मध्यलोकमें होय महान ॥१८०॥
अरु सामान केवली तने, ज्ञान मोक्ष कल्याणक बने ।
तब यहाँ आय सु पूजा करे, सामानिक प्रत्येंद्र जुत खरे ॥१८१
तीनलोक जिन मंदर सार, सबकी पूजा करे चित धार ।
अष्टाह्नकके पर्व मझार, नन्दीश्वर जावें सुखसार ॥१८२॥
मेरु कुलाचल आदिक जेह, तिन सबकी पूजा सु करेह ।
सभा माह जो निर्जर थाय, तिनकौं समकित ग्रहण कराय ।१८३
जिन भाषित तत्वार्थ महान, तिनकौ नित प्रत करे बखान ।
इत्यादिक जो शुभ आचार, पूजा उत्सव आदिक सार ॥१८४
श्री अरहंतकौ वृष चित धरे, आगम श्रवणादिक नित करे।
भोग भोगवे धर्म पसाय, देवोगणसेती अधिकाय ॥१८५॥
बाइस सागर आयु सु जास, बाइस पक्ष गये उस्वास ।
वर्ष सुद्वाविंशत हज्जार, बीते लेवे मनशाहार ॥१८६॥
अवध पंचमे नर्क पर्यत, तावत मान विक्रयासंत ।
विश्व देव ता नमें अशेष, रहे मगन सुखमें सु सुरश ॥१८७॥
तीन हस्तकी सुंदर काय, क्रांत कला धारे अधिकाय ।
इच्छापूर्वक तृप्त लखाय, कबहुक गान सुने हरषाय ॥१८८
करे ते नित क्रीड़ा सुरनाथ, सामानिक प्रत्येंद्रके साथ ।
महा सु सुखमें मगन रहाय, सर्व दुक्ख जिन दूर भगाय ॥१८९

गीता छंद

इस भांत पाय सुरेन्द्र लक्ष्मी अतुल धर्म थकी भणी,
भोगे सुरगके सुख महा जगइन्द्रकौ चूडामणी ।
यह जान बुद्धजन सुक्ख अर्थी धर्ममें उद्यम करौ,

कर विध संयुत आचरण उत्तम अशुभ जाते परहरो ॥१६०
ये धर्म स्वर्ग नरेन्द्र लक्ष्मी सुक्ख सब सु देत है,
वृषही से तीर्थसु नाथ पदवी होय शिवसुख खेत हैं।
बिनु धर्म कोई हितु नांही धर्म मूल क्षमा कहो,
तातें सुविध सेवो धरम बर हान घाती सुख लहो ॥१६१॥
इति श्री भट्टारक श्रीसकलकीर्ति बिरचिते श्रीवृषभनाथ चरित्रे श्रीधर-
देव सुविध राजाच्युतेंद्रभव वर्णनो नाम षष्ठमः सर्गः ॥५॥

—:०:—

अथ सप्तम सर्ग

चौपाई

परमेष्ठी पदमैं आरूढ़, कर्म चक्र हंता अति गूढ़।
धर्म चक्रवर्ती जगसेत, वंदूं तिन गुण प्रापत हेत ॥१॥
अब षट मास आयु लख शेष, मृत्यु चिह्न देखे जु सुरेश।
तेज अंगको गयो पलाय, उर माला दी गई मुरझाय ॥२॥
क्षणभंगुर सब जगकौं जान, सब जग स्वारथ साथी मान।
करत भयो जिन पूजा सार, जिनवर ध्यान चित्तमैं धार ॥३॥
निश्चय कर शुभ वृषमे राच, परमेष्ठी पद ध्यावे पांच।
चित समाधियुत त्यागे प्रान, जहाँ उपजे सो सुनौ बखान ॥४॥
जंबूद्वीप सु पूर्व विदेह, पुष्कलावती देश गिनेह।
पुंडरीकणीपुर शुभ नाम, मानो दूजो स्वर्ग ललाम ॥५॥
वज्रसेन तीर्थंकर सार, राज्य करैं सब जन सुखकार।
तिनके गृह श्रीकांता नार, सती रूप लावन्य अपार ॥६॥
अच्युतेंद्र चयके इत आय, इनके सुत उपजो सुखदाय।

शुभ लक्षण कर सोभित सही, वज्रनाभ तिन संज्ञा लही ।।७
वरदत्तादिकके चर सार, जो सामानिक सुर सुखकार ।
स्वर्ग थकी चयके इत आय, वज्रनाभके भ्राता थाय ।।८।।
विजय नाम पहलेकौ जान, दूजो वैजयंत पहचान ।
तीजो नाम जयंत सु कहो, अपराजित चौथो सरदहो ।।९।।
सब सज्जनजनको मन हरे, चार वर्गकी उपमा धरे ।
पूरब कथित जीव जो चार, मतिवर मंत्री आदिक सार ।।१०
ग्रीवक अधो थको सो चये, इनके आय सु भ्राता भये ।
मतिवर जोव सुबाहु थाय, आनंद महाबाहु उपजाय ।।११।।
महो पीढ धनमित्र सु थयो, शुभ लक्षण तिनके उपजयो ।
तिसी नगरमें सेठ महान, नाम कुबेरदत्त धनवान ।।१२।।
नाम अनंतमती तिस नार, सती रूप रतिकी उनहार ।
तिन दंपतके पुन्य पसाय, चार प्रतेंद्रकौ चय इत आय ।।१३
इनके सुत उपजौ सुखदाय, छबिसुंदर धारे अधिकाय ।
तास नाम धनदेव सु थाय, शुभ लक्षण पूरित सुखदाय ।।१४।।
वज्रनाभि आदिक सब भ्रात, विद्या पढ़त भये अबदात ।
पूरबले शुभ पुन्य पसाय, विद्या शस्त्र शास्त्र सब थाय ।।१५
शुभ लक्षण कर पूरित अंग, प्रीत परस्पर बड़ी अभंग ।
तेज क्रांत सु कला समुदाय, सब जीवनकौं है सुखदाय ।।१६
क्रमसे योवन पाय कुमार, वस्त्राभूषण लंकत सार ।
उपमा अहमिंद्रनको धरे, रूप थको सबकौ मन हरे ।।१७।।
वज्रसेन तीर्थंकर सोय, काललब्धिवस विरकत होय ।
भव तन भोग सबै तजि देहु, सुखकारी शुभ दीक्षा लेहु ।।१८।।

इम चिंतत लौकांतिक आय, दिढ वैराग्य कियो सुखदाय।
वज्रनाभि सुतकौं दे राज, जिन उमगे शिव साधन काज ॥१९॥
चतुरन काय इन्द्र तब आय, तीर्थनाथको स्नान कराय।
रत्न तनी शिवकारज सार, प्रभुको कर तामैं असवार ॥२०॥
आम्र सु बन माहीतब गए, सिल ऊपर श्रीजिन तिष्टए।
सर्व परिग्रह तज अघधाम, पुन सिद्धनको कर परणाम ॥२१॥
एक सहस्र राय ले लार, दीक्षा कीनो अंगीकार।
अबसो मौन सहित तीर्थेश, विचरे निर्जन बन पर देश ॥२२॥
घोर तपस्या करते भए, ध्यान थकी भव भव अघ दहे।
अब सो वज्रनाभि ह्वै राय, धर्म तनी नित सेव कराय ॥२३
व्रत अरु शील दान शुभ जान, करे सुनित जिन पूज महान।
नाना विध सुख पुण्य पसाय, भोगे सुखमैं मगन रहाय ॥२४॥
भ्रात अरु नार थकी बहु नेह, पाले प्रजासु निसन्देह।
एक दिवस बिष्टरपै राय, बैठे नृपगण सेवित पाय ॥२५॥
दोय पुरुष आए तिसबार, नमके मुखसे वचन उचार।
हे राजन ! तुमरे जो तात, घात करमको कीनौं घात ॥२६॥
तीन जगतमैं दीप समान, उपजायौ सो केवलज्ञान।
स्वामी आयुधशाला बीच, चक्ररत्न संजुक्त मरीच ॥२७॥
उपजो तुमरे पुन्य पसाय, इम वच कह फुन मौन गहाय।
नृप दोनोंके बच सुन लीन, फुन उरमैं इम चितवन कीन ॥२८
चक्ररत्न धर्महितें भयो, तातें धर्म प्रथम बरनयो।
ये विचार दृढ़ कर हर्षाय, जिन बंदनको चालौ राय ॥२९॥

तीन जगतके नाथ महान, तिनकी स्तुति पूजन बहु ठान।
नरकोठेमें बैठी आन, दो बिध धर्म सुनौ धीमान ।।३०।।
स्वर्गमुक्तको प्रापत होय, फुन निज ग्रहकौं आयो सोय।
चक्र रत्नकी पूजा कीन, नवनिध अंगीकार सुकीन ।।३१।।
शेष रत्नग्रह केवल बंड, चालो साधनकौ षटखंड।
श्रेष्टीनंदन जो धनदेव, गृहपत रत्न भयोसो एव ।।३२।।
भ्राता सेन्या ले षट अंग, षटखंड साधत भयो अभंग।
देव विद्याधर अरु भूपाल, सबही से नमवायो भाल ।।३३।।
कन्यादिक जो रत्न सुसार, तिनकौं कीनो अंगीकार।
इंद्रसुव्रत क्रीड़ा नित करे, फुनचक्री निजपुर संचरे ।।३४।।
अबि सो चक्री पुन्य पसाय, नानाविधके सुक्ख कराय।
सावधान वृषमें सुरहाय, चिरलौ राज्य कियौ सुखदाय ।।३५
एक दिवस निज पितुके पास, धर्म श्रवण कीनौ सुखरास।
चितमैं ऐसो करो विचार, दर्शनज्ञान चरित हितकार ।।३६
जो धर्मातम सेवकराय, सोई अव्यय पदको पाय।
जो सुख शिवमें अद्भुत थाय, ता आगे नृप सुख कछु नाय ।।३७
नारी आदिक रत्न प्रसार, इमके त्याग थकी निरधार।
जो सुखशिव संपतकौ लहूं, त्यागनमैं तो क्या श्रम गहूं ।।३८।।
इस विध मनमैं करसु विचार, चित सवेग विषैं दृढ़धार।
वज्रदंत सुतको दे राज, आप चले शिव साधन काज ।।३९।।
जीरण तृण जो संपत जान, रत्नादिक त्यागे धीमान।
बंधूजनसे नाता तोर, शिव वनितासो प्रीती जोर ।।४०।।
पिता तीर्थंकरके ढिग जाय, सर्व परिग्रह त्याग कराय।
पंच मुष्टि लूंचे सिर केश, दीक्षा धरी दिगम्बर भेश ।।४१।।

अष्ट भ्रातको ले निज लार, अरु धनदेव सु ग्रहपति सार ।
मुकड बंध षोडश हज्जार, दीक्षा सबने ली हितकार ॥४२॥
एक सहस सुतहु तप धार, राणी अद्धलक्ष हितकार ।
इन सबने मिलके तप धरौ, नानाविध जो गुणगण भरौ ॥४३
अबते सब मुनिवर शुभ धीर, वज्रनाभि आदिक बरबीर ।
पृथ्वीतलमें करत विहार, सब जिन आगम पढ़ें हितकार ॥४४
सिंहादिक भयसौं नहि काज, रात्रदिवस जागृत मुनिराज ।
पर्वत गुफा सु बनमैं बसें, जीरण मठमैं इंद्रय कसे ॥४५॥
कृतकारित अनुमोद लगाय, प्राणीघात करै नहि भाय ।
झूठ अरु चौरी मैथुन पाप, परिग्रह सब छांड़ौ मुनि आप ॥४६
पांच सुमत अरु गुप्ती तीन, पालें यत्न थकी सुप्रवीन ।
ध्यान विषें नित चितको धरैं, तप करके काया कृश करैं ॥४७
निष्पृही वपुतें अधिकाय, चित धारौ निज आतम माह ।
निःप्रमाद ह्वै के शिव धनी, नानाविध तपकर शुध मनी ॥४८
गुरु आज्ञा लेकर हितकार, जिनकल्पी ह्वै इकल विहार ।
वज्रनाभि मुन परम दयाल, संजम नित पालैं गुणमाल ॥४९
अट्ठाइस मूलगुण मुने, चौरासीलख उत्तर गुणे ।
तप अरु ध्यान सिद्धके काज, योग त्रिकाल धरै मुनिराज ॥५०
वर्षाऋतु वर्षे अधिकाय, मेघ चले अरु झंझा वायु ।
तब वे श्री मुनवर सुखदाय, तरुके नीचे योग लगाय ॥५१॥
चौहट और नदीके तीर, योग लगावे श्री मुनि धीर ।
शीतकालमैं पड़त तुषार, वृक्ष दहे तिस काल मझार ॥५२
तप्त पहाड़ ग्रीष्मऋतु माह, ठाड़े मुनिकर योग लगाय ।

पंथी पंथविषै नहि चलें, सूर्य सामने श्रीमुनि अड़े ॥५३॥
इत्यादिक चिरलौं मुनराय, कायक्लेश कियौ बहु भाय।
अतीचार बिन दीक्षा सार, चिरलों पाली हितकरतार ॥५४
एक दिवस योगी निरधार, षोडस कारण भावन सार।
तीर्थंकर पदको कर्तार, भावत भये मुनी अविकार ॥५५॥
दर्शन विशुद्ध महा हितकार, शंकादिक मल वर्जित सार।
निशंकादि गुण भंडार, मुक्त नगर दीपक निर्धार ॥५६॥
दर्शन ज्ञान चरित तप जान, अरु इनके धारक बुधवान।
मन बच काय शुद्ध निज ठान, विनय करै सोई हितदान ॥५७
सम्पन्नता विनय गुण होय, यामैं संशय नांहो कोय।
सर्व शीलव्रत पाले जोय, अतीचार बिन मन शुद्ध होय॥५८
शीलव्रतेषु भावना सार, भवनाशन हित करन अपार।
ग्यारह अंगतनो हित दान, उरमैं भावन धरे महान ॥५९
ज्ञानोपयोग अभीक्षण कही, वज्रनाभ मुन भावे सही।
जगमें देह भोग दुखखान, धर संवेग करे कल्याण ॥६०॥
प्रगट सुमन निज बोरज करै, उग्र सुतप द्वादश विध धरै।
शक्त तपस्या त्याग सो जान, भावे मुन भावन सु महान॥६१
कोई साधु बहु कर्म पसाय, तज समाधिको चित अकुलाय।
धर्मोपदेश देय दृढ़ करे, सोई साधु समाधि धरे ॥६२॥
आचर्यादि मनोज्ञ पर्यन्त, दश प्रकार जानो मुन संत।
तिनकी वैयावृत्य करंत, तेई शक्ति अनंत धरंत ॥६३॥
स्वर्ग मोक्ष कारक जिनराज, तिनकी भक्ति करे भव पाज।
मन वच काय शुद्धकर सार, सर्व सिद्ध कोनो कर्तार ॥६४॥

छत्तिस गुण युत जग हितकार, पंचाचार परायण सार ।
ऐसे आचारज गुणवंत, तिनको भक्ति करैं मुनि संत ॥६५
वहु श्रुतवंत मुनी जो होय, तिनको भक्ति करैं मद खोय।
नित्य करैं प्रवचनकी भक्ति, हितकारक जो जिनवर उक्ति।६६
पूर्वापर विरोध नहीं जास, ज्ञान तने सो करै प्रकाश ।
समता आदिक जो शुभ सार, षट आवश्य क्रिया निर्धार॥६७
काल कालमें पूरण धरे, हान वृद्ध कबहू नही करे ।
सुनय ज्ञान सूरज निरधार, किरण थकी दुर्मति निर्वार॥६८
जिनमतकी परभावन करे, सोई प्रभाव नाम शुभ धरे ।
मुनि गुण दर्शन धारक जान, ज्ञान गुणातम बुद्धि निधान॥६९
बर प्रवचनसे वात्सल करे, प्रवचन वात्सल्य सो धरे ।
साधर्मी सो ह्वै सुधभाय, गौ वच्छावत प्रीत कराय ॥७०॥
तीर्थंकर पदवी कर्तार, षोडशकारण भावन सार ।
मन वच काय शुद्ध कर सार, चिरलौं माई मुनि अबिकार॥७१
षोडश भावन भाय मुनिंद्र, भाव विशुद्ध कर गुण वृन्द ।
त्रै जगमध्य क्षोभ कर्तार, प्रकट तीर्थंकर बाँधी सार ॥७२
सो सिद्धांत पाठ नित करै, शुद्ध भावना उरमैं धरै ।
तिस कर उपजी रिद्ध अनेक, सुनो सुधी चित धार विवेक॥७३

पद्धड़ी छंद

कोष्ट बुद्ध अरु बोज महान, बुद्ध पदानुसारणी जान ।
संभिन श्रोत्र बुद्ध रिद्ध सार, भेद बुद्ध ऋद्धके सुखकार ॥७४
श्री मुन तप ऋद्ध धरे उदार, वपु मल मूत्र रहित शुभ सार।
दीप्त ऋद्ध सेती निरधार, क्रांत सूर्यसम धरे अपार ॥७५

अणमा महमा जे ऋद्ध कही, विक्रय भेद धरे मुन सही ।
आम खिल्ल जल ऋद्ध धराय, सर्वोषध धारे मुनराय ।।७६
जगत रोग नाशन समरत्थ, निर्ममत्व वरते सु अकत्थ ।
वीरः श्रावी अमृत श्राव, मधुश्रावि घृतश्रावि बताय ।।७७।।
रस ऋद्धतने भेद यह चार, रस त्याग तप फल मुन धार ।
बल ऋद्धतने भेद यह तीन, मन वच काय तने बल लीन ।।७८
तपकर ऐसी शक्ती होय, विषम कार्य को समरथ जोय ।
अक्षीण महानसी ऋद्ध महान, अक्षीण महालय द्वितीय सुजान ।७९
क्षेत्र रिद्धके ये द्वै भेद, धारे सो मुन पाप उछेद ।
इत्यादिक ऋद्ध धरै अनेक, अंतर बाहर शुद्ध विवेक ।।८०
कठिन-२ तप अतिही करे, सब जीवोपकार चित धरे ।
तपको दीखत फल इम जोय, परभवमैं कैसोयक होय ।।८१
अपनो अल्प आयु लख मुनी, तजौ अहार चार विध गुनी ।
निज शरीर ममता परहरी, मन वच काय तिहू सुध करी ।।८२
प्रायोपगमन नाम सन्यास, धारौ त्यागी सब जग आस ।
श्रीप्रभ नाम सु पर्वत जहाँ, मरण समाध सु माड़ो तहाँ ।।८३
बहु उपवास करे मुन धीर, तातैं सूखो सर्व शरीर ।
मुख अर उदर शुष्क ह्वै रहैं, हाड चाम बाकी रह गये ।।८४।।
बनमें बैठ उपद्रव सहे, तनकौ ममता नाही गहे ।
घोर परीषह शत्रु महान, ध्यान खड्ग ले करते हान ।।८५।।
क्षुधा तृषा हिम उष्ण महान, दंसमसक अरु नग्नत मान ।
बनिता अरत परीषह जान, चर्या आसन सैन प्रमाण ।।८६।।
बध आक्रोश याचना जान, रोग अलाभ परीषह मान ।
मल तृण स्पर्श परीषह कार, पुरस्कार संस्कार निहार ।।८७।।

काव्य छन्द

प्रज्ञा अर अज्ञान अदर्शन दुर्जय जानौ, जीते इनको सार सोई मुनराज महानो। सहन परीषह थकी विपुल विध निर्जर होवे, पुन दशलक्षण धर्म महामुन चितमैं जोवे ॥८८॥

जोगीरासा

उत्तम क्षमा सुमार्दव आर्जव सत्य सौच शुभ जानौ, संजम द्वैविध तपसु त्याग फुन आकिंचन्य महानौ। ब्रह्मचर्य दृढ़ धर्म दसौं विध पाले श्री मुनराजे, जिस दिन धर्म विषैं तत्पर मुन मुक्त नगरके काजे ॥८९॥ अब सो राग रहित वैरागी द्वादश भावन भावे। तीन जगतमैं थिर कछु नाहीं सर्ब,अनित्य सुध्यावे। जब मृगशिशुको मृगवत गहवे तब तहाँ कौन बचावे। तैसे प्राणी यममुख जातैं काहूसे ना हिरावे ॥९०॥ दलबल देवी जंत्र मंत्र सब क्षेत्रपाल भी हारे, काल बली सबहीको खावे काहूकौं नहीं छारे। ये संसार महा-दुख पूरित सुख नहि लेश लहावे। आय अकेलो उपजै प्राणी इकलो मर्णहि पावे ॥९१॥ मात पिता सुत बनितादिक सब, अन्य अन्य है सारे। विपत पड़े कोई काम न आवे, शीघ्रही होत सुन्यारे। देह अशुच नवद्वार बहित नित या संग कैसो नेहा, सागरके जलसों शुच कीजे, तौ भी शुच नहि देहा ॥९२॥ आश्रव पंच महादुख कारन तिनके भेद सुनीजे, मिथ्या अव्रत योग प्रमादहि असु कषाय गुन लीजे। तिस आश्रवकौं रोक यतन कर षट बिध संवर कीजे गुप्त समिति वृष अनुप्रेक्षा भज

परीषह जीत सुलीजे ॥६३॥ चारित पंच प्रकार सु सज सत्तावन विध इम जानो, सविपाक हि अविपाक सुद्वैविध निर्जर भेद प्रमाणो । अधोमध्य उरध त्रैविध ये पुरषाकार त्रिलोका, मानुषगति मिलनी सु कठिन है साधर्मिनको थोका ॥६४॥ धर्म पावनो अति हि कठिन है, जो सुर शिव सुखदाई । ये समाज फिर मिलन कठिन है तातैं वृष उर लाई ॥ इम द्वादश भावन चितवन कर, तन ममता सब त्यागी । आयु अन्त लख धर्मध्यान चव धरत भये बड़-भागी ॥६५॥ उपशम श्रेणी मांड यतन कर एकादश गुण-थानी । शुक्लध्यानकौ पहलो पायौ तामधि निज बुध ठानी ॥ मरण समाध थकी वपु तजकर सर्वारथ सिद्ध पायो, द्वादश योजन सिद्ध शिला तल तहां सो सुख उपजायौ ॥६६॥ लख योजन विस्तीर्ण सुन्दर गोलाकार सुहावे, त्रेतठ पलटन ऊपर जानौ चूड़ामणिवत थावे ॥ तहां उपजे प्राणीनके चारौं पुरुषारथ सिद्ध होई, तातैं सार्थिक नाम तासकौ सर्वारथ सिद्ध जोई ॥६७॥ विजयादिक वसु भ्रांत सुमन थे अरु ग्रह पत धन देवा, ये नव तप कर उस ही थलमैं अह-मिंदर उपजेवा । तहां उपपाद शिला मधि दस मुन जाय भये सुर राई, अन्तर महूरतमैं बरयोवनयुत सब ऋद्ध लहाई ॥६८॥ सुन्दर वस्त्र सु माला पहने आभूषण सहजाई सुन्दर अंग सकल लक्षणयुत दश दिश द्योत कराई ॥ अवधिज्ञान कर सब इम जानौ इम पूरब तप कीनौ, ताफल कर इस थलमैं उपजे इम लख वृष चित दीनौं । कर स्नान

जिनमंदिर जाकर वसुविध पूज सुकीनी, अष्ठोतर शुभ नाम लेयकर चरननमैं दिठ दीनी ॥६६॥

चौपाई

चित्तमाही भक्ति अतिधार, स्तुत पूजा कीनी हितकार ।
जो संकल्प मात्र उपजये, बसुविध जल आदिक बरनये ।।१००
तहाँसे निज स्थानक आय, पुन्यजनत लक्ष्मी भोगाय ।
जिन सिद्धनकी प्रतमा सार, जाने अवध थकी निरधार ॥१०१
निज स्थानकसे अर्चा करे, पुन्य भंडार नित्य यों भरे ।
पांच कल्याणक कालन माह पूजा भक्त करै उत्साह ॥१०२
और केवली जो सुखदाय, दोकल्याणक नित पूजाय ।
गणधर आचारज उवभाय, सर्व साधुके वंदे पाय ॥१०३॥
निज विमान थित पूजन करें, और क्षेत्र नाही संचरे ।
पण परमेष्टीके पद भजे, ध्यान सु पूजन कर नित यजे ॥१०४
तत्व पदार्थ सब चितवे, निःशंकादिक बसु गुणठवैं ।
सम्यक दर्शन ज्ञान सुधार, मुक्ति अर्थ भावे अधिकार ॥१०५
धर्म सुफल परतछ पाइयो, धर्म विषै तब बुद्ध लाइयो ।
बिना बुलाये प्रीत पसाय, अर्हमिंदर सब नित प्रत आय ॥१०६
धर्म गौष्ठतें मिल सब करै, द्रव्य तत्वचर्या बिस्तरै ।
पुरुष शलाका त्रेसठखरे, तिनकी कथा सुनितप्रति करे ॥१०७
इत्यादिक नाना परकार, शुभ आशय युत शुभ आचार ।
करे उपार्जन पुन्य सुसार, जो तीर्थंकर पद दातार ॥१०८॥
पुन्य बिपाक थकी शुभ भोग, भोगे प्रवीचार बिनयोग ।
भोग निरूपम जगके सार, भोगे निज इच्छा अनुसार ॥१०९

क्रीड़ा करनेके जो स्थान, नित प्रत गमन करें सुमहान ।
निज विमान अरु सर उद्यान, पर्वत महल विषें क्रीडान ।।११०
बर स्वभाव सुंदर आकार, धारेंते अहमिंदर सार ।
निज स्थानक सेती सुखदाय, दूजो कोई स्थानक नाह ।।१११
तातें निजही स्थानक माह, रहवे नाहो गमन कराय ।
देवीगण संयुत सुर राय, जो उत्कृष्टे सुख भोगाय ।।११२।।
तासु असंख्य गुणो परमाण, भोगे सुख अहमिंद्र महान ।
सर्वोत्कृष्ट सुसुख संयुक्त, संसार कुदुख सेती विमुक्त ।।११३
सर्व अर्थ जहाँ सिद्ध ह्वै गये, पीडा काम तनी नहीं रहे ।
जैसे योगी शांत स्वरूप, भोगे सुख आत्मीक अनूप ।।११४।।
जो सुख अहमिंदर शुभ गहे, सो सुख और इन्द्र नहि लहे ।
यह जान भवि वृष चित धरे, जातें स्वर्ग मोक्षको बरे ।।११५
ईर्षा मद उन्मादन धरे, निज प्रशंस पर निंदन करे ।
काम विषादतनां नहि लेश, विक्रय नाहो करे हमेश ।।११६
जहाँ इष्टको नाह वियोग, नाह अनिष्ट तनो संयोग ।
जितने कारण दुख दातार, स्वप्नेमें हु नाहि निहार ।।११७
एक हस्त ऊँची शुभ काय, सुवर्ण वर्ण सौम्य सुखदाय ।
धर्मध्यान धारे हितकार, लेश्या शुक्ल धरे शुभ सार ।।११८
तेतिस सागरकी लह आय, स्त्री राग रहित सुख पाय ।
धरे प्रथम संस्थान अभंग, वर भूषण भूषित सर्वांग ।।११९
लोकनाडिमें मूरतवान, द्रव्य चराचर सारे जान ।
तिनको अवधि ज्ञानपर भाव, जाने राग रहित शुभ भाव ।।१२०
दोहा—शक्ति विक्रयाकरनको, लोकनाडि तक जान ।
पैनहि गमन करै कदा, बिन कारण सु महान ।।१२१

चौपाई

वर्ष जाय तेतीस हजार, करे मानसिक तब अहार ।
अमृतमय बरदायक पुष्ट, होय ततक्षण सब संतुष्ट ॥१२२
तेतीस पक्ष गये सुख रास, लेय सुगंधमई उस्वास ।
इत्यादिक भोगें शुभ सर्म, ऋद्ध समान धरे शुभ पर्म ॥१२३॥
सब समान पदमैं आरूढ़, सम रूपादि धरे सु अगूढ़ ।
ज्ञान विवेक धरे सु समान, गुण पूरण शरीर सुख खान ॥१२४
भोगोपभोग करे सु समान, सारी संपत सम पहचान ।
वृष समान सबने आचरा, तातें सम सुख सबने भरा ॥१२५॥
इस प्रकार अहमिंद्र महान, भोगे भोग रहित अभिमान ।
सुख सागरमैं मगन रहंत, जात काल जाने नहीं संत ॥१२६॥

गीता छंद

इम पुन्य फल अहमिंद्र लक्ष्मी सकल सुखको खानजी,
सर्वार्थसिधके सुख लहे तिस ऊपमा नहि आनजी ।
दुख स्वप्नमेंहू जहाँ नाही मगन सुखमें ही रहे,
इम धर्म फलको जान करके धरमको मारग गहे ॥१२७॥
यह धर्म सुगुण अनंतदाता, दोष द्यौता जानिए ।
इस धर्मसे नित सुक्ख होवे दुक्ख कबहू न मानिए ।
सकल जगत कीरत बिस्तरे सुर असुर नर सेवे सदा ।
इम जान बुधजन धर्ममें नित प्रीत राखो तज मुदा ॥१२८॥

इति श्री भट्टारक सकलकीर्ति बिरचिते श्रीवृषभनाथ चरित्रे वज्रनाभि चक्रवर्त्ति सर्वार्थसिद्धगमन वर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

—:०:—

अथ अष्टम सर्ग

चौपाई

सर्वारथ सिद्धके कर्तार, वृषभ जिनेश्वर वृष दातार ।
धर्म तीर्थ कर्ता जिनराज, गुणसागर वंदूं हित काज ॥१॥
ये ही जम्बूद्वीप महान, भरत क्षेत्र ता मद्य परमाण ।
आरज खण्ड लसे शुभ सार, भोगभूमिको अन्त मझार ॥२॥
राजानाभि दक्ष श्रीमान्, पदवी कुलकर धरे महान ।
तीन ज्ञानधारी सुख वान, गुणगण आगर बुद्ध निदान ॥३॥
तिनके महासती शुभ वाम, मरुदेवी नामा गुण धाम ।
धारे रूपकला विज्ञान, जासम पृथ्वीमें नहीं आन ॥४॥
एरावत गज सम गामनी, नखद्युत चन्द्र किरण सम भणी ।
मणिनूपुर करते झंकार, चर्णांबुज सेवत सुर नार ॥५॥
जंघा कदली गर्भ समान, अतही मृदु शुभ आकृतवान ।
कटि थान सुंदर सुखदाय, कांची दाम लसै जिस माह ॥६॥
कृषोदरी सबको मनहरे, नाभि कूपवत शोभा धरे ।
उर बिच हार लसे द्युत खान, तुंग कठिन कुच सोभावान ॥७॥
वक्षस्थल सुंदर अधिकाय, पुन्याणु निर्मायो आय ।
पुष्पमालती सम मृदु अंग, संख समान सु ग्रीवा चंग ॥८॥
कोयल सम भाषे मृदु बैन, पूर्णचन्द्र सम मुख सुख दैन ।
कर्णाभर्ण कर्णमें लसे, नाशा लख शुक बनमैं बसे ॥९॥
चन्द्र अष्टमीके आकार, दिपे भालयुत कला सुसार ।
मन प्रफुल्लित कमल समान, लज्जित मृग बनमाहि बसान ॥१०
स्याम सच्चिकण भ्रमर समान, केश विराजे शोभावान ।
सुंदर लक्षण तनमैं धरे, तसु महमा बरनन किम करे ॥११॥

सब भूषण मंडित बरसती, रूप निरख लागे रत रती ।
रूप कला लावण्य विवेक, ज्ञानादिक गुण धरे अनेक ॥१२॥
नाभिरायकी प्रिया सुसार, सोम अति सुंदर आकार ।
दंपत षटऋतु भोग सु करे, इन्द्र शचीकी उपमा धरे ॥१३॥
रत्नखान सम सोभै सोय फुन सौभाग्य भरो बपु जोय ।
ज्ञान विज्ञान धरे बर सती, गुण पूरण मानौ भारती ॥१४॥
भोगभूमि सम सुख बिस्तरे, कल्पबेल सम तनकौ धरे ।
सकल पुन्य संपतकी जान, आकर समजानौ धीमान ॥१५॥
भरताको अति ही सुखदाय, प्राणोंसे प्यारी अधिकाय ।
इंद्र इंद्राणी सम अति नेह, होत भयो जिनके चित गेह ॥१६
नाभिराय मरुदेवी संग, कामभोग भोगे सु अभंग ।
प्रीत सहित आनंदमें रहे, धर्म तने शुभ फलकौं गहे ॥१७॥
अब सो अहंमिदर गुणखान, वज्रनाभिकौ चर सु महान ।
घंटा नादादिकतें जान, शेष आयु षटमास प्रमाण ॥१८॥
इंद्र धनदको आज्ञा करी, तुम पुर जाय रचौ इस घरी ।
सो आयो इस भूम मझार, रचत भयो पर अति सुखकार ॥१६
तब आरज शुभ खंड मझार, रची अयोध्या नगरी सार ।
इंद्र तनी आज्ञा लह देव, रची सु अपने पुर सम एव ॥२०॥
पौली कोटर रत्नमय सार, मंदिर पंक्तिबंध निहार ।
दीघ खातिका सुंदर जहाँ, अति रमणीक रची सुर तहां ॥२१॥
ऐसी नगरी शोभावान, तामध राजमहल सुखदान ।
इंद्रभवन सम सोभ धरंत, ध्वजा समूह जहाँ लहकंत ॥२२॥

कोटादिक मणि सुवरण मई, गौपुर शोभा धारे नई ।
नाना शोभा संयुत सार, जिन उत्पत थान सुखकार ॥२३॥
नर नारी अति शोभावान, बसे देव देवी सम जान ।
जहाँ जिनवरकी उत्पति होय, तिस महमा बरनन बुध कोय ॥२४
लख दिन शुभमहूर्त वरवार, प्रथम इंद्र सुरगण लेलार ।
वहु विभूतले आयो आप, दंपति राजमहलमें थाप ॥२५॥
वर सिंहासन पै बैठाय, जल अभिषेक कियौ सुरराय ।
कल्प वृक्षसे उतपत भये, भूषण वस्त्रादिक जो नये ॥२६॥
तिनकर पूजा कीनी सार, इन्द्र महा उत्सव विस्तार ।
रत्नवृष्ट आदिक सुखदाय, पचाश्चर्य किये सुरराय ॥२७
श्री आदिकदेवी षटसार, तिनकूं सेवा सर्व सभार ।
गयो इंद्र निज थानक तबै, जिन महिमा उर सुमरत सबै ॥२८
अमरसुरी नित आवे तहां, तसु महिमा बुध बरनन कहां ।
धनद करे नित रत्न सुवृष्ट, तीनों काल सबनको इष्ट ॥२९॥
गन्धोदक वर्षा नित होय, कल्पवृक्षके पुष्प बहोय ।
ऐरावतकी सूड समान, मणि धारा वर्षे नित आन ॥३०॥
जंजैकार बहुत सुर करे, दुंदभि नाद थकी दिश भरे ।
षट महिना पर्यंत निहार, पंचाश्चर्य किये सुर सार ॥३१॥
एक दिवस महलनके माह, पलंग विषै सोवे जिन मांय ।
पुन्य उदै करि माता सोय, पश्चिम रैन विषै अवलोय ॥३२
सुपने सोलह अति सुखकार, तीर्थंकर सुत सूचनहार ।
तिनकौ वर्नन भवि जिय सुनौ, पूरब ग्रंथनमैं जिम भनौ ॥३३

छन्द कुसुमलता

ऐरावत हस्तीसम सुंदर देखो जिनमाता गजराज,

मदजल झरना झरत कपोलहि वस्त्राभरण सहित सब साज ।
द्वितीय स्वप्नमैं वृषभ लखो शुभ पांडु महाबल आकर जान,
तृतिय केसरी सिंघ निहारो तुरिय चंद्रमाल सुखदान ॥३४
सिंघासनपै लक्ष्मी बैठी तिसको गज द्वै न्हवन कराय,
फूलोंकी माला दो सुंदर तापै अलि गुंजारत भाय ।
उदय होत दिननाथ निहारौ उदयाचलपे तम हर्तार,
स्वर्णमई द्वै कुंभ जु देखे कमलथकी मुद्रित सुखकार ॥३५
नवम स्वप्न द्वै मीन निहारहि दसम सरोवर निरखो भाय,
ग्यारम सागर क्षुभित निहारो बारम सिंहासन दरसाय ।
सुर विमान फुन तेरम देखो नानाविध रचना आधार,
ग्रह फणिंद्र पृथ्वीतैं निकसत देखो जिनजननी सुखकार ॥३६
रत्नराशि अति सुंदर देखो दसौं दिसा उद्योत करंत,
अग्नि निर्धूम लखी सोलहवी दीप्त प्रचंड अधिक धारंत ।
अंत विषै निज मुखमैं धसतो वृषभ पीत कंधा हैं जास,
उच्च शरीर परम सुखदायक सुंदर निरखो जननी तास॥३७

चौपाई

तोलौं उदयाचलके माथ भ्रमण करत आयौ दिननाथ ।
बंदीजनको मंगलगान, सुन वादित्र ध्वन अधिकान ॥३८॥
जाग्रित ह्वै जानो परभात, शय्या छोड़ उठी जिन मात ।
क्रिया प्रभात तनी सबकरी, निज वपु मंडलकर तिस धरी ॥३९
सुपननको फल पूछनकार, चली जहां राजे भर्तार ।
सिंहासनपै बैठो राय, देखो सती आवती भाय ॥४०॥
राणी आय प्रणाम सु कियो, राजा अर्द्ध सिंहासन दियो ।
तब राणी बोली सुख देन, भो राजा सूनिये मम बैन ॥४१

स्वामी पिछली रयन मंझार, सुख निद्रा लेती सुखकार ।
पुन्य उदै सेतीसु तुरंत, सुपने सोलह लखे महंत ॥४२॥
गजसे लेय अग्नि पर्यंत, सुभ सुपने देखे हर्षंत ।
इनकौ फल जो होवे यदा, किरपाकर भाषौ सर्वदा ॥४३॥
यह सुनके नृप आनंद पाय, कहत भये भो देवि सुनाय ।
सुपननको फल उत्तम सार, भाषूं सो सुन उर रुच धार ॥४४
गज देखनसे पुत्र सु होय, तीन भुवनमें उत्तम सोय ।
वृषभ थकी तीर्थंकर जान, द्विविध धर्मरथ वाहक मान ॥४५
वीर्य अनंत सिंहसो धरे, कर्म गजनको अंत सु करे ।
माला सेती वृष दातार, अंग सुगन्ध होय विस्तार ॥४६॥
लक्ष्मी स्नान करत जो जोय, ताफल सुरगिर न्हवनसु होय।
पूर्ण चंद्रमा लखौ महान, ता फल जान वृषा मत दान ॥४७
सूरज लखनथकी तुम जान, मोह अंध हर्ता द्युत मान ।
कुंभ लखनसे सुन गुण भरी, सब विद्या जिनघटमें धरी ॥४८
मत्स युगमको फल यह जान, महा सुखकी होवे खान ।
सरवरसे सब लक्षणवान, एकसहस्र अष्ट परमाण ॥४९॥
सागर लखनेकौं फल येह, केवलज्ञान रत्नको गेह ।
सिंहासनको फल यह ज्ञान, तीन जगतगुरु होय प्रधान ॥५०
सुर विमान देखो द्युत धरो, सर्वारथ सिधसे अवतरो ।
लखेफणींद्र भवन छबिवान, ताफल अवधिज्ञान युत जान॥५१
रत्नराशि तुम देखो जोय, ता फल नंतगुणाकर सोय ।
अग्नि निर्धूम थको सुंदरे, कर्मधनकौं भस्म सु करे ॥५२॥
वृषभ प्रवेश लखौं मुख मांह, ता फल प्रभु तौ उदर बसाय।

वृषभनाथ त्रिजगत गुरु सही, तुमरे गर्भ बसे गुण मही ॥५३

अडिल्ल

पतिमुखतैं इम सुपनको फल सुन सही, पुत्र गोदमें होय इस सुखको लही । इंद्रसो धर्मतनी आज्ञा करके तबै, पद्मादिक द्रह बासनि षट देव्या सबै ॥५४॥ सो सेवा नित करे हर्ष उर धारके, निज निज गुणको सबही करत विस्तारके । श्री सोभा श्रीलज्जा विस्तारत भई, धृत धीरज परकाश कीर्त जस प्रगटही ॥५५॥ बुद्ध बोध परकाश सुलक्ष्मी विभवही, इम षट् देवी निज निज गुण परकाशही । गर्भ सुसोधना करत बहुत विधसे वहै, जिन माताको सहज थकी शुच देह है ॥५६॥

पायता छंद

अब अर्हमिंदर सौ जानौ, जो वज्रनाभि चर मानौ ।
सो सर्बारथ सिद्ध थानौ, जहांते चय यहां उपजानौ । ॥५७
मरुदेवी गर्भ मझारी, आसाढ सु दुतया कारो ।
नक्षत्र उत्तरापाढा, ता दिन सब आनंद बाढा ॥५८॥
घंटादिक चिह्न लखाई, सुरलोक तबै हर्षाई ।
जिन गर्भकल्याणक जानौ, इंद्रादिक गमन सु ठानौ ॥५६॥
चव विधके देव सु तेहा, निज निज वाहन चढ तेहा ।
नृप नाभिराय गृह आये, वृष राग धार उर धाये ॥६०॥
तहां गर्भस्थित भगवाना, तिनको सब नमन सुठाना ।
इन्द्रादिक सबही देवा, जिनमाताकी कर सेवा ॥६१॥
फुन गोत नृत्य अति कोने, बाजे बाजे रस भीने ।
वस्त्राभरणादिक लाये, उत्सव कर पूज रचाये ।६२॥
इम गर्भकल्याणक कोनो, हर स्वर्ग गयौ सुख भीनो ।

छप्पन कुमारका देवी, माताकी सेव करेवी ॥६३॥ केई शुभ स्नान करावे, केई तांबूल खिलावें। केई वस्त्रादिक पहनावें, केई माला गूंथ सु लावें ॥६४॥ पादादिक धावे केई केई शय्यादि रचेई। सिंहासन केई बिछावें, तिसपर माता बिठलावें ॥६५॥ केई पुष्प रेणु सु धारें, चंदन छिडके बरबारे। केई रतनन चौकसु पूरे, केई पूजा करत हजूरे ॥६६ केई कल्प प्रसून सु ल्यावें, माला गुहके पहरावें। रतननको दीप जगावे, माता को चित हर्षावें ॥६७॥

छंद सुन्दरी

जल सु केल बन क्रीडा करें, गीत नृत्यादिक कर मन हरें।
इनही आदि बिनोद बढ़ावती, हाव भाव कटाक्ष दिखावती ॥६८
इम सुरी नित सेव करे जहां, जगत लक्ष्मीकी उपमा तहां।
नवम मास विषे सुर सुन्दरी, करे प्रश्न महारसकी भरी ॥६९

दोहा—पंचेन्द्री जिन जीतयो, नित्य अनित्य महान।
शर्ण सर्ब जीवन तनी, सो कित मात सयान ॥७०॥
जो प्रत्यक्ष फुनि गूढ है, जो सु कर्म कर्तार।
कर्म हरन जो है सही, सो कित मात अवार ॥७१॥
इम सु प्रश्न सुर सुरी किये, सुन माता हर्षाय।
इनकौ उतर जानिये, मम सुत गर्भ बसाय ॥७२॥
कौन शब्द निहचै कथन, कौ है लघु तिर्यंच।
शिव साधकको जन्म है, को दाहक कहुं संच ॥७३॥

अस्योत खरचानर चौपाई

कठिन प्रश्न इत्यादिक घने, देवी जिन जननी प्रतभने।
जिनवर गर्भ महातम पसाय, माता उत्तर दे विहसाय ॥७४

तीन ज्ञान भास्कर जिन सार, धारे तिनको उदर मझार ।
तातें ज्ञान बढ़ो असराल, ततक्षण उत्तर देय रिसाल ॥७५

महापुरुष मणि गर्भ मझार, तेज प्रताप धरे अधिकार ।
खान समान सु शोभा लहो, अथवा रत्न गर्भ वर मही ॥७६॥

पद्धड़ी छंद

माताके त्रिवली भंग नाह, सुखसो जिन तिष्ठे गर्भमाह ।
जो जो शुभ गर्भ बढ़े सु सार, त्यों त्यों जिन माता प्रभा धार ॥७७

तिष्टे श्री जिनवर उदर माह, तौपण भी पीड़ा कछुक नाह ।
प्रतिबिंब आरसीमें बसाय, तैसे श्री जिनवर गर्भ मांह ॥७८॥

ह्वं गुप्त शक्र अरु सची सार, बहु अपछर गणको लेय लार ।
जिनमात तनी बहु करे सेव, तिसके वर्णन कहां लग कहेव ॥७९

चौपाई

बहु कहनेतें अब क्या काज, जगसे उत्तम सर्व समाज ।
जाके तीर्थंकर सुत होय, ताको वर्णन भाषे कोय ॥८०॥

इत्यादिक नित उत्सव रहे, दिक्कुमारका सेवा बहे ।
सुखसौं बीत गए नव मास, पुन्य योगतें करत विलास ॥८१

नितप्रत धनद करे मणि वृष्ट, नृप आंगनमैं सबको इष्ट ।
पंचाश्चर्य होय इम सार, षटनव मास तलक सुखकार ॥८२॥

देखौ धर्म तनौ फल भाय, तीर्थंकर सुत उपजत आय ।
मंगल आनंद होवे घने, ताकौ बुधजन कबलौ भने ॥८३॥

जिन जननी अतिही सुखकार, सेवत किंकरवत् सुरनार ।
धर्म थकी क्या क्या नहि होय, सुखदाता या सम नांह कोय ॥८४

पुन्य उदैतें करै विलास, सुखसौं बीत गए नव मास ।
चैत्र मास माही सुखकार, कृष्ण पक्ष नवमी दिन सार ॥८५

नक्षत्र उत्तराषाढ़ महान, ब्रह्म योगता दिन परमाण ।
माता सुखसौं जनौ प्रसूत पुर सुदेवयुत क्रांत विभूत ॥८६॥

अडिल्ल

तीन जगतमैं महा धरे दिव्यांगसो, गुण समुद्र त्रयज्ञान धरे सुप्रभंगसौ । प्राची दिशये भानोदय जिम होत है, तिम जननीजिन सूर्यकरो उद्यौत है ॥८७॥ तबही तिनके जन्म महातमसे सही, दसो दिशाने सुंदर निर्मलता लही । अंबर भी तब अतिशयकर निर्मल भयो, सज्जन निज चित माह बड़ो आनंद लयो ॥८८॥ बजे अनाहत घंट कल्पवासिन तने, कल्पवृक्षसे स्वयं पुष्प वर्षे घने । इन्द्रनके सिंहासन लागे कांपने जिनवर आगे प्रभुता कहौं काकी बने ॥८९॥

गीता छंद

सब मुकुट इन्द्रनके नये मनो पुर प्रमाण करे महो,
सु जिनेश जन्म महात्मतें इत्यादिक अचरज बहु लहो ।
हरनाद जोतिष संघ भवनसु व्यंतरन भेरी बजो,
आसन प्रकंपादि सबनके कल्पबासीवत् गजो ॥९०॥
इत्यादि अचरज देख सुर जिन जन्म उर निश्चय करौ,
तब ही सुचतुरनिकाय जनमकल्याणमाहो चित धरौ ।
लह इन्द्र आज्ञा शीघ्र सेना चली सात प्रकार जो,
जैसे समुद्रसु लहर सोभै तेम शोभा धार जो ॥९१॥
गज अश्व रथ गंधर्व प्यादे वृषभ अरु नृतकारणो ।
इम चली सेना सात विधको सबनके मन भावनो ।
सुभ लाख योजनको सु हस्ती इक सतक मुख सोमने,
मुख मुख प्रते वसुदंत दंतन मध्य इक इक सर बने ॥९२॥

सर सर विषे पणवीस सतक सु कंवल भी सुखकार है,
कंवलनो इक इक विषै पणवीस कंवल सु सार है।
कवलन सुकवलन प्रति लसे वसु सतक पत्र सुहावने,
पत्रन सु पत्रन प्रति नचे सुरनार शोभा अति बने ॥९३॥

चौपाई

ऐरावत हस्ती ये सार, इन्द्र सचीयुत भयो सवार।
फुन प्रतिद्र भो ह्वै असवार, देव सनानिकादि ले लार ॥९४॥
वैमानिक शुभ दस परकार, चाले जिनवर भक्ति सुधार।
केई सुरी गीत गावन्त, केई नाचत अरु कूदंत ॥९५॥
चतुरनकाय चले सुरसार, निज निज वाहन ह्वै असवार।
हास्य सहित आगे विहसंत, धावे जिनवर भक्ति धरंत ॥९६॥
नभगणमें विमान सब ठौर, छाये तहाँ दीसे नहि और।
दुंदभिवाद थकी सुखकार, पूरो दशों दिशा निरधार ॥९७॥
श्री जिन जन्मकल्याणक माह, जग आश्चर्य संपदा थाह।
क्रमसौ चलत चलत सुरसुरी, आए जहाँ अयोध्यापुरी ॥९८
तीन प्रदक्षण पुरीकी देय, जय जयकार शब्द उचरेय।
उरमैं आनंद लहो समाज, जन्म सफल मानो निज आज ॥९९

सवैया

पुर नभ कोट रोक राज अंगनादि चौक सर्व ठौर देव थौक ठाडे भक्तिवंत सौं। परसूत ग्रहमाहि शचीधरके उछाह गई तहाँ देखे जिन तेज सु धरंत सौं। जिनाधीशको निरख लहो परमानंद सूची उरमें न माई लख रूप भगवंत सौं। गुप्त जिन जननीको श्रुति कीनी बहू भांत तीन परदक्षिण दे देखे शिवकंत सौं ॥१००॥

चौपाई

माया मई सिसु राखो तेई, सुख निद्रा माताको देई ।
जिनवरको ले अंक मझार, पायो सुख आनंद अपार ॥१०१
तहाते चली अनंद उपाय, दिगकुमारका आगे धाय ।
मंगल द्रव्य अष्ट करधार जैजंकार शब्द उच्चार ॥१०२॥
दोहा—सची आय पति अंकमैं, दीने श्री जिनचंद्र ।
निरखत बहु आनंद लह्यो, पायो परमानंद ॥१०३॥
निरखत निरखत तृप्ति नहि, होत भयेसु सुरेश ।
तब सहस्र दृग निज किये, फुन देखे सुजिनेश ॥१०४॥

गीता छन्द

फुन शक्र बहु विध करन लागौ स्तुति मनोज्ञ सुहावनो ।
तुम देव जगके नाथ हो द्युत बाल शसिसम पावनो ।
त्रय जगतके तुम नेत्र हो, आनंद हमको दीजिये ।
युग आदि जिन तुम श्रेष्ट कर्ता दासको सुख दीजिये ॥१०५

पायता छन्द

तुम ही अनंत गुण धारी, तीर्थेश्वर जग हितकारी ।
तुम केवलज्ञान धरोगे, लोकत्रय प्रकट करोगे ॥१०६॥
तुम मोह निवारन हारे, शिव मग दरशावत प्यारे ।
तुम ही आत्मज्ञ जिनेश्वर, मनमथमातंग मृगेश्वर ॥१०७॥
तुम धर्म तीर्थके कर्ता, मुक्तश्री के बर भर्ता ।
तुमरे गुण ग्राम मझारो, अति रजित है शिवनारी ॥१०८॥
गुण सागर ज्येष्ट जिनेश्वर, तुमको बंदूं परमेश्वर ।
इस भांति थुति बहु गाई, गजपे निज नार बिठाई ॥१०९॥
ऊंचौ निज हाथ उठायो, जिन ले सुरगिर को धायो ।
चाले नभमैं सुर सारे, जय नंदादिक उच्चारे ॥११०॥

गंधर्व गीत बहु गावे, अपछरगण नृत्य रचावे ।
दुदंभिके शब्द घनेरे, तासे दस दिशा गुंजेरे ॥१११॥

गीता छन्द

सौधर्म इंद्र उछंग धर जिनराजको गोदो लियौ, ईसान इंद्र प्रमोद धरके छत्र श्री जिनपे कियो। ढारत भयो सु सनत्कुमार महेंद्र श्री जिनपें चंवर, निज चित्तमें आनंद धर जैकार करते इंद्र अर ॥११२॥ तिसकाल केई सुम मिथ्याती लख विभूत जिनेशकी, सुरगरण सकल पायन पडत अति भक्ति देख सुरेशको। भयभीत ह्वै मिथ्यात विषकौ बमो शुद्ध दर्शन गहे जाते मनुषभव सुख अनुपम पाय फुन शिव को लहे ॥११३॥ इत्यादि आनंदयुत चलो जिनराजके संग सुरपती, अर देव दुंदभि बजे बाजे, तासकी ध्वन ह्वै अती। जिनराज वपुको किरण सोहै इन्द्र चाप मनो यही, योजन सहस निन्याणवै इस भांत गगन उलंघ ही ॥११४॥ तिस मेरु गिरमैं भद्रसालादिक सु बन सुभ चार हैं, मणि हेममय षोडश अनूपम जहां सु जिन आगार है। जहां देव देवी मुन सु चारण आय यात्रा करत है, एक लाख योजनकौ उतंग सु धर्मसूरत बत सु है ॥११५॥ बन तूर्य पांडवके विषैं ईशान दिशमैं सोहनी, पांडुकसिला तहां अर्धचन्द्राकार मणि छबि मोहनी। योजन पचास विशाल है आयाम सौ योजन तनौ वसु योजनाकी ऊंच तापे सिहपीठ सुहावनौ ॥११६॥ सास्वतो सोहै सिंह विष्टर खेपनको सु जिनेशके ता पास बिष्टर दोय है सौधर्म ईशानेशके। छत्र चामर कलशझारी ध्वजादर्पण सुभ खरे, साथियो अरु बोजनां इम बसुद्रव्य मंगल तहां धरे ॥११७

दोहा—इत्यादिक सोभा सहित, मेरु सु गिरके शीस ।
मध्य सिंहासनके विषैं, स्थापे श्री जिन ईश ।।११८।।
अपनी अपनी दिश विषैं, ठाडे दस दिगपाल ।
धर्मार्थी सुरगण सकल, भए अधिक खुशहाल ।।११९।।
पांडुक बन अंबर विषैं, सेना सुरगण छाय ।
जे जै अति मुखतैं करैं, आनंद अंग न माय ।।१२०।।
मंडप बड़ो बनाईयो, शुभ सुंदर अधिकाय ।
त्रैजगके प्राणी सकल, तामैं जाय समाय ।।१२०।।
जगन्नाथके स्वपनको, प्रथम इन्द्र उमगाय ।
बीच सिंहासनके बिषैं, स्थापे श्री जिनराय ।।१२१।।
बाजे बाजन तब लगे, देव दुन्दमी सार ।
सुरगण नाचे मोद धर, जै जैकार उचार ।।१२२।।
किन्नर अरु गंधर्व मिल, गावे गीत अनेक ।
जनम कल्याणकके परम उर में धार विवेक ।।१२३।।
धूप दशायन लेयके, धूप दान मंझार ।
शांत पूष्टके अर्थ सो, खेवे सुरगण सार ।।१२४।।

छन्द ३० मात्रा

प्रथम इन्द्र जिन मज्जनको पढ़ मंत्र कलश निज हाथ लिये ।
ईसान इन्द्रबर कलशनकौ तब चंदन कर चर्चित सु किये ।
शेष शक्र जयकार उचारे, अति आनंद प्रमोद भरे ।
निज निजयोग यथोचित सेवा करत भये तब सुर सगरे ।।१२५
इन्द्राणी अपछरगण सब ही जिन भज्जनको मोद धरे ।
मंगल द्रव्य लिये निज करमें, सुरगण हर्षित चित्त खरे ।
प्रथम इन्द्र निज चितमैं चिंतो जिन शरीर सुंदर अधिकाय ।
तातैं इनकौ स्नपन करूं अब क्षीर समुद्र तनौ जल लाय ।
मेरु शिखरतैं क्षीरोदधि तक पंक्ती बंध खडे सुर आय ।।१२६

बदन उदर अवगाह कलशके इक चव वसु योजन को माय ।
मोती दामादिक कर भूषित ताकी सोभा कही न जाय ।
हाथोहाथ लेय कलशे सो हर्षित चित्त सुर अंग न माय ।।१२७
तब ही एक सहस शुभ हरने, हस्त किये निज चित हर्षाय ।
तामैं कलश लिये मानो ये भाजनांग सुरतरु सोभाय ।
इन्द्र तबै जैकार उचारो, जिन मस्तकपै दीनो धार ।
तब ही सुरगण चित प्रमोदित, बहुत मचाई जैजैकार ।।१२८
दोहा–जा धारासे गिर तने, खंड खंड ह्वै जाय ।
सो धारा जिन सीसते, फूलकली सम थाय ।।१२९।।
तीन लोकके नाथसो धारे वीर्य्य अनंत ।
जा बीरजकौ बर्णते, आवे नाहो अन्त ।।१३०।।
जिन तनसे जलकी छटा, लगके ऊँची सोय ।
मानौ पाप रहित भई, तातैं ऊरध होय ।।१३१।।
जिन शरीरको स्पर्शके, धार चली असराल ।
मग्न भये तिस धारमैं बनके वृक्ष विशाल ।।१३२।।
नाना रत्न जहां लगे, ऐसी अवनि मझार ।
क्षीरोदधि मानौ यही, आयो है सुखकार ।।१३३।।

चौपाई

तिरछी छटा सु जावे कोय, तब ऐसी आशंका होय ।
मानौ दिशा रूप जो नार, ताके करन फूल यह सार ।।१३४
इत्यादिक उत्सव अधिकाय, भये सु दुंदभि नाद बजाय ।
नाचें तहां सु सुरसुन्दरी, हावभाव विभ्रम रसभरी ।।१३५।।
जन्माभिषेक तने सुभ गीत, गावे सुर गन्धर्व संगीत ।
मणिमई धूपदान मंझार, धूप बसायन सेवे सार ।।१३६।।

इन्द्र इन्द्राणीके सुभ सार, पुन्य उपार्जन कियो अपार ।
श्री जिनवरकी भक्त सु करी, तातें पुन्य उपायो हरी ॥१३७

गीता छंद

फुन गंधयुत जल लेयके हरि अति पवित्र उदार ।
जिन गंधयुत तन सहज तौपण भक्तिवस दी धार ।
सो धार जग आनंददायक शिव सरम तुमकौ करौ ।
सो धार पावन करे अरु भवताय दुख मेरे हरो ॥१३८॥

चौपाई

सर्व अर्थकी सिध कर्तार, मुझकौ मंगल दो अविकार ।
विघ्न राशिको खड्‌गसमान, हमकोकरौ मोक्ष शुभथान॥१३६
जिनवपु स्पर्शन कर सो धार, भई पवित्र अधिक सुखकार ।
सो धारा मम मन शुध करौ, रागद्वेष आदिक मल हरो ॥१४०

दोहा—इस प्रकार आनन्द धर, कियो महा अभिषेक ।
फुन श्री जिन वसु भेद सो, पूजे धार विवेक ॥१४१

चौपाई

जल चन्दन अति गंध समेत, अक्षत मुक्ताफल जो श्वेत ।
पुष्प कल्पवृक्षके सार क्षुधा पिंडवत चरु बलकार ॥१४२॥
रत्नदीप शुभ धूप सु खेय, नानाविधके फल शुभ लेय ।
पूजे शक्र सु आनन्द भरे, नभमैं पुष्पवृक्ष सुर करे ॥१४३॥
गन्धोदककी वर्षा होय, मन्द सुगन्ध वायु अवलोय ।
जाकी स्नान पीठिका जान, मेरु सुदर्शन सोभावान ॥१४४॥
मधवा स्नान करावन हार, स्नान कुण्ड क्षिरोदधि सार ।
नृत्य करें देवो गण घने, इंद्र सबै किंकर जिस तने ॥१४५॥
ताकौ कवि बुध कैसे कहे, बाढ़े कथा अन्त नहिं लहे ।

पूरण कर अभिषेक जिनन्द, उरमें अधिक लहो आनंद ॥१४६
वसन लियो उत्तम सुखकार, जिन तन मार्जन कीनौ सार।
स्वर्गलोकमैं उपजे जेह, ऐसे वस्त्राभूषण लेय ॥१४७॥
जिन तनमें पहराये सार, शची अधिक आनंद सु धार ।
जगत तिलक शोभे जिनराय, तिनके तिलक दिए बिहसाय ।१४८
जगके चूडामणि जिन ईश, चूडामणि बांधो तिन शीश ।
त्रैजग नेत्र सुहै जिनराय, कज्जल आंज शचि उमगाय ।१४९
सहजहि वेधे सुंदर कान, तामैं कुण्डल निज शशि भान।
कंठ विषैं सोहे मणिहार, भुजमें भुजबंध शोभै सार ॥१५०
कटि आभूषण कटिके माह, पहरे श्री जिनवर सुखदाय ।
इस प्रकार मंडन कर शची, हर्ष सहित गुणमें रची ।.१५१
जिन शरीर सुंदर अधिकाय, वस्त्राभूषण शोभा पाय ।
तब इम शोभा पाई सार, मानौ लक्ष्मी पुंज उदार ॥१५२
बार बार निरखे तब हरी, नैन तृप्तता नाही धरी ।
तब फुन सहस नेत्र कर सार, रूप लखौ जिनकौं सुखकार।१५३

गीता छंद

इत्यादि गुण सागर अगुणहार कर्म रिपु हंतार है ।
त्रैजगत पूज्य जिनेश प्रथम सुधर्म वर कर्तार है ॥
मेरुपै हर युत महोत्सव स्नपन वंदन आदरो ।
शिवमार्ग उपदेशक सो ही हमको अबै मंगल करो ॥१५४॥

इति श्री भट्टारक सकलकीर्ति विरचिते श्रीवृषभनाथ चरित्रे गर्भजन्म-
कल्याणक वर्णनो नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥

—:०:—

अथ नवम सर्गः

चौपाई

जाको मेरु सिखरपे स्नान, इन्द्रादिक सुर कियौ महान ।
पूजित सब कल्याणक माह, बंदूं ऋषभ सु धर उत्साह ।।१
भक्ति भार नमत सुरराय, जिन स्तुति प्रारंभो सुखदाय ।
तुमह श्रष्टीके कर्तार, तुम सब जियके रक्षनहार ।।२।।
आदि महामौनी सुखकार, श्रेष्ट मार्ग वक्ता हितकार ।
आदि विश्व भूपत हो नाथ, तुमको राजा नावें माथ ।।३।।
तीन ज्ञान धारी सुखदान, सब विद्या आकर सु महान ।
नीति मार्ग सब जन सुखकार, आदि प्रकाशौ करुणाधार ।।४
आदि मोह रिपुके हंतार, आदि तपस्वी जग हितकार ।
आदि पात्र हो श्री जिनराज, कर्म हते लह केवलराज ।।५
आदि पंचकल्याणक भोग, तीर्थ प्रवर्तक धारी जोग ।
भव भयभीत होय तप धरो, जगत शरण अब मंगल करौ ।।६
भविजन तारक जग हितकार, भवि अंबुधसे तारणहार ।
बिन कारण जगबंधु महंत, सुख बीरज अनंत धारंत ।।७
आदि मुक्त नारीके कंत, लोक अग्र मांही निवसंत ।
अमूर्तीक वसु गुणयुन सार, बंदूं चरण करौ भवपार ।।८।।
तुमरौ सहज शुद्ध वपु सार, निस्वेदादिक गुण भंडार ।
हमने स्नपन कियो जो आज, निज आतमकी शुद्धी काज ।।९
तीन जगतके मंडनहार, दिव्यरूप अद्भुत सुखकार ।
हमने मंडन कीनो आज, तुमरे पदकी सिद्धी काज ।।१०।।
गुण अनंत तुममें हैं देव, तिनको लह तनको उछेब ।
चव ज्ञानी गणधर हू थके, हम तुछ बुद्ध कहां कह सके ।।११

ये निश्चय कीनौ उर माह, जिन गुण वर्णन हम बुध नाह।
पै तुम भक्त प्रेरणा करे, ता वश होय स्तुति उच्चरे ॥१२

नाराच छन्द

नमो करौ सु मुक्तिनाथ स्वर्ग मोक्षदाय हो, नमोकरो सु
तीर्थनाथ गुण अनंत राय हो। नमोकरो सु जेष्ट जिन कल्याण
पंच भोग हो, नमोकरौ सु पर्म इष्ट ईश धार जो गहो ॥१३
परमात्म तोहिमैं नमूं गुरु सुद्ध सार हो, प्रथम जिनेंद्र दिव्य
मूर्ति अतिशय धार हो। इस प्रकार भक्ति भार युक्त बहु
स्तुतो करी, शक्रने सु बार बार चित्त आनंदता धरी ॥१४॥

चौपाई

इत्यादिकमैं स्तुति करी, भक्ति भारयुत शोभा भरी।
ताकौ फल ये होऊ जिनंद, गुणसागरदायक आनंद ॥१५॥
जगततनी लक्ष्मीसे काज, मोको नाहीं है महाराज।
यह तौ सहज होत निर्धार, तुमरे भक्तनकौं सुखकार ॥१६
सम्यक्दर्शन ज्ञानचरित ! ये मोकौ दीजये पवित।
भवसागरमैं नाहीं रहूं, सास्वत मुक्ति रमाकूं गहूं ॥१७॥
दोहा—इत्यादिक प्रार्थना करी, शक्र सहित जिनराज।
ऐरावत चढ़ चालियो, पूरववत छबि साज ॥१८॥
गीत नृत्य बाजे बजे, करे अधिक उत्साह।
ले विभूत सुर सब चले, शेष कार्यके तांह ॥१९॥

चौपाई

देखी आय अजुध्यापुरी, ध्वजमाला युत शोभा भरी।
ज्यौं निजपुरमें जाय सुरेश, त्यौं ही यामैं कियौ प्रवेश ॥२०
दसौं दिशामैं सुरगण भरे, जैजैकार शब्द उच्चरे।
नृपागारमें तब सुरराय, कियौ प्रवेश सु चित हर्षाय ॥२१

देवरचित तहाँ शोभाखान, ग्रह आंगण सुन्दर शुभ थान ।
सिंहासनपै श्री जिनराय, थापे प्रथम इंद्र हर्षाय ॥२२॥
निज सुत देखो नाभि सु राय वस्त्राभूषण शोभित काय ।
तेज राशि मानो यह सार, इम अचरज युत करे विचार ॥२३
इन्द्राणी माता ढिग जाय, माया निद्रा दूर कराय ।
द्यो प्रबोध माता शुभ सार, निरखे बंधुजन सुखकार ॥२४
पूर्ण मनोरथ जिनके भए, ऐसे मात पिता सुख लिए ।
शक्र शची धरके आनंद, निरखे स्तुति कीनी सुखकंद ॥२५
सुरगण साथ लेय विहसंत, वस्त्राभूषण भेट करंत ।
करे प्रशंशा बारंबार, सौधर्मेन्द्र हर्ष उर धार ॥२६॥

सवैया ३१

तुम दोनों जगपूज्य महाभाग्य महोदय महापुन्यवान स्तुति योग्य बंदनीक हो । तुम सम जगमाह और कोई दीखे नाह । चैत्यगिर सम हितकार पूजनीक हो । तुम कल्याण भागी गुरुराज शिरोमणि जग गुरु पुत्र जायो तातें माननीक हो ॥ इस भांत स्तुति कर तिनकौ सु सुत दीनौं । मेरुके स्नपन को विधान सबसो कहो ।।२७॥

दोहा—तबैं इन्द्र उपदेशतैं, पुत्र महोत्सव सार ।
नगर लोक करते भए, धर चित्त हर्ष अपार । २८॥

चौपाई

ध्वज तोरण अरु बंदनमाल, ठाम ठाम बनें सु विशाल ।
नानाविध सु महोत्सव करे, इन्द्रपुरी सम शोभा धरे ॥२९॥
विथो चौहट अरु बाजार, रत्नचूर्ण कर मंडित सार ।
बजे मृदंगादिक अधिकाय, तातें दस दिश बधिर कराय ॥३०

ध्वजा समूह बहुत फरहरे, सूर्य तेज आच्छादित करे।
नाभिराय अति आनंद भरे, हर्ष प्रमोद चित्तमैं धरे ॥३१
राजमहल अरु गृह सु मझार, गान नृत्य होवे सुखकार।
पुरजन सब अचरजमैं भरे, निज अनुराग प्रगट सब करे ॥४२
तबै शक्र आरंभो सार, आनंद नाटक अचरजकार।
जिनकी आराधन गुण धाम, साधे धर्म अर्थ अरु काम ॥३३
नृत्यारंभ इंद्र तब करो, आनंदयुक्त अति भक्ति सु भरो।
नाभिराय मरुदेवी लार, अरु निज सुत युत देखे सार ॥३४
तिस विधानके जाननहार, देव गंधर्व योग्य तिस सार।
गावैं गीत सहित किन्नरी, हाव भाव विभ्रम रस भरी ॥३५
पटह मृदंग तूर कंसाल, बाज बाजे अधिक रिसाल।
जन्मकल्याणककौं शुभ सार, नाटक हरि कीनौं तिहवार ॥३६
विक्रय ऋद्धथकी अनुसरे, नाना भांति रूप हरि धरे।
श्री जिनेन्द्रके दस भव सार, प्रथक प्रथक दिखलाये धार ॥३७

गीता छन्द

पुन नृत्य तांडवको आरंभो हर्ष चित्तमैं धर हरी,
वर वस्त्र मालादिक पहन तरु कल्पसम उपमा धरी।
शुभ रंगभूमीके विषैं हर अधिक आनंदमें भरौ,
निज हस्त एक सहस्र कीनें युक्त भूषण सुन्दरो ॥३८॥

चौपाई

एक रूप छिनमैं ह्वै जाय, छिनमैं रूप अनेक धराय।
छिनमैं दीरघ रूप धरात, छिनमैं अति सूक्ष्म ह्वै जात ॥३९
छिनमैं पास छिनक आकाश, दूरि समीपादिक सु विलास।
छिनमैं दोय हस्त निज करें, छिनमैं सहंस हस्त अनुसरे ॥४०

इस प्रकार सामर्थ अपार, कीनी निज परगट सुखकार ।
इंद्रजाल कीनौ सुरराय, ताकी शोभा कही न जाय ॥४१॥
शक्र करांगुल पे सुर सुरी, नाचे हाव भाव रस भरी ।
मानौ शक्र कल्पतरु सार, कल्पबेल अपछरा निहार ॥४२॥
कबहुक अपछर नाचे पास, कबहुक जाय लगे आकाश ।
कबहुक अदृश्य ही ह्वं जाय, सो ही फुनिवर नृत्य कराय ॥४३
इत्यादिक शुभ नृत्य समाज, देविनयुत कीनौं सुरराज ।
विक्रय ऋद्ध तने परभाय, कीनौ नृत्य सबन सुखदाय ॥४४
नृत्य विधानसु पूरण कियौ, जिन भक्ति उरमैं धारियौ ।
मुक्त अर्थ कीनौ सुरराज, देखे नाभिराय महाराज ॥४५॥
इन्द्र धरौ तब जिनकौ नाम, वृषभनाथ सब गुण गण धाम ।
तीन लोक हितकारी जान, वृष उपदेशक दया निधान ॥४६
माताने भी स्वप्न मझार, सुंदर वृषभ लखो थो सार ।
तातैं इनकौ सार्थिक नाम, वृषभनाथ हैं गुणगण धाम ॥४७
यह व्यवहार नाम शुभ करो, जिन अगुष्टमैं अमृत धरो ।
पुष्ट होय तासे गुणरास, धात्रीसम देवी घर पास ॥४८
तिन समान वय रूप धराय, विक्रय ऋधतैं सुर सुखदाय ।
जिनकी सेवा कारण सार, राखे इंद्र भक्ति उर धार ॥४६
प्रवर पुन्य उपजाय महान, इंद्र गये तब अपने स्थान ।
अबसे दिव्यरूप जिनराय, तिनकी सेवा देव कराय ॥५०॥
मज्जन करे भक्ति उर धार, जिन शरीर शृंगारे सार ।
वस्त्राभूषण माला लाय, स्वर्ग तनो पहरावे धाय ॥५१॥
कबहू जिन संग क्रीड़ा करे, हर्ष विनोद चित्तमैं धरे ।

इस प्रकार त्रैजगके नाथ, लघु वय गुण दीरघ विख्यात ॥५२॥
द्वितया शशिसम उपमा धरे, जिनकी सेवा सुरगण करे।
क्रम सो श्री जिन मुखमैं आय, वसी सरस्वती जग सुखदाय ॥५३
इन्द्र नीलमणि भये सुखकार, भूमि विषें चाले जिन सार।
डिगमिगात पद श्री जिन धरे, मानौ धर्ममूर्त संचरे ॥५४॥
शुक गज हंस अश्व बन जाय, सुर नाना विध रूप धराय।
जैसी वय श्रीजिनकी होय, तैसो रूप धरे सुर सोय ॥५५॥
बाल अवस्था तज बुधवान, हुवे कुमार सकल सुखदान।
मति श्रुत अवधि सु तीनों ज्ञान, लीये उपजे थे भगवान ॥५६
सकल कला जो जगमें कही, सबही सार प्रभूने गही।
उत्तम क्षायक समकित धार, बारा व्रत धारे सुखकार ॥५७
सकल जगतकी विद्या जोय, तिनकौ जानत जगगुरु सोय।
अष्ट वर्षके जबही होय, श्रावकके व्रत धारे सोय ॥५८॥
निज यश निर्मलचंद्र समान, ताकौं सुनत भये निज कान।
सुर गंधर्व किन्नरी जोय, प्रभु गुण गात सु हर्षित होय ॥५९॥
कबहुक बीन बजावे सुरा, कभियक काव्य गौष्ट प्रभु करा।
कभी मयूर रूप सुर धरे, नाना विध नाटक अनुसरे ॥६०॥
कबहु शुकको रूप धरंत, काव्य छंद श्लोक पढ़ंत।
कबहुक बन क्रीड़ा अनुसरे, कबहुक जल क्रीड़ाको करे ॥६१
इस प्रकार क्रीड़ा सुखकार, करे जिनेश्वर सुरगण लार।
क्रमसो योवनवान जिनेश, भये सबन सुखदाय हमेश ॥६२
तप्त स्वर्णसम वर्ण महान, पंच सतक धनु तन परमाण।
लक्ष चौरासी पूरब आय, सुंदर लक्षण लक्षित काय ॥६३

सत्तर लाख करोड़ बखान, छप्पन सहस करोड़ प्रमाण।
एते वर्ष मिलावे सही होवे पूरव संख्या वही ॥६४॥
श्रमजल रहित शरीर सु जान, मलमूत्रादि रहित सुख दान।
क्षीरवरण श्रोणित पहचान, आदि संस्थान धरे गुणखान ॥६५
प्रथम सार संहनन सु धरे, रूप थकी सबकौ मन हरे।
बिना लगाए सुगंध अपार, आवें जिन तिनतें सुखकार ॥६६
एक सहस सुलक्षण जान, जिन तनमैं सोहै सुखदान।
बीरज अतुल धरे जिनराय, हित मित बचन सबन सुखदाय।६७
ये दस अतिशय लिए महान, उपजत हैंगे श्री भगवान।
अब जो लक्षण जिन तन माय, तिनके नाम कहे सुखदाय ॥६८

गीता छन्द

श्रीबृक्ष १, अंकुश २, कवल ३, तोरण ४, शंख ५, स्वस्तिक जान ६, घट ७, छत्र ८, चामर ६, केतु १०, विष्टर ११, मत्स १२, उदधिमहान १३, नर १४, नार १५, चकवा १६, काछव १७, सर १८, सिंह १६, भवन २०, विमान २१। पुर २२, इन्द्र २३, गंगा २४, मेरु २५, गौपुर २६, सूर्य्य २७, शशि २८, धनु २६, बान ३० ॥६६॥ तरुताल ३१, अश्व ३२, मृदंग ३३, वीणा ३४, वेणु ३५, कुंडलमान ३६ ॥ शुक ३७, नाग ३८, माला ३६, क्षत्र-फल ४०, युतरत्नद्वीप ४१, उद्यान ४२। निध ४३, वज्र ४४, उपवन ४५, धरा ४६, लक्ष्मी ४७, सरस्वती ४८, सुखदान ॥ वृषभ ४६, कामधेनु ५०, चूड़ामणि ५१, स्वर्ण ५२, तोरन जान ५३ ॥७०॥

सवैया ३१

जम्बूवृक्ष कल्पबेल सिद्धारथ वृक्ष ग्रह महल गरुड़ वसु प्रति-
हार्य जानिये । मंगल दरब वसु लक्षण इत्यादि शुभ एक
शत आठ (१०८) नौसै व्यंजन (६००) प्रमाणिये ।। भूषण
सहित तन सुंदर सुशोभावान जोतिष सुगण तथा चन्द्रमा
समानिए । अर्द्धचंद्राकार भाल मुकट दिए विशाल मुख चंद्र-
वत नैन बरिज बखानिए ।।७१।।

चौपाई

गीत बाजित्रादिक श्रुत सार, तिनके श्री प्रभु जाननहार ।
मणि कुंडल कानन मंझार, सोभे चंद्र सूर्यवत सार ।।७२
तुंग नासिका शोभावान, हित मित बचन सबन सुखदान ।
वक्षस्थल सुंदर अधिकाय, तामैं रत्नहार शोभाय ।।७३।।
श्री विद्याको स्थानक जान, दीरघ वक्षस्थल द्युतवान ।
लंबी भुजा वांछित फलदाय, कल्पलता सम अति शोभाय ।।७४
नख सुंदर दस अंगुल तने, अर्द्धचंद्र सम चमके घने ।
मानौ दशलाक्षण जो धर्म, ताहीको परकाशे पर्म ।।७५।।
नाभी सरबत युत आवर्त, बुध हंसो जहाँ करत प्रवर्त ।
कटिमैं कटिमेखला अनूप, रत्नजड़ित सोभे शुभ रूप ।।७६।।
जंघा कोमल वज्र सुमई, योग धारनेको निरमई ।
जिनके चरणकमल शुभ सार, कवि बुध कहत न पावे पार ।।७७
जिनकौं सेवें नित प्रति देव, चितमैं धार अधिक अहमेव ।
इत्यादिक तन सौभ महान, कविके बचद अगोचर जान ।।७८
नख सिख लौ जो शोभा सार, ताको को कवि पावे पार ।
अस्थि अरु वेष्टन कीले जान, बज्रमई सबही परमाण ।।७९।।

इत्यादिक गुण पूरण सार, सुंदर रूप समुद्र निहार ।
देखो योवनवान कुमार, नाभिराय तब कियो बिचार ॥८०
ये तीर्थंकर गुणकी खान, तीन ज्ञान धारी सु महान ।
मंदराग बसि ग्रहमैं रहे, काललब्ध लह तपको गहै ॥८१॥
जबलग काललब्धि नहि आय, तबलग पुत्र अर्थ सुखदाय ।
रूपवती कन्याके लार, व्याह करूं सब जन सुखकार ॥८२॥
यह निज चित्त निश्चय ठैराय, जगन्नाथ ढिग पहुंचे जाय ।
मेरे बचन सुनौ तुम सार, न्यायरूप जो सुख कर्तार ॥८३॥
हमको गुरु कहत हैं लोग, तुमरे जनम तने संजोग ।
गुरु तो तुमही हो हितकार, स्वयं कार्यके जाननहार ॥८४
प्रजा तने उपकार निमित्त, पाणीग्रहण करो सु पवित्त ।
प्रजा तुमरे ही अनुसार, सतमारग धारे सुखकार ॥८५॥
मेरे आग्रहतें सुकुमार, मम बच कीजे अंगीकार ।
इस प्रकार तिन बचन अमंद, सुनके मुस्कराय जिनचंद ॥८६
राजो ऋषभ जिनेश्वर जान, नाभिराय तब उद्यम ठान ।
गौह्य इन्द्रसे करके सार, द्वै कन्या जाचो सुखकार ॥८७॥
कच्छ सुकच्छ नृपकी गुणयुता, नंद सुनंदा नामा सुता ।
नगर उछालो कर उत्साह, कामन गावैं गीत अघाय ॥८८॥

पद्धड़ी छंद

शुभ लग्न महूरत देख सार, दस दोष रहित साहो विचार ।
गुरजनको साक्षी देय दीन, बर पाणीग्रहण कीनों प्रवीन ॥८६
सज्जन हर्षे बहु चित्त माह, दोनौ सो भौते पार नाह ।
अब मंद राग बसि श्री जिनेश, संतान काज भोगे सु वेश ॥ ६०

देवो पुनीत भोगे सु भोग, नित नए सु पूरव पुण्य योग।
भोगे षट ऋतुमैं सुख रिसाल, जाने न सुखमैं जात काल ॥६१

चौपाई

सुख सौं सूतो नंदा नार, देखे स्वप्ने रंन मंझार।
सूरज मेरु निगलती मही, उदधि हंस शशि सरवर सही ॥६२
दोहा—बाजे सुन परभातके, बंदी बिरदबखान।
पुन्यवान जागत भई, मंडन निज तन ठान ॥६३॥
हर्षित चित भर्तार ढिग, बैठी सुन्दर काय।
स्वप्नमाल जैसी लिखी, तैसी भाखी जाय ॥६४॥

चौपाई

तिय मुख स्वप्न सुने हर्षाय, ताके फल भाखे जिनराय।
मेरु सुदर्शन ते सुखकार, चक्रवर्त सुत होवे सार ॥६५॥
भूम निगलती तैं सुखदान, षट् खण्ड पालक होय महान।
चंद्र थकी शुभ कांत सु धार, सरसे पूरित लक्षन सार ॥६६॥
सागरतैं चरमांगी जान, तिरे संसार समुद्र महान।
सूरजतैं परतापी होय, हससे उज्जल कीरत जोय ॥६७॥
सत पुत्रनमैं ज्येष्ठ महान, होवेगो संशय नहि जान।
षट्खण्डके सुर भूपति जान, तिसको ते सब करैं प्रणाम ॥६८
भर्तांके इम वचन सुनंत, चित्त प्रमाद अधिक धारंत।
मानों पुत्र गोदमें आय, बैठे तैसो आनंद पाय ॥६९॥
सिंह सु होय सुबाहू भयो, सोई अहमिंदर पद लयो।
सो सर्वारथ सिद्धतें चयो, नंदा गर्भ आन सो ठयो ॥१००
क्रमसो गर्भ बढ़ो सुभ सार, गर्भ चिह्न प्रगटे सुखकार।

ज्यों ज्यों गर्भ बढ़े सुखदान, त्यों त्यों सज्जन आनंद मान ॥१०१
सुखसौ बीत गये नव मास, जेठो सुत जायो गुण रास ।
बर लक्षण लक्षित सुकुमार, बाल सूर्यसम उपमा धार ॥१०२
मरुदेवी अरु नामिसुराय, सुत संतान देखि हर्षाय ।
पटह शंख भेरी मिरदंग, बाजे बाजे अधिक सु चंग ॥१०३
पुष्पवृष्ट आदिक सुर करें, नृत्य गान बहुविध विस्तरें ।
अवधपुरी सु अलंकृत करी, तोरण सहित ध्वजासौं भरी ॥१०४
इस प्रकार चित्त आनंद धार, कीनौ जन्ममहोत्सव सार ।
भरतक्षेत्रको हेगो भूप, भरतनाम यूं धरो अनूप ॥१०५॥
द्वितया शशि सम बालक सोय, बाढे सब मन आनंद होय ।
दिव्य रूप धारे सुखकार, छबि सुन्दर मनु देवकुमार ॥१०६
तबसो योवन वयमें सार, पितुसम रूप क्रांत गुणधार ।
शंख चक्र मछ गदा अनूप, इन लक्षण फल षट्खंड भूप ॥१०७
छत्र दंड असिरत्न सु जेह, तिनके लक्षण धारत देह ।
भरतक्षेत्रके राजा जिते, या फल पद सेवेगे तिते ॥१०८
भरतक्षेत्रमैं नर सुर जोय, तिन बलतें सु अधिक बल होय ।
शौच क्षमा बुध सत उत्साह, विनय असम धारे अधिकाय ॥१०९
मीठे बच वपु क्रांत सुवान, तप्त स्वर्णसम वर्ण महान ।
पांच सतक धनु ऊंची काय, पिता तुल्य बर जानौ आय ॥११०
देव राजवत शोभा धरे, सब जनके सो मनको हरे ।
क्रमसो नंदाके अब जान, चय सरवारथ सिधतें आन ॥१११
भये पुत्र सब गुणगण खान, तिनकौ अब सुनिए व्याख्यान ।

मंत्रीचर जो पूरब कहो, पीठ सुफुन अर्हमिंदर थयो ॥११२
भयो सु वृषभसेन बुधवान, भरत तनो भ्राता गुणखान ।
प्रोहितचर महापीठ सुजान, फुन अर्हमिंदर ह्वै गुणखान ।११३
अनंतविजय सुत सोई भयौ, व्याघ्रतनो चर विजय सु थयौं ।
अर्हमिंदर पद लह फुन चयो, सो अनंतवीरज उपजयो ॥११४

गीता छंद

वराह चर वैजयंत ह्वै के फुन अर्हमिंदर पद लयो,
चयके तहाँ सुत अनूपम नाम अच्युत उपजयो ।
मर्कट तनौ चर ह्वै जयंत सु फुन अर्मिदर सो भयो,
चयके तहाँ तेजज्ञ नामा सुत बलो अति सो थयो ॥११५॥

चौपाई

नकुल जीव अपराजित भयो, फुन अर्हमिंदर पद शुभ लयौ ।
तहाँतै चय इनके सुतसार, नाम सुबीर भयो सुखकार ॥११६
इत्यादिक सुत उपजे सार, सुंदर एक सतक सुखकार ।
पुन्य उदैसे नंदा नार, सुख भोगे नाना परकार ॥११७॥
सब लक्षण पूरित जसु गात, धाय पंडिता चर विख्यात ।
ब्राह्मी पुत्री उपजी आय, पुन्यवती जानौ सुखदाय ॥११८॥
सेनापतिको चर जो कहो, महाबाहु सोई फुन भयो ।
फुन सर्वारथ सिधमें जाय, तहांते चयके फुन इत आय ॥११६
वृषभदेवकी दूजी नार, नाम सुनंदा जगमें सार ।
तिनके बाहुबली सुत भयो, कामकुमार प्रथमसौं थयो ॥१२०
वज्रजंघके भवमैं जान, नाम अनुद्धरी भगनी मान ।
पुंडरीकके संग सुख भोग, नर सुरके फुन शुभके योग ॥१२१
सो तिनके तनुजा भई आय, नाम सुंदरी सब सुखदाय ।

धारे बुध सु गुणसु अनेक, रूप कला लावण्य विवेक ॥१२२
यूं इक सतक सु एक कुमार, चरमांगो गुण पूरण सार।
पुन्य बराबर सबने कियौ, तातें सबने सम सुख लियौ ॥१२३
क्रमसौ योवनवान कुमार, होत भये सब जन सुखकार।
तिन सब सुतकरि श्री जिनचंद्र, सोभित भये पाय आनद ॥१२४
जोतिषगणयुत ज्यौं गिरराय, सोभे त्यौं सोभे जिनराय।
पुत्रनको नाना परकार, पहरावै मोतिनके हार ॥१२५॥
शीर्षक अरु उपशीर्षक नाम, अब घाटक तीजो गुण धाम।
परकांडक अरु तरल प्रबंध, पंच भांति यो हार अमंद ॥१२६

तोटक छन्द

अब सीर्षक हार सु भेद सुनौ, जिसमें इक मोती दीर्घ गिनो।
जिसमें त्रय मोती बीच गहे, उसको उपशीर्षक नाम कहे।१२७
जिस बीच पांच मोती गुंथिए, तीस नाम प्रकांडक शुभ कहिए।
जिस बीच बड़ो क्रमहीन धरो, अब घंटक नाम सु हार खरो।१२८
अब तरल प्रबंध जुहार कहो, तिसमें मौतिक इक सार लहो।
इस हार सु ग्यारह भेद कहे, सबकी लड़ियां मध भेद रहे॥१२६
इक सहस आठ लड़ जास तनी, तसु नाम इंद्र छंदा सुभनी।
सो इंद्र चक्रवर्ती पहरे, अरु तीर्थंकर गल बीच धरे ॥१३०
लड़ पांच शतक अरु चार गिनी, सो हार पहर त्रय खंड धनी।
तसु नाम बिजै छंदा कहिए, सो अन पुरषनके ना लहिए॥१३१
अब देव छन्दको अर्थ सुनो, सत अष्टोतर लड़ियाँ जु गुनौ।
इकलड़ इक्यासी मोतीकी, नाहि उपमा उसकी जोतीकी।१३२

पायता छंद

जो साठ लड़ीको जानो सो अर्द्धहार पहचानो ।
बत्तीस लड़ी जिस माहि, गुच्छ नाम हार सो थाहि ॥१३३॥
लड़ है सत्ताईस जाकी, शुभ हार नखत्र मालाकी ।
चौबीस लड़ी जिस गहिए, अर्द्ध गुच्छ हार सो कहिए ॥१३४
जो माणवहार बखानौ, तिस बीस लड़ी परवानौ ।
जो माणव अर्द्ध कहीजे, लड़ियां दस ताज गहीजे ॥१३५॥

गोता छन्द

इम हार ग्यारह भेद जानो एक शीर्षकके विषैं,
उपशीर्षकादिक भेद चारौं तासमें यों ही लखे ।
इम पांच हारन मध्य पचपन भेद जानो एव हो ।
ते सब कुमारनकौ बनायें पहरते शोभा मही ॥१३६॥
इक दिनजु ब्राह्मी सुंदरी दोऊ कुमारी आय ही ।
वस्त्राभरण अनमोल पहरे प्रभु चरण सिर नाय ही ।
तिनको निरख प्रभु मोद धर निज गोदमें बिठला यही ।
इम कहत बच सुन पुत्रियों विद्या पढ़ो तुम भाय ही ॥१३७

चौपाई

हे पुत्री तुम औसर येह, विद्या पढ़नेको गुण गेह ।
विद्यासम कोई भूषण नाय, जन्म सफल इसते हो जाय ॥१३८
पुरुष तथा प्रमदा जो कोय, विद्या गुणकर भूषित होय ।
सब जग ताको पूजा करे, जगत द्रव्य कर सो नर भरे ॥१३९
विद्याश्रय जगदीपक कही, मोक्षमार्ग परकाशक सही ।
विद्या सब कल्याण करेय, विद्या सकल अर्थको देय ॥१४०॥

तीन लोकको भूषण येह, हेयाहेय परीक्षा गेह ।
देवशास्त्र गुरुको पहचान, विद्या बिना न कभू लहान ॥१४१
ज्ञानहीन है नर जो कोय, धर्म अधर्म न समझे सोय ।
करे परीक्षा नाही सार, शुभ अरु असुभतनो निर्धार ॥१४२
ज्ञानांजन जिनदृग आंजियो, तिनको सम्यग्दर्शन भयो ।
ज्ञानहीन जे अन्ध समान, कृत्याकृत्य विचार न जान ॥१४३
ऐसो जान पुत्री गुण गेह, विद्यासे भूषित कर देह ।
तीन लोक बिच शोभा सार, विद्या बिन नाहीं मन धार ॥१४४
तुम पढ़नेको औसर यही, वृद्धकाल विद्या ह्वै नही ।
नमः सिद्धेभ्य कह परवीन, अकारादि अक्षर गुण लीन ॥१४५
ब्राह्मीको सब ही सिखलाय, दक्षिण करसे लिखन बताय ।
सुंदरि दूजो पुत्री जान, ताकौ गणित सिखाय प्रमाण ॥१४६
वाम हस्ततै ताह पढ़ाय, एक आदि दस तक लिखवाय ।
दोनों बुद्धिवती थी सोय, पढ़कर बेग पंडिता होय ॥१४७॥

पद्धड़ी छंद

सत पुत्रनिको तबही पढ़ाय, नाना प्रकार शास्त्रहि बताय।
जो धर्म अर्थकी सिद्ध कराय, सो सब विद्यामें निपुण थाय।१४८
शुभ भरत पुत्र जो दीर्घ जान, तिसको लक्ष्मी प्रापत ठान ।
जो वृषभसेन दूजो कुमार, संगीतशास्त्र सो पढ़त सार ॥१४९
जो पुत्र अनंतबिजय महान, सो चित्रकलामैं निपुण जान ।
अश्वादिकपे चढ़नो बताय, अरु धनुर्वेदके ग्रंथ पढ़ाय ॥१५०
तिया पुरुषके लक्षण सही, मंदिर रचनाकी विध कही ।
रत्न परीक्षा बहु अध्याय, बाहुबलिको ये मणवाय ॥१५१

इम अनेक विद्या सुखकार, निज परहित कारक सुख सार।
सब पुत्रनको दई सिखाय, जगकर्ता सबको गुरु थाय ॥१५२॥

गीता छन्द

अब कल्पवृक्ष गये सु भुवसे शक्ति उनकी घट गई,
तब सर्वजन व्याकुल भये किम कर ये चिंता भई।
जीवनकी आशाधार मनमें नाभिनृप जापें गये,
सब ही नमन कर जीवकाकी प्रार्थना करते भये ॥१५३॥

तिनको मलिन मुख देखकर नृप नाभि प्रभुपै ले गये,
सब जाय करिके नमन कीनो बीनती करते भये।
पितु मात सम द्रुम राज थे सो सर्व ही जाते रहे,
जिम पुण्यके क्षय होत संते द्रव्य चोरादिक गहे ॥१५४॥

अब शीत तापादिक परीषह क्षुधा प्यासादिक घनी।
लगने लगी तनकौ बहुत जब आय कर तुम सो भनी।
हे देव तुम किरपा करो जो सब उपद्रव जाय हो।
तुमरी शरण हम आ गये तुमही उपाय बताय हो ॥१५५॥

इम बचन सुनकर कृपा सागर तीन ज्ञान धरे सही।
मनमें विचारौ एम तब अब भोगभूम सबै गई।
अब कर्मभूमि प्रर्वात होनी चाहिए इस भू विषें।
जो मुक्ति जोव अनंत जावे, चतुरगति कारण लखे ॥१५६॥

जो पूर्व अपर विदेह माही रीत वर्ते है सदा।
सो सर्व होनी चाहिए षट्कर्म भी कहते यदा।
इक चिन्तवन करते प्रभु इतने अमर हर आइया।
शुभ दिन सु लग्नादिक निरख श्री जिनभवन बनवाइया ॥१५७

फुनि कौशलादिक देश सुन्दर सर्वनाना विध सही।

शुभ ग्राम पत्तन खेट कर्वट अरु मंट वसु जानही ।
अरु द्रोणमुख संवाहनादिक यथायोग्य बनाइयो ।
जगनाथको परिणाम करके शक्र निज थानक गयो ॥१५८
असि मसि कृषि विद्या वाणिज्य शिल्पकम प्रमाणिये ।
षट्कर्म सृष्टाने बताये कृपाकर सुखखान ये ।
नाना सुविध आजीवकारक प्रजाको बहु सुख दियो ।
असिकर्म प्रथमहि क्षत्रियोंको देय बहु आनंद लियो ॥१५९॥

पायता छन्द

मषि कर्म दुतिय जो थाई, सो लेखक शास्त्र लिखाई ।
कृषि कर्म त्रितिय जो जानो, सु किसान लोग करवानो ॥१६०
विद्या जो चौथो कहिए, सो शास्त्र पठनतें लहिये ।
जो वणज करे हितकारी, उद्यम अनेक विध धारी ॥१६१
सो पंचम कर्म बताये, वाणिज्य नाम सो गाये ।
बहु शिल्पकर्म करवाई, सो षष्टम भेद बताई ॥१६२॥
इम प्रभु षट्कर्म बताये, सब जीवनके सुखदाये ।
सुन तीन वर्णके भेदा, प्रभुने जो थापेएवा ।
जो प्रजापालने दक्षा, पृथ्वीकी करहै रक्षा ॥१६३॥

पद्धड़ी छंद

जो न्यायपंथके जानकार, अरु शास्त्रथकी भयको निवार ।
तिनकौ क्षत्री थापे जिनंद, जो सब परजाके दुख निकंद ॥१६४
जो सकल वस्त्र संग्रह कराय, अरु दानादिकमें रत सु थाय ।
ते श्रेष्ट महाजन वैश्य जान, वाणिज्य वर्ण दूजो पिछान ।१६५
अब शूद्रतणो सुन सर्व भेव, जो खेती पशु पालन करेव ।
तिनमें दो भद्र सुजान लेह, इक कारु अकारु दो गिनेह ॥१६६॥
तिनमें रजकादिक कारु जान, ते मद्य मांस वर्जित बखान ।

अब भेद अकारु तने दोय अस्पर्श स्पर्शहो जान लोय ।।१६७।।
जो पुर बाहर रहते चडाल, अस्पर्श जात कंजर कुचाल।
अब स्पर्श शुद्रको भेद एम, तेलो खाती आदिकसु जेम ।।१६८
आषाढ़ कृष्ण प्रतिपद मझार, थापे इम तीनौ वर्ण सार।
षट्कर्म प्रभुने सब बताय, अपने अपने सबही कराय ।।१३८

चोपाई

बीस लाख पूरब इम गये, काल कुमारहि सुख भोगये।
तब सौधर्म इंद्र आइयो, बहु देवन को संग लाइयो ।।१७०
प्रभुको राजतनो अभिषेक, करनो इम चित धार विशेष।
पुरी अयोध्या शोभित करी, ध्वज तोरण कर भूषित खरी ।।१७१
क्षीर समुद्र तनों जल लाय, ताकर प्रभुकौं न्हवन कराय।
दुंदभि बाजनको जो शोर, बधरो करत दसो दिस जोर ।।१७२
देव अपछरा नृत्यसु करे, श्री जिनभक्ति माहु चित धरे।
गावे गीत किन्नरी सार, फुनि गंधर्व पढ़े मुद धार ।।१७३।।

तोटक छंद

इत्यादिक मंगल मोद लहो, प्रभुको जु सिंहासन थाप सही।
अभिषेक करे कर भक्ति महा, शुभ कुंभ सुवर्ण अनेक गहा ।।१७४
पुरके जन मिल स्वजनादि जबै, जयनंद कोलाहल गान तबै।
नृप नाभि आदि राजन जबही, मिल भक्त करी प्रभुकी तबही ।।१७५
पुरके सब लोग गजु कुंभ लिए, तिनके मुख अंबुज ढाक दिए।
फुन व्यंतर मागध आदि कही, अभिषेक करे हितसो सबही ।।१७६
फुनि आरत प्रभुको करत सही, भूषणमाला पहरावत ही।

फुन नाभिराय निज हाथ गही, पट बांध्यो प्रभु सिर रत्न-मई ।।१७७।। शुभ मुकट धरो प्रभु मस्तक पै, चूड़ामणि जिनके सीस दिये। तिहुं लोकनाथ वर आज भये, इम आनंद जुत सब कहत जये ।।१७८।। शुभ नाटक इंद्र तहां रचियो, मुद ठान फेर नम स्वर्ग गयो। जो परजाको रक्षा करते, सो वर्ण महाक्षत्री धरते ।।१७९।।

गीता छंद

तिन माह चार महान थापे सोम प्रभु हरि जानिये।
राजा अकंपन और कास्यप मंडलीक महानये ।।
तिन माह इक इकको नमे चव सहस नृप सुखकार है।
अभिषेक तिनहुंकौ भयो सो प्रभु हुकम सिरधार है ।।१८०।।
तिन माह सोमप्रभु सुराजा देश कुर जांगल विषै।
तसु पट्टपै कुरु नाम भूपत बंश कुरु ताकौ अषै।
हर नाम भूपति जो कहो तसुवंश हरिशुभ जानिये।
राजा अकंपन नाथ बंसी पुत्र श्रीधर मानिये ।।१८१।।
कास्यप सुनामा राय जानो पुत्र मघवा जासही।
ताकौहि उग्र वंश थापो और नृपति समान ही।
अधिराज पदमें थापियो जो कछ महाकछ नाम है।
सतपुत्र सबहीको दियौ शुभ वस्त्रवाहन ग्राम है ।।१८२।।

चौपाई

ईक्षु दंड रस प्रभु जु बताय, तातैं बंश इक्षाकु कहाय।
आर्यनको जीवनजु उपाय, बतलायौ तातैं मनु थाय ।।१८३।।
कुल थापें तातैं कुलकरा, श्रष्टाश्रष्ट रचनतैं स्वरा।
इत्यादिक नामनितै जान, थुति करतो सुप्रजा सुषमान ।।१८४
इम सुवंश प्रभु थापत भये, राजनके राजा पद लए।

हा मा धिक ये दंड चलाय, जैसो दोष करे सो पाय ॥१८५॥
पुन्य विपाक सु जिन भोगाय, नरसुर सबही सेव कराय ।
तीन जगतपत सेवे चर्न, पुत्र पौत्र संजुत दुख हर्न ॥१८६॥
असठ लाख पूर्व इम गये, राजसु सुख सबही भोगये ।
इम पुन्य उदय थकी जगराज, भोगत भये सकल सुख साज ।१८७।

सवैया

धर्म सदा सुर शिवपद देयसु धर्म सबं सुखकी निधि जानो ।
यह धर्म अनंतगुणाकर है सब पाप निवारक धर्म बखानो ।
मुक्ति वधू प्रिय धर्म यही सुखकारक मात पिता सम मानौ ।
जिन भाषित धर्मसु एम कहो तिसको दिन रैन नमोस्तु जु छानो ॥१८८॥

इति श्री भट्टारक सकलकीर्ति बिरचिते श्रीवृषभनाथ राज्य वर्णनो नाम नवमः सर्गः ॥९॥

—:०:—

अथ दशम सर्गः

मालती छन्द

गणधर मुनि सेव्यं इन्द्र चंद्रादि वंद्यं, निखिल गुण समूहं तीर्थकर्ता वृशेषं । निज कुल हित समुद्रं तासको चन्द्र बिंबं, हन मम भवतापं आदिनाथं नमामि ॥१॥

मोती दाम छन्द

सुनो सब भव्य अबै मन आन, भये प्रभु जेम विराग महान ।
सुधर्म सुरेश कियो सुविचार, प्रभु रचियौ भवमोग मंझार ॥२
उपाय अबै करिए इस थान, जु होय विरक्त लहे शुभ ज्ञान ।
विचार यही शुभ नाटक ठान, बुलाय नीलांजना अप्सर जान ॥३

रही जिस आयु घड़ी द्वय चार, करो तिन नत्य लखे प्रभु सार। सुरत्न सिंहासनपे जिन एम, लसे उदयाचल सूर्य सु जेम ॥४॥ तबै सत पुत्र उमंग धराय, ठये सब राज सभा मधि आय। बजे सु मृदंग द्रुम द्रुम जोर, चले पग मार झनंझन रोर ॥५॥ घनाघन घंट बजे धुन मिष्ट, तहा मुह चंग सुरन्वित पुष्ट। घड़ी छिन पास घड़ी आकाश, लघु छिन दीरघ आदि विलास ॥६॥ ततक्षण ताहि विलय प्रभु देख, भये भवतैं भयभीत विशेष। तबै रस भंग तनो भय धार, सुरेश बनाय दई इक नार।।७॥ पड़ो नहि भंग जुताल मझार, सभा सब जान वही यह नार। तथापि प्रभु सब भेद लखाय, सु भावत बारह भावन भाय ॥८॥

गीता छंद

जिम नृत्यकी जमपुर गई तिम सर्ववस्तु विलाय है।
जिम हस्त नीर खिरे तथा सब आयु भी गल जाय है।
योवन जराकर ग्रसित जानौ वृक्ष छायासम भनो।
वेश्या समानो राजलक्ष्मी तिया भव वल्ली गिनो ॥९॥

जोगीरासा चाल

जो कुछ सुंदर वस्त्र जु दीखत तीन भवनके माही।
काल अगनकर भस्म होयगी नित्य सु कोई नाही।
इन्द्र बड़ो बुधवान जतन यह कीनों सब हितकारी।
कूट जु नाटक मुझ दिखलायो तातै मम बुध भारी ॥१०॥
जब तक आयु सु क्षीण न होवे जरा न आवे भारी।
ज्ञानमंद नहि होय सु जब तक शीघ्र होउ तपधारी।
जगत समस्तहि अथिर जानके रत्नत्रय साधीजे।
नित्य मोक्ष सुख आकर लखकर ताह जतन नित कीजे ॥११॥

॥ इति अनित्य भावना ॥

अशरण भावना

नहि कोई है रक्षक तेरो रोग मृत्यु जब आवं, बन विच व्याघ्र गहे मृग शिशुको तिसको कौन छुड़ावे। मंत्र तंत्र सब विद्या औषध ये सब विरथा होई, जो कुछ कर्म उदयमैं आवै भुगते ये जिय सोई ॥१२॥ सकल अमर जुत इन्द्र जु मिलकर चक्री खेचर सारे, मरते जियको एक क्षणकभी नाह बचावनहारे। रोग क्लेशमधि पण परमेष्ठी तिनको ध्यान करीजे, जिन उपदेशो धर्म तपादिक तेही शरण गहीजे ॥१३॥ मुझको शरणो जिनदीक्षा शुभ वा निर्वाण बखानौ, नित्य सास्वतौ सुखको थानक दुखको नाम न जानो। इस संसार विषैं सुख किंचित मूरखजनको भासे बुद्धवानको केवल दुखदा दुखको अंश न जासे ॥१४॥

संसार भावना

इस जगमें जो सुख मानत है तेही सब दुख पावे,
द्रव्य क्षेत्र अरु काल गिनौ पण परिवर्तन भव भावे।
धी धन ऐसो जान मोह हत जो संसार बढ़ावे,
पांचौं इंद्री तस्कर जानौ इन बसकर शिव जावे ॥१५॥

एकत्व भावना

एकलो पैदा जिय होवे, एकलौ मरत सबै जोवे।
एकलो सुखी दुखी होई, निरोगी रोगी हो सोई ॥१६॥
दरिद्री धनी वही थाई, नरक दुख इकलो भुगताई।
कुटबो साथी नहि कोई, किये भुगते जैसे सोई ॥१७॥
एक ही पुन्यादिक करहै, स्वर्ग सुख भोगे आयु भर है।
एक जिन रत्नत्रय धरिकै, कर्म रिपुको ततक्षिण हरके ॥१८॥
लहे मुकती सुखको सोई, समका बारध है जोई।
भावना एकत्व ही जानौ, सर्व तज आतम चित सानो ॥१९॥

अन्यत्व भावना

जो आतम इस देहतें जी, भिन्न जु यह साक्षात ।
तौ मरणेकौदुख कहाजी, कायसु पर विख्यात सयाने । अब सबममत्व निवार ॥२०॥ माता पिता सब अन्य है जी, अन सब बांधव जान । भार्या पुत्रादिक सबैनो अन्य सकल पहचान सयाने । अब सब ममत्व निवार ॥२१॥ निज आतम है अपनोजी, तीन जगत बिच जोय । जहाँ शरीर अपनो नहोजी तहां अपना न है कोई सयाने । अब सब ममत्व निवार ॥२२॥ ऐसो जानकर सब तजोजी कायादिकको नेह, पृथक पृथक सबको लखोजी, आतममें चित देय सयाने । अब सब ममत्व निवार ॥२३॥

अशुचि भावना (चाल अहो जगतगुरुकी)

सर्व अशुचिको खान सप्तधातुमय जानौ, त्रय जग दुःख निधान तिसमैं क्यों रति ठानो । क्षुधा पिपासा जान रोग अरु कोप गनोजे, येही अग्नि महान तासकर जलत भनीजे ॥२४॥ पांचों इंद्री चोर बसे जहाँ सर्व अनंगा, शत्रु कषाय रहाय कुटी इम काय कुटंगा । यह वपु जिन पोखाय रोग दुर्गति तिन पाई, जिन तपकर सोखाय सोई सुर शिव सुख थाई ॥२५॥

आश्रव भावना

छिद्र सहित जो नाव ताहोमें जल आवे, त्यौं त्रययोग चलाव तातें आश्रव थावे । मिथ्या अव्रत जान अरु कषाय दुखदाई, अरु प्रमाद दुख खान ये पण लख तज भाई ॥२६॥
कर्माश्रव रुक जाय सो संवर सुखकारी गुप्त समित अरु

धर्मजीत परीषह भारी । बारह भावन भाय ये पण भेद कहीजे फुन सत्तावन भेद शास्त्रनतें लख लीजे ॥२७॥ पांचौ इन्द्री रोक अरु शुभ ध्यान करीजे, स्वर्ग मुक्ति सुखकार सो संवर लख लीजे ॥२८॥ इति संवर भावना ।

निर्जरा भावना

लखो निर्जरा भेद इक सविपाक बखानौ, दूजी है अविपाक सुन तिन भेद बखानो ॥२९॥ कर्म जु निज रस देय खिरे सविपाक वही है, सब जीवन के होय सरे कछु काज नहीं है । तप कर कर्म खिपाय सोई अविपाक कहावे, सो मुनवरके होय जासकर शिवथल पावै ॥३०॥ मुक्ति जननि इस जान संवरपूर्वक धारो, नानाविध तप ठान जो सुख ह्वै अनिवारो ।

लोक भावना

लोक अकृत्रिम जान अधोमध ऊरध भेदा, षट द्रव्यन भरपूर नही तसु होय उछेदा ॥३१॥ नीचे सातौ नर्क तहां बहु विध दुख पावे, पाप उदय तहां जाय सुखको लेश न थावे । मध्य लोक सुख दुख पुन्य पाप फल जानौ, कर्म भोग भू माह मनुष तिर्यंच उगानौं ॥३२॥ ऊरधलोक मझार स्वर्गग्रैवक उपजायो, परकी देख विभूति मनमैं बहु दुख पायौ । तिसके ऊपर जान सिद्धसिला सुखदाई, ढाई द्वीप प्रमाण तहां सब सिद्ध बसाई ॥३३॥ इम सब लोक निहार दुखको सागर जोई, जिन तपकर शिव साध सुख अनंत लह सोई ।

बोधदुर्लभ भावना

भव वारधके बीच भ्रमण कियो अधिकाई, चौपथ रत्न लहाय तिम नरदेही पाई ॥३४॥ तिसमैं आरजखंड जनम सुकुल

जो पावै, इंद्रिय पूरण होय आयुवर दीरघ थावें। ये सब मिलनौ कठिन काकताली सम जानौ, सुननौ जिन सिद्धांत फेर निज सुमति बखानो ॥३५॥ सम्यकदर्शन ज्ञान चरण तप चारों येहा, पाये ऐसे जान दरिद्रीकौ निध जेहा। फिर समाधि सुमरण अंतहि दुर्लभ पावे, मोहकर्म कर नाश अचल शिव थान लहावे ॥३६॥ इतने योग सु पाय फेर परमाद जु करहै, विफल जन्म अरु ज्ञान नहीं संजम जो धरि है। जिस समुद्र गिर जाय रत्न अमोलक कोई, फिर पांछे पछताय रतन प्रापत नहि होई ॥३७॥ तिम भवसागर माह बोध रतन जिन खोयो, सो भ्रमयो बहु भांति दुखकौं बीज सु बोयो। ऐसे जान बुधवान तज प्रमाद दुखदाई, तप संजममें यत्न करो जासो शिव थाई ॥३८॥

पायता छन्द (धर्म भावना)

संसार समुद्र से तारे, सौ धर्म ग्रहो सुखकारे।
इंद्रादिक पदवी होवे, फुन मोक्षतनो सुख जोवे ॥३९॥
सो उत्तम धर्म गहीजे, ताकौ अब भेद कहीजे।
उत्तम जो क्षमा बखानौ, मार्दव आर्जव मन आनौ ॥४०॥
फुन सत्य शौच सुखदाई, संयम तप त्याग कहाई।
आकिंचन ब्रह्मचय जानौं, ऐसे दस भेद लखानौ ॥४१॥
इस धर्मतने परभावे, ग्रहदासीसम लक्ष्मी पावें।
फुनि इंद्र चक्रवर्त थाई, तीर्थंकर पद सु लहाई ॥४२॥
शुभ पुत्र कलत्र जु पावे, भोगोपभोग सु लहावे।
जो वस्तु मनोहर देखो, सोई वृष फल तुम पेखौ ॥४३॥

इम वृष फल जान सुबुद्धी, उत्तम क्षमादिक कर ऋद्धी ।
इम भावन बारह भाई, जिनवरके राग उपाई ॥४४॥
देखो सो विषय फंसानौं, बहुकाल वृथाहि गमानौ ।
बिन तप मूढनवत खोयो, नहि धर्म तरफ मैं जोयो ॥४५॥
त्रय ज्ञान पाय क्या कीना, जो मोह शत्रु न हरीना ।
इम चितवन कर जगनाती, छोड़ो सबसे ही साथी ॥४६॥

गीता छन्द

सौधर्म हरि इम लख अवधि तें आज प्रभु विरकत भये ।
तब धनदको आज्ञा करी तुम रचौ गज मन हरखये ।
इतनेहि लौकांतिक सुरों सब आय प्रभु सिर नाईया ।
तिन माह भेद जु आठ जानो है वैराग तिने प्रिया ॥४७॥
सारस्वतादित वह्नि तीजो अरुण नाम सु जानिये ।
फुनि गर्द तोय तुषित जु षष्टम अव्याबाध बखानिये ।
सुर अष्टमो जु अरिष्ट जानौं एक भव धर शिव लहै ।
दीक्षा कल्याणक माह आवे द्वादशांग सु ज्ञान है ॥४८॥
शुभ ध्यान सित लेश्या सबनिके जन्म ब्रह्मचारी सही ।
ते कल्पवृक्षनके कुसुम कर पूजियो सिर धर मही ।
वैराग्यवृद्धि सु करणहारी थुति सकल करते भये ।
प्रभु आपको वैराग लखकर मोह सेना कंपये ॥४९॥
कोडा जु कोडी अष्टदस सागरथकी वृष लय गये ।
सो आप ज्ञान उद्योत सेती होयगो अब फिर नये ।
तुमरो कहो जो मार्ग सुंदर सोई पोत सुहावनौ ।
उसमें सु चढ़करि बहुत भवजिय भवसमुद्र तर जावनौ ॥५०॥

यह मोह अंध सुकूप जानो तासमैं बहु जिय परे ।
सो सर्व पार लहाय है उपदेश रज्जू कर खरे ।
अय जगतको बोधन सुलायक स्वयं बुद्ध तुम हो सही ।
अय ज्ञान जुत तुम जन्म लीनो हम नियोग यहे कही ॥५१॥

अडिल्ल

इम सुर रिषि थुत ठानसु निज थानक गये, फुन सुर चतुरनिकाय सर्व आवत भये । क्षीरसमुद्र जल लाय सु स्नान कराइयो, माला वस्त्राभरण सबै पहराइयौ ॥५२॥ तब ही श्री जिनराय भरतको नृप कियो, बाहुबल जुवराज पदीमैं थापियो । बाको और कुमार नगर सबको दिये, सब कुटुंबसे निस्पृह जिन होते भये ॥५३॥ जसु सुदर्शना नाम पालकी है भली, इंद्र बनाई जास बहुत मन धर रली । मानौ दीक्षा तनी प्रतिज्ञा पर चढ़े, इंद्र हाथकौ पकड़ चढ़े प्रभु मन बढ़े ॥५४॥

नाराच छन्द

सुभूम गोचरी जु राय सप्त पैंड ले चले, खगाधिपा जु सप्त पैंड कंध धारियो भले । पीछे सुरा सुरेस प्रीत धारयौ भले गये, सुरेन्द्र पालकी उठात वया प्रभुत्व वर्णियै ॥५५॥ सु पुष्पबृष्टि शीतवायु बर्षते गन्धोदकं, सुमंगलीक गान गात देव लहि प्रमोदकं । महान भेरि बज रही सु मोह गीत को सहो, अनेक देव अग्रनीक हैं सुनंद वृद्ध हो ॥५६॥ उभय दिशा सुराधिपा चमर करे सु एव हो, सु देव नृत्यको नचे सबै प्रमोद को गही । सुपद्म हाथमें लिये रमा सुरी चले जहां, दिशाकुमार मंगलाष्ट द्रव्य लेयके तहाँ ॥५७॥ इसो उछाह ठानकेसु दुंदभी बजायके, सु श्वेत छत्र शीस धार पालकी बिठायके । प्रभु पुरी सु छोडके गये उद्यानमें सही, प्रजा तने जु सर्व लोक देव मिल कहैं यही ॥५८॥

छप्पै छन्द

सिद्ध होय तुम काज जगतस्वामी तुम नामी, शिवमारग परकाश करोगे अन्तरजामी। हो तुमरो कल्याण जगतको हित तुम करहो, बाह्याभ्यंतर शत्रु जीत शिव थानक वर हो, जयनंदो विरदो सु तुम तीनलोक तारन तरन। तप कर सु नाश वसुकर्मको करहु वेग असरन सरन ॥५६॥ प्रभुको लख बन जात तबै सब नारी धाई, मरुदेव्या जो माय तहाँ बहु रुदन कराई। अग्नि जली जिम बेल होय तिम होय गई है, सब आभूषण छोड शोक दवमाह दही है॥ कंपमान जिम तन सही पड़ो सु भूम मझार है, मूर्छागत लहती भई विह्वल दुख अपार है॥६०॥ मुझ दुरभागनि छोड़ गये बनमांह प्रभुजी, मुझ जीवन किम होय कहो तुम एम प्रभूजी। शोक युक्त इम वाक्य कहै नृप नारी सारी, कूटैं उदर महान करैं आरत अधिकारी। यशस्विनीको आदि दे और सुनंदा जानिये, शोक सकल करती भई, तब मंत्री समझानिये॥६१॥

गीता छन्द

निर्जानंद तब ग्रहकौ गई सब राणियां बुधवान हैं, पुरलोक मंत्री आदि प्रभु पीछे चले गुणखान हैं। सुर पालकी इम ले चले अति दूर नाह नजीक ही, नर सुर सकल दर्शन करत अर वंदते प्रभुको सही॥६२॥ पुर निकट बनमें जायकर बड़तरु तले उतरे सही, तहां पूर्व देवन करो रचना, सुनी धर उर हर्ष ही। एक चंद्रकांत मई सिलापट चंदनादि सुहावनौं, तहाँ रत्नचूर्ण कियो सचो निज कर थको मन भावनौ॥६३॥ तिसकौं रचौ सथिया सुभग मंडप रचौ बहु विध तनौं, फुनि

द्रव्य मंगल केतुमाला कर अलंकृत सोहनो। धूपहि सुगंध थकी दसौंदिस भई आमोदित जहां, सब क्षोम शांत भयौ जबै समता सहित बैठे तहाँ ॥६४॥ सुख दुःख अरु रिपु मित्र सम गिन पूर्व मुख निवसे सही, चेतन अचेतन बाह्य दस विध परिग्रह तज बेगही। अंतर परिग्रह चतुर्दश मिथ्यात आदिक तज दिये, माला वसन भूषण सकल तज मन बच तन सुध किये ॥६५॥ सिद्धन तनी कर वंदना पणमुष्टि लुंचे केश हो, पद्मासनी तिष्टत भये बलवीर्जकी परमित नही। पांचौ महाव्रत पण सुमति धर पंच इंद्री वस करी, फुनि षट अवस्यक धार करके भूम सोवन चित धरी ॥६६ सब वस्त्र त्यागे केश लुंचे स्नान नहि करहै कदा, इकबार दिनमें ले अहार खड़े हुवे प्रभुजी कदा। दांतौन आदिक करें नाही इम अठाइस जानिये, ये मूलगुण धारत भये प्रभु और गुण अधिकानिये ॥६७॥ शुभ चैत्र कृष्णा नवमि जानौं समय संध्या सोहनो, नक्षत्र उत्राषाढ सुंदर धरो तप मन मोहनौ। प्रभु केश लख सुपवित्र हरिने रत्न पटलीमें धरे, सित वस्त्र ढक अति ठान उच्छव क्षीरसागरमें धरे ॥६८॥

पायता छन्द

महतनको आश्रय करई, सो ऊंचो पदवी धरई।
जिम जिन पूजनतें जीवा, ऊचौं पद लहै सदीवा ॥६९॥
तिम केश अपावन थाई, प्रभु तन वस महिमा पाई।
इम जान सकल भव प्राणी, सतसंग करो सुखदानी ॥७०॥
फुनि भूपत चार हजारा, कर भक्ति प्रभूकी लारा।
केवल द्रव्य लिंगी थाये, वस्त्रादिक सर्व तजाये ॥७१॥

जिनके कच्छादिक नामा, सब स्वामि धर्मके धामा ।
तिन दीक्षा रीत न जानी, प्रभु रज्जनको चित ठानी ॥७२॥

पद्धड़ी छंद

जब देव सबै मिलकर महान, इस विधसे थुत तुमरी बखान। अन्तर बाहर मल रहत जान, तुम ही जिनवर सब गुण निधान ॥७३॥ जो चार ज्ञान संयुत गणेश, सो तुमरे सब गुण न भणेश । अब हम सरिखे गुण किम उचार, तुम भक्ति सुप्रेरत बारबार ॥७४॥ तातैं कछु कहूं अबै बनाय, तुम ही जिनवर कर हो सहाय । तुम आदि तीर्थकर्ता महान, फुनि आदि धर्म उपदेश दान ॥७५॥ तुम चंचल लक्ष्मी नृप तजाय, तप लक्ष्मीकौं ग्रहके सुभाय । तब वीतरागता कहां रहाय, हमरे जानें लोभी अघाय ॥७६॥ कांताको तन अपवित्र जोय, तज राज तबै वैराग्य होय । मुक्ति स्त्रीसे कोनो सुराग, तुमको कैसे कहिये विराग ॥७७॥ पाषाण जातके रत्नजेह, तिनसे तुमने तजियो सनेह । सम्यग्दर्शन आदिक महान, ते रत्न ग्रहे किम लोभ ठान ॥७८॥ हेयोपादेय सबै लखाय, जो त्यागन जोग तिसे तजाय । जो ग्रहण योग्य ताको ग्रहाय, समदर्शी पण क्योंकर कहाय ॥७९॥ जो पराधीन तुछ सुख छोड़, स्वाधीन सुखकी तरफ दौड़ । तुमको विरक्त क्योंकर कहाय, तुमतौ तृष्णा परणी अघाय ॥८०॥ तुम बाह्य असन सब ही तजाय, स्वानम ध्यानामृतको पिबाय, तुम्हरे प्रोषध व्रत कहाँ रहाय, यह बात तुमे चहिये सुनाय ॥८१॥ तुम अल्प बंधुकौ तजन कीन, सारे जगत को बांधव जु चीन । फुन तीन जगत ईश्वर जु थाय, फिर बंधु त्याग क्यों कर

कराय ।।८२।। जो कर्मरूप वैरी अघाय, फुनि कामदेव इंद्री कषाय। इनको हत करके विजय लोन, किम दयावंत भाखे प्रवीन ।।८३।। निधि कल्पवृक्ष चितामणादि, ये पर उपकार करे अनादि। तुम निज परके उपकार धार, तुमरी सादृश नहि को निहार ।।८४।।

शिखरणी छन्द

नमस्तुभ्यंस्वामी सकल जगके हो गुणनिधी तपश्री धारंता मुकत तियके वांछकि तुमी, स्वकाया रागादि तजन करके त्वं द्रग चहो। नमस्ते निग्रंथा तप घन जु तात्वं जगपती ।।८५।।

चौपाई

नमो महात्मा तुमको सार, तुम नवीन दीक्षा ली धार ।
मोक्ष दीपके सारथवाह, तीनलोकके बन्धव थाय ।।८६।।
परणामाविक थुत बहु करी, सुर गतिको फल ले तिह धरी ।
नागलोकको जाते भये, हरि तुम गुण चिंतत हर्षये ।।८७।।
भरतराय प्रभु पूजन ठान, भक्ति राग बस नमन करान ।
जिन बंधुनने दीक्षा लही, तिनको तज घर चाले सही ।।८८।।
बाहुबलि आदिक जो भ्रात, और बंधु जुत निजपुर आत ।
ऐसे त्रिजगतगुरु गुणगणखान, कर्म अरि विध्वंशक जान ।।८९

सवैया

जेष्ट गुणाकर जेष्ट जिनेश्वर जेष्ट महंत सु नाम कहाये ।
तो सम जेष्ट नहीं कोई और जु मारग मोक्ष तनो बतलाये ।
वांछित दायक जेष्ट तुमी तुमरो जस उज्वल देवनि गाये ।
मैं मन धारत जेष्ट तुमे दिनरात हमें अब जेष्ट कराये ।।९०

इति श्री भट्टारक सकलकीर्तिविरचिते श्रीवृषभनाथचरित्रे
आदिनाथदीक्षाकल्याणकनाम दशमः सर्गः ।।१०।।

—:०:—

अथ ग्यारह सर्गः

दोहा–आदि तीर्थ कर्तार है, आपहि दीक्षा लेय ।
मोक्षमार्गके अग्रणी, बंदौं निज गुण देय ॥१॥

पद्धड़ी छंद

अब देव धरो षट् मास जोग, अनसन तप धारो अति मनोग । जो शिला पद अति कठिन जान, तिस ऊपर ठाडे धरे ध्यान ॥२॥ चव अंगुल पद अन्तर सु धार, थिर वज्र जेम तन देह डार । मन वचन काय निज शुद्ध ठान, भगवतने इम धारौ सु ध्यान ॥३॥ निज आतम रत एव थाय, अरु दोनों भुज दीनो लुवाव । निष्कंप सुमेर समान जान, प्रभु कायोत्सर्ग धरो महान ॥४॥ बाह्याभ्यंतर शुधिके प्रभाव, मन पर्यय ज्ञान तुरत लहाव । तिस ज्ञान थकी सूक्ष्म जु वरुक्त, ते जानत भये प्रभु समस्त ॥५॥ बाईस परिषह उदय आय, तिन सबको जीतत धीर्य लाय । इम प्रभु तो नाशा दृष्टि ठान, अब और मुनौंको सुन बखान ॥६॥ सब क्षुधा तृषा पीड़ित जु होय, सबके अंग सूक गए बहोय । द्वय मास कष्टसे इम बिताय, आपस माही तब इम कहाय ॥७॥ प्रभुकौ धीरज देखो महान, थिरता उपमा कर रहत जान । जंघा बल साहस अपर जोय, गिरराज समानो अचल होय ॥८॥ ये तीन जगतको राज छोर, इस बनमें किम कर है बहोर । कितनेक दिवस यहाँ थिर रहाय, ये बात न निश्च होत भाय ॥९॥ अब क्षुधा तृषा आदिक महान,

हमको जो होवे दुख दान। तिन सहते हम समरथ जु नाह,
तातैं कंदमूल सबै जु खाइ ॥१०॥ जब तक जग गुरु हैं
ध्यान लीन, प्राणन रक्षा कर है प्रवीन। इनकी बराबरी
करे जोय, तो प्राण हमारे जाय सोय॥११॥ इनको तजकर
निज घरसु जाय, तौ भरत हमें निग्रह कराय। जब तक
प्रभु पूरण योग माय, तब तक इन निकट रहो सदाय ॥१२॥
सुख होवे चाहे दुख होय, प्रभुको त्यागेंगे नाह सोय। कितने
दिन अरु बीते सु भाय, क्षुधा तृषा अगनकर विकल थाय
॥१३॥ केई गुरुसे पूछन कराय, केई नमस्कार करके सुजाय।
बन बीच जाय इच्छा प्रमाण, सो खात भए फल अत
अज्ञान ॥१४॥ तिन नग्ननको बनफल जु खात, तब बन
सुर लखकर इम कहात। रे जड़ तुम सब सुन चित लगाय
ये भेष जगतकर पूज्य थाय ॥१५॥ तीर्थंकर चक्री आदि
जोय, वे ग्रहण करै इह लिंग सोय। कायर जन नहि धारण
कराय, तुम ऐसे कुकरम करो नाह ॥१६॥ जो जीवनको हिंसा
करेय, सो नर्क सातमो शीघ्र लेय। जो ह्वै ग्रहस्थ अघ कर्म
ठान, सो मुनपद धारण तैह तान ॥१७॥ जो मुनि ह्वै कर
अघ करत कोय, सो वज्रलेपवत् जान लोय। तातै जिन-
मुद्रा तज करंत, तुम और भेख अब ही गहंत॥१८॥ नातर
सबको मारूं सु एम, इम बच सुनकर भय धार तेम। नाना-
विध भेषनकौं ग्रहाय, करनो नाकरनो नहि लखाय ॥१६॥

पायता छन्द

केई बक्कल धार अज्ञानी, केई कोपीन धरानी।
केई जटाधारी अति भारी, केई तीक्षण शस्त्र सु धारी॥२०

केई परिव्राजक थाये, पाखंडि कुमारग धाये ।
ते फूल फलनको खावे, वृषभेष चरणको ध्यावें ।।२१।।
जिनराज पौत्र जो थाई, मारीच सु नाम कहाई ।
सन्यासी मत तिन धारो, मिथ्यात कियो विस्तारो ।।२२।।
तिन योगशास्त्र सु बनायो, कांपिल्य नाम तसु गायो ।
तिसकर बहु जीव ठगाये, दृगज्ञान परान्मुख थाये ।।२३।।
इम हुवे सुभ्रष्टाचारी, अब सुन प्रभुकी विध सारी ।
निष्कंप मेरुवत जाने, अक्षोभ समुद्र समाने ।।२४।।
निःसंग वायुवत स्वामी, निर्मल जलवत अभिरामी ।
पृथ्वीसम क्षमा धरते, असि दीप्तवान भगवंते ।।२५।।
मस्तक पर केश जु सोहै, मनु ध्यान अग्नि कर जोहै ।
अघ भस्म भयो दुखदाई, ताकी मानु धूम उड़ाई ।।२६।।
तिन योग महात्म बसाये, फल फूल सबै उपजाये ।
सब ऋतुके बृक्ष फलाई, मुन नमन करे सिर नाई ।।२७।।
हरि व्याघ्र मृगादिक प्राणी, फणपत अरु नकुल बखानों ।
सब साम्यभाव उपजाए, निज जात विरोध नसाए ।।२८।।
अहि व्याघ्र सिंह मृग जे हैं, नमकर सुभक्ति करे हैं ।
बन हस्ती कमल चढ़ावे, फुनि जिनवरको सिर नावें ।।२९।।
नमि बिनमि सुरराज कुमारा, कछ महाकछ सुत सारा ।
ते आप नए सिरसेती, प्रभु चरणांबुज हित हेती ।।३०।।
द्वय हाथ जोड़ सुखदाई, जिनवरसे अर्ज कराई ।
तुम सबको राज्य सु दोना, फुन हमको किन बिनरीना ।।३१।।
अब कृपा करो तुम स्वामी, कोई देश देहु जगनामी ।
दोनों पसवाड़े ठाढे, अति सेव करें मन बाढे ।।३२।।

प्रभु ध्यान महातम बताई, धर्णेन्द्रासन कंपाई ।
तिन अवधज्ञान कर जाना, उपसर्ग भयो भगवाना ॥३३॥
पृथ्वीको भेद तबै ही, जिन निकट सु आय जबै ही ।
गिर मेरु समानो धीरा, ध्यानामृत पी बन वीरा ॥३४॥
ऐसे जिन देखनमाई, थुत भक्ति करत उमगाई ।
तब वृद्ध सुभेश धरायो, उन कुमरनको समझायो ॥३५॥
तुम तरुण अवस्था मांही, मांगो सब लाज गमाही ।
प्रभुने सब ऋद्ध तजाई, निज आतमसों लवलाई ॥३६॥
तुम भरतरायपे जावो, उनसे मनवांछित फल पावो ।
इन इन्द्रियको बस कीनों, बनबासी ह्वं तप लीनौ ॥३७॥
माँगत है उस नरसेती, जो भोगे भोग हित हेती ।
तुम मूरखता इम गहोहो, आकाश पुष्प किम लहोहो ॥३८॥

चौपाई

इम सुनकर ते राजकुमार, वृद्ध प्रतेन्द्र इम वचन उचार ।
लोकविषें यह कहते सार, वृद्धपने नहि बुद्ध लगार ॥३९॥
दो जन बातें करते होय, तीजौ बोले मूरख सोय ।
फलदा कल्पद्रुमहि विहाय, और वृक्ष सेवे क्यों जाय ॥४०॥
अन्तर भर्तरु प्रभुमे इतौ, गो पद अरु सागरमें जितौ ।
जिम चातक घनसे तृप्ताय, नदियनसे नही तृषा बुझाय ॥४१
अहो वृद्ध तुम समझौ यही, हमतौ प्रभुसे लेंगे सही ।
फरणपत इम सुनकर मुद भयो, दिव्यरूप निज दिखलाइयो ॥४२
मुझकों तुम धरणेन्द्र सु जान, भगवत भक्ति थकी इम आन ।
जिनवरने जब दीक्षा लीन, तब मुझसे सबही कह दीन ॥४३
तातें करूं तुमे भूनाथ, चलो अबै तुम मेरे साथ ।

इम सुनकर वह हर्षित भये, फिर फणपतसे इम पूछये ।।४४
सत्य कहो अहिपत तुम येह, प्रभुने कहो कि नाही तेह।
प्रभु आज्ञा बिन लेह न राज, सर्व संपदा हम किह काज ।।४५
असुरपतीने तब इम चयो, प्रभूने मुझसे सब कह दियो ।
फुन तीनों जिनवरको नये, बैठ विमानसु चलते भये ।।४६।।
बिजयारधको देखो जबै, नागराज शोभा कह तबै ।
राजकुमार इम महिमा सबै, पश्चिम योजन उन्मत कबै ।।४७
चौथाई भू माह बखान, नव सिरकूट महा दुतवान ।
पृथ्वीमें चौड़ाई जान, पंचस योजन है जु महान ।।४८।।
पूर्वकूट मध्य है जिन धाम, सोभा वरनी जाय न ताम ।
पृथ्वीसे दश योजन जाय, विद्याधर द्वै श्रेणी थाय ।।४९।।
तहां इकसौ दस नगरी जान, तिन विस्तार सुनो मन ठान।
नव योजन पूर्वापर कहो, द्वादश दक्षण उत्तर गहो ।।५०।।
नगरी छोटे जोजन जान, पर्वत योजन दीर्घ बखान ।
चतुपथ एकसहस मन धार, गलियां बारह सहस विचार ।।५१
एक हजार द्वार है जहां, पणसत खिड़की अति सुख लहा।
तीन खातका जलकर भरे, ऊँचो कोट ध्वजा फरहरे ।।५२।।
केतु हाथ कर पुर सुखदाय, देवतनको सु बुलावत भाय ।
दक्षिण श्रेणी नगर पचास, उत्तर साठ जान सुखरास ।।५३
पूर्वापर समुद्र तक कहो, दक्षण उत्तर तीस जु रहो ।
खेचर जहाँ रहे सुख पाय, मुनि चारणजु बिहार कराय ।।५४
योजन दस ऊपर जाइये, तहाँ द्वै श्रेणी अरु भाइये ।
दस दस योजनको विस्तार, बिंतर देव बसे तहां सार ।।५५।।

दस योजन चौड़ो तहाँ जान, ताके ऊपर कूट महान ।
स्वर्ग लक्ष तज देव सु श्राय, रमहैं तिसकौं किम वर्णाय ॥५६
इम बरनन कर फुन नागेस, पुरमाही कीनो परवेश ।
चक्र बाल रथनूपुर दोय, राजधानि यह दीनो सोय ॥५७॥
दक्षरण श्रेणीको नमिराय, उत्तर श्रेणी बिनम बताय ।
सिहांसनपर इन थापियौ, फुन श्रभिषेकसु इनको कियौ ॥५८
इपसौ दस नगरीकौ राज, देकर श्रहपित गयो सु साज ।
विद्याधरियोके संग भोग, भोगत भये पुन्य संजोग ॥५६॥
देखो कित जिनवर बिन राग, कित धर्णेद्रसु श्रागम सार ।
किम बिजयारध राज लहाय, सब सामग्री दुल्लभ थाय ॥६०॥
इसमें कोई श्रचंभो नाह, पुन्य उदयकर सब सुख पांह ।
सुन्दर भूषरण वस्त्र मनोग, स्वर्ग थान सम भोगे भोग ॥६१॥
प्रभुकौ योग सु पूरण भयौ, षट् महिने जो धारण कियो ।
धर्मशुल्क शुभ ध्यान कराय, तत्व चिंतवन करत सुभाय ॥६२
प्रभु धीरज वैसो ही थाय, क्षुधा त्रसाकर नाह चलाय ।
तौफुन मार्ग चलावन काज, असन निमित्त उद्यम करताज ॥६३
पुर ग्रामादिकमें जित जाय, तहाँहो सब जन नमन कराय ।
के इक लावे रतन जु सार, बाहन वस्त्र बहुत परकार ॥६४॥
केइक भोजन थार भराय, लाकर प्रभुको भेट कराय ।
इम छह महीना श्रौरजु भये, मौन सहित प्रभु भ्रमते रहे ॥६५
एक बरस न श्रहार कराय, तौ भो धीरज श्रधिक धराय ।
बहु देशनमैं करत बिहार, कुर जांगल शुभ देशसु सार ॥६६॥
तामध्य हस्तनागपुर जान, ता बनमें श्राये श्रपराह्न ।

निस माही योगासन दियो, बपुको नेह सबै त्यागियो ॥६७॥
तिसपुरको राजा धीमान्, कुर वंसिनमें भानु समान।
सोमप्रभु तिस नामसु जान, पुन्य कर्मकर्ता गुणखान॥६८॥

गीता छंद

धनदेव चर प्रथमहि कहो, सर्वार्थसिद्धि सिद्ध हिमें गयौ।
तहांतें सुचय श्रेयांस नामा सोमप्रभू भाई भयौ॥
सो रात्रि पश्चिम के विषें सुपने इसे देखत भयौ।
निज गृह विषें परवेश करतौ मेरु पर्वत लखलयौ॥६९॥
फुनि कल्पवृक्ष लखो जु शाखा भूषणनकर सहित हैं।
फुनि सिंघ वृषभ जु चन्द्र सूरज समुद्र कल्लोले सहैं॥
व्यंतर निहार, जु अष्ट मंगल द्रव्य भी देखत भयो।
इम स्वप्न लेख श्रेयांसराजा श्रेयकर जागत भयो॥७०॥
हर्षाय मनसु राय उठकर जेष्ट भ्राता से कहो।
नृपने पुरोहितसे जु पूछौ सो जु इम कहतौ भयौ॥
तुम मेरु देखौ जा थकी जो स्वर्णगिर समधो रहैं।
जिस मेरु पर अभिषेक हुवो आय वह तुम तीरहै॥७१॥
फिर कल्पवृक्षादिक सुपन जो देखियो तुमने सही।
ये उन महातमको जू सूचे जो पुरुष आवे यही॥
जिनकी जगत विख्यात कोरत सकल गुण धारक वही।
इम सुन नृपति अतिमुदित होकर ध्यान प्रभुको करतहो॥७२

चाल विजयानी सेठकी

अब जिनवर जीतन थितके कारण सही कियो गमन सु जो,
चार हस्त लखके मही मध्याह्न सु जी जुत बैराग संबेगही।

हथनापुरजी तिन देखत जियपुर बही ।।७३।। कोलाहलजी होत भयो पृथ्वी विषें, केई नर जी तास कथाको ही अखें, केई नमत सु जो । भक्ति सहित सज्जन सबै प्रभु चलत सु जी, निरखत मारगको तबै ।।७४।। नहि शीघ्र सुजी नोति विलंब लगावते । धनपतग्रहजी, दारिद्रो सम भावते राजाग्रहजी, पहुंचे आतम चितारके । सिद्धार्थ सुजी, द्वारपाल मुद धारके ।।७५।। नृपसे ती जी जाय अरज कीनी सही, जुग भ्राताजी बैठे थे सुख की मही । तुम पुनतें जो श्री जिनवर आये यहां, तिस बच सुनजो, मोद अधिक सव जन लहा ।।७६।। अन्त पुरजो लेय संग नरपत गयौ गुर सन्मुख जी, भक्तिसहित निज सर नयो फुन अस्तुतजी । करत भयौ प्रभू की तहां शिव चाहतजा, सो भावि तुम सरणौं लहा ।।७७।। नृप ततक्षिण ही रूप जिनेश्वर लखनबें, पहलो भवजी । श्रीमति आदिक लखतबें सब जानसुजी । दानतनी विध पूर्व ही तिष्ट तिष्ट सुजी, अन्न सुजल शुद्धि है सही ।।७८।। उच्च स्थलजी, बैठायो पग धोइयो, सिरसे नमजी, पूज करी मन शुद्ध कियो : बच काय सुजी, दान वस्तु शुध थाय ही । इम नवधाजो, भक्तिथकी नृप पुन लही ।।७९।।

चौपाई

श्रद्धा शक्ति भक्ति विज्ञान, त्याग क्षिमा अलुबधता जान ।
दाता तणे सप्त गुण एम, सो नरपति धारे करि प्रेम ।।८०
पोततुल्य ये पात्र महान, सबके हितकारक पहचान ।
लख उत्कृष्ट जिनेश्वर सही, निधवत दुर्लभ मानी तही ।।८१

प्रासुक दोष रहित आहार, इक्षु जु रस दियो सुखकार ।
सोमप्रभलक्ष्मीमति नार, अरु श्रेयांस भ्राता मनहार ॥८२॥
इन सब मिलकर दीनौ दान, तीज शुक्ल वैसाख पिछान ।
तास पुण्यतें सुरगण आय, पंचाश्चर्य किये सुखदाय ॥८३॥
अब तिनको सुन भेद महान, मणिधारा नभसे वर्षान ।
पुष्पवृष्टि तरु कल्पसु करें, गंधोदक वर्षा अनुसरें ॥८४॥
मंद सुगंध पवन शुभ बहे, दाता पात्र धन्न इम कहे ।
तास दान अनुमोद बसाय, बहु विध पुन्य लोक उपजाय ॥८५
केई रत्नन चूर्ण कराय, ग्रह आंगनमें चौक पुराय ।
पात्रदानको फल साक्षात, लखकर दान सुयत्न करात ॥८६
और दान फल सुन सुखदाय, भोगभूमि स्वर्गादिक जाय ।
रागद्वेषको कर परहार, पाणिपात्र जो लेय आहार ॥८७॥
धर्म सिद्धके हेत बखान, काय स्थितके कारण जान ।
इम भगवान असन ले सोय, जात भये बनको तब जोय ॥८८
ध्यानाध्ययन सु करते भये, विरकत भाव सुनत वर्धये ।
नृप श्रेयांस लह्यो आनंद, निज कृतार्थता लख सुख कंद ॥८९
दान तनी महिमा बहु भई, लोकत्रयमें फली सही ।
भरतादिक नृप अचरज धार, तासु मिलने आये सार ॥९०
कहत भये बहु थुत इम सही, दान तीर्थकर्ता है तुही ।
भगवत तौ मौनी अधिकाय, तुम तिन भेदसु क्यौं कर पाय ॥९१
तुम सुदान विध कहां, देखियौ, भरतरायने इम पूछियो ।
तब श्रेयांस नृप कहते भये, हम निज पूरब भव लख लये ॥९२
पूर्व विदेह जाय सुख खान, वज्रजंघ राजा गुणथान ।

शोभावान जीव तुम जान, मैं श्रीमती नार तसु मान ।।९३
चक्रवर्तिकी पुत्री कही, तहां चारणमुनि पेखे सही ।
मुनि निज परहितकारक सार, हम दोनौ तिन दियौ अहार ।।९४
दानतनी जो विध सुखदाय, प्रभु देखत हम याद लहाय ।
सुन नृपराज कहूं मैं सोय, दान रीत तसु फल अब लोय ।।९५
निज परकौ हितकारक जोय, दयाहेत दीजे मुद होय ।
तास भेद हैं चार प्रकार, औषध ज्ञान अभय आहार ।।९६
अन्नदानसे लक्ष्मी पाय, भोगभूम स्वर्गादिक थाय ।
औषध दानसे रोग न लहे, सुन्दर काय सदा ही रहे ।।९७
ज्ञानदानसे सब श्रुत जान, अनुक्रम पावे केवलज्ञान ।
दान वसतिकाको जो करे, ऊंचे महलनको सो बरे ।।९८।।
यह गृहस्थ शुभ दान पसाय, दोनौ लोक विषय सुख पाय ।
जो नर कबहू दान न देय, पत्थर नाव समान गिनेय ।।९९
अब सुन तीन पात्र व्याख्यान, जिमश्री जिनवरने सु कहान ।
सकल परिग्रह रहित जु होय, रत्नत्रय तप संयुत सोय ।।१००
हेम और पाषाण समान, लाभ अलाभ विषैं सम जान ।
सकल भव्य हितकारक लसे, जीत कषाया इन्द्री कसे ।।१०१
ऐसे उत्तम पात्र जु कहे, मुनी दिगम्बर ते सरदहे ।
जिन श्रावकको शुद्ध आचार, दर्शन ज्ञान अणुव्रत धार ।।१०२
भगवत भक्ति हृदयमें धरे, ते मध्यम पात्रहि अनुसरे ।
जो समदृष्टि व्रतकर हीन, जिनवर भक्ति सदा चित लीन ।।१०३
गुरु निर्ग्रन्थ तनी खर सेव, तेही पात्र जघन्य कहेव ।
अब कुपात्रको वर्णन सुनौ, जैसो जिन शासनमें भनो ।।१०४

दोहा—सम्यग्दर्शन कर रहित, व्रत जिन भाषित ठान ।
उत्तम मध्यम जघन त्रय, भेद कुपात्र बखान ॥१०५॥
जिन वचकी सरधा नहीं, व्रत धारे न लगार ।
शील रहित जे जग विषै, सो अपात्र निरधार ॥१०६

पद्धड़ी छन्द

सो दान कुपात्रहिके प्रभाय, कुत्सित जु भोग भूकौ लहाय ।
कुल नीच होय लक्ष्मी लहाय, अब भेद अपात्रनकौ सुनाय ॥१०७
जिम मेघ तनौ जल भूमि माह, पड़ते ही नाना स्वाद थाह ।
जिम नेक खटाईके प्रभाय, मन मोदन दुग्ध सबै फटाय ।
तैसे अपात्रको करे दान, सो दाता दुख पावे महान ॥१०८॥
जो इक्षु स्वाद मीठो लहाय, अरु नीबमाह कड़वो बताय ॥१०९
तैसे ही पात्र कुपात्र जान, तसु दान सुविध्र फलकी फलान ।
इम जान कुपात्रादिक तजाय, विध पूर्वक दान सुपात्र
चाय ॥११०॥

चौपाई

इम वाणी सुनकर भरतेश, दान भावना धार विशेष ।
श्री श्रेयांसकी थुति बहु करी, निजपुर जात भयो मुद धरी ॥१११
अब प्रभु तप संजम बहु भाय, रक्षा करे जीव षटकाय ।
मन बच काय करे शुद्ध सोय, प्रथम महाव्रत धारक होय ॥११२
सब व्रत तनौ मूल यह कहो, नाम अहिंसा तसु सरदहो ।
मौन सहित जिनवर है सदा, द्वितीय सत्यव्रत उत्तम बदा ॥११३
किसी वस्तुकी इच्छा नाह, तातैं चोरी रहित कहाय ।
कायादिकसे विरकत जोय, उत्तम ब्रह्मचर्य जो होय ॥११४

द्रव्यादिककौ ममत नसाय, तातै परिग्रह त्याग कहाय।
ऐसे पंच महाव्रत कहे, पंच पंच भावन सरदहे ॥११५॥
इन बिरतनकी रक्षा काज, तिनकौ वर्णन सुनौ जो आज।
वचन गुप्ति मन गुप्ति सुजान, ईर्यासमित तृतिय पहचान ॥११६
अरु नादन निक्षेपण सही, भोजन पान दृष्ट लख गही।
ये पण भावन नित्य विचार, व्रत अहिंसाकी सुखकार ॥११७
क्रोध लोभ भयको कर त्याग, हास्य विषैं भी तज अनुराग।
सूत्र विरुद्ध वचनकौ तजो, पण भावन सत्य व्रतको भजो ॥११८
सूना घर विमोचना वास, जहां कोई रोके रहे न तास।
भिक्षाकी जु शुद्धता धरे, धरमीसौं नहिं वाद जु करे ॥११९
ये अचौर्य व्रतकी भावना, पाले सो पावे सुख घना।
नारी राग कथा न सुनाय, तास रूप रुचकर न लखाय ॥१२०
पहले नाना भोग भुगाय, तिनकौ अब नहि याद कराय।
बलकारी भोजन नहीं खाय, निज तनकौं संस्कार न थाय ॥१२१
ब्रह्मचर्यकीइम भावना, पंच पाल मन सुख पावना।
पंच इन्द्रीके विषय जु कहे, जो मनोग्य अमनोग्य सु लहे ॥१२२
बाह्याभ्यंतर परिग्रह जान, त्रस्तु सचित्ताचित्त बखान।
इनमें राग द्वेष कर त्याग, पंच भावना धर बड़ भाग ॥१२३
सोरठा—भावन ये पच्चीस, पंचव्रतनकी जानिए।
ते पालत जगदीश भाव विशुद्ध बढ़ायके ॥१२४॥
ईर्या समित धराय, वन अथवा पर्वत विषैं।
जहां रवि अस्त जु थाय, तहां प्रभु तिष्टे सिंहवत ॥१२५

भाषा समित महान, मौन धरे जिनवर सदा सुमति एषणा-वान। उपवासादिक बहु करै ॥१२६॥ सुमति जु चौथी जान सो आदान निक्षेप है, सो महान गुणखान धरे उठावे देखके ॥१२७॥ प्रतिष्ठापना नाम सुमति पंचमी जानियो मल मूत्रकौ काम। जीव रहित भूबिच करे ॥१२८॥

भुजंगी छन्द

मनोगुप्त पाले सदा आतम ध्यावे, वचनगुप्ति धारे सुमौनी सदा वे। गहे कायगुप्ति सुव्युत्सर्ग धारे, सु तेरह प्रकारं चरित्रं संभारे ॥१२६॥ जु सामायिकं भी करे तीन कालं सरब जीवपै धार समता विशालम्। रहे निःप्रमादी नहीं कोई दोषा, सुछेदोपथापन नहीं होय पोखा ॥१३०॥ विशुद्धी जु परिहार तीनो चरित्रा, जु सूक्षम कषायें सु चौथो पवित्रा। यथाख्यात चारित्र पंचम सुजानौ, सुक्षायक दरस ग्यान युक्ता प्रमाणौ ॥१३१॥ प्रभु द्वदशं भेद तपकी कराई, करमहान कारन सुथिरता धराई। वरष एक ताई तथा छै महीना, करे व्रत उत्तम रहे ध्यान लीना, ॥१३२॥ सु बत्तीस ग्रासा पुरुषके कहे हैं, सु ले पूर्ण नाही सुकमती गहे हैं। तथा एक दो ग्रास लेवे जिनेशा, ऊनोदरं तप करे ये हमेशा ॥१३३॥ करें अटपटी आखड़ी स्वामि ऐसी, मिले आज बनमें तथा रीति वैसी। रजतके जु वर्तन दरिद्रीके घर में, जु हो खीर खांडादि भोजन सुकरमें ॥१३४॥ तथा एक घरमाह ही आज जावै, मिले नाहि भोजन तो बनको सिधावे। तथा

राय घर होय कोदूको भोजन, तबै हम सुलें होय मिट्टीके बरतन ॥१३५॥ यहे व्रत परिसंख्यान नामा धरावे, परित्याग रसकौं सुनित ही करावे। जु पंचाक्ष शत्रूनको नाश करै हैं, सु आचाम्ल वर्धन तपो रीतिधरै है ॥१३६॥ सु पर्वत गुफा बन विषै ध्यान धरंते, विविक्त शयनासनं तप विविक्त करंते। सदा शीत ग्रीष्म जु वर्षादि माही, परीषह सहते जु द्वाविंश ताही ॥१३७॥ तप काय क्लेशं सदा ही करंते, सु वाहिज तपाषट विधी इम धरंते। तपाभ्यन्तरा षट सुकर्ते सदा ही, सुनो भेद ताकौ सुह्वँके मुदा ही ॥१३८॥

सुन्दरी छन्द

तप सु प्रायश्चितकी विध है यही, होय दोष तबै लेवे सही।
निरतिचार प्रभू रहते सदा, प्रथम तप इम करते हैं मुदा ॥१३६
दर्शन ज्ञान चरित्र बखानिए, पुनि सु इनके धारक जानिए।
विनय भेद कहे इम चार हैं, जगगुरु किम विनय सुधार हैं ॥१४०
तप सुतोजौ वैयावृत कहो, धरम मार्ग चलावन इन गहौ।
जगत जेष्ट प्रभु सुखदाय है, काहि वैय्यावृत्य कराय है ।१४१
चतुर ज्ञान धरे प्रभुजी सही, जगत वस्तु सुजानत शुद्ध लही।
अंग पूर्वादिक सब जानते मन सुरोक बचन बखानते ॥१४२
ममत देह तनो सब त्यागके, मेरु सम थिरता चित पागके।
तप सु कायोत्सर्ग करे महा, दो घड़ी षटमास तनौ कहा ॥१४३
ध्यान तपके चार सुभेद हैं, आर्तरौद्र प्रभूने त्याग हैं।
धर्म ध्यान सु चार प्रकार हैं, जास धारते हों भवपार हैं ॥१४४

विचय आज्ञा प्रथमसु जानिये, अरु अपाय विपाक बखानिये ।।
विचय संस्थान जु चौथो कहौ, धर्म शुल्क प्रभु ध्यावत रहौ ।।१४५।। तप सु द्वादश इम करते भये, सहस वर्ष इस विध सो गये । बन तथा ग्रामादिकके नखे कर विहार सुपुर अटवी विषै ।।१४६।। शिथिल कर्म किये प्रभु ध्यानतैं जीत इंद्री धीरजवानतैं । नहिं प्रमाद धरे चितमें कदा, सकल भय वर्जित नित ह्वै मुदा ।।१४७।। पुरमिताल तने बन आइयो, बट सु वृक्ष तले थिर ताइयो । पूर्व मुख सिल ऊपर होयके, पद्म आसन धर अघ खोयके ।।१४८।। करम रिपुकौ जीतन उमगियौ, ध्यान सिद्धनकौ प्रभुजी कियौ । अष्टगुन तिनके मन ध्यावते, भावना शुभ द्वादश भावते ।।१४९।। जो वैराग्य तनी जननी कही, फुनि संवेग सुधर्म क्षमा दही । भेद दस तिसके मनमैं गहे, धरम ध्यान धरे चव भेद हैं ।।१५०।।

चौपाई

अनंतानुबंधीकी चार, सो कषाय दुर्जय अधिकार
अर मिथ्यात्व मोहनी जान, मिथ्या सम्यग् द्वितिय बखान ।।१५१
अरु सम्यक्त मोहनी कही, नर्क तिर्यगायु लख सही ।
देव आयु इम दस ये भई, इन सबको प्रभु उछेदई ।।१५२।।
चौथेसे सप्तम गुणथान, मध इन प्रकृतनकी करि हान ।
क्षपक श्रेणीपर चढ़कै सार, रत्नत्रय आयुध कर धार ।।१५३
नवम गुणस्थानकमें जेह, नाश करी प्रकटे सुन तेह ।
स्थान ग्रद्धि निद्रा दुखदाय, प्रचला प्रचला द्वितिय बताय ।।१५४

निद्रा निद्रा तीजी जान, नर्कगती तिर्यंच बखान ।
एकेन्द्री द्वेइन्द्री जोय, तेइन्द्री चौइन्द्री सोय ॥१५५॥
तिर्यग नर्क सु दोनों येह, इन गत्यानुपूरबी तेह ।
थावर अरु उद्योत जु कही, सूक्षम साधारण सरदही ॥१५६
अरु आताप हनी जगदीश, इस बिध सोलह प्रकृति भणीस ।
प्रथम भागमें ये प्रभु हनी, ध्यान शुकल असि ले ततखिनो ॥१५७
चार अप्रत्याख्यान कषाय, प्रत्याख्यानी चव दुखदाय ।
दुतिय भागमें इनकौ हान, नार नपुंमक तीजे जान ॥१५८॥
चौथे षट्हास्यादि कषाय, पंचममें यूं वेदत जाय ।
क्रोध संज्वलन षष्टमनाश,सप्तमभाग मानजु विनाश ॥१५६
भागाष्टं माया तज दीन, इम छत्तीस प्रकृत क्षय कीन ।
नवमें गुणस्थानके माय, मोह अरी हतके सोभाय ॥१६०॥
सूक्षम सांपराय जो नाम, गुणस्थान दशमो अभिराम ।
तामधि सूक्षम लोभ खिपाय, चारित संगर भूम रचाय ॥१६१
सील सुभाव धार जिन लियो, द्वादश तप सुधनुष धारियौ ।
रत्नत्रय रूपी ले बाण, गुणव्रत की सेना सुभ ठान ॥१६२॥
मोह अरीकी जो संतान, बलकर छेदन करी महान ।
क्षीणकषायनाम गुणस्थान, तामध नाशकरी इम जान ॥१६३
निद्रा प्रचला दोनों सही, दुतीय शुकल बह्नि सोदही ।
ज्ञानावर्णी पंच प्रकार, तिनकौ नाश कियो तत्काल ॥१६४
चक्षु अचक्षु आवरण दोय, सर्वावधि केवल चव होय ।
चारों दर्शनावर्णी येह, इनकौ नाश कियौ प्रभु तेह ॥१६५॥
अंतरायकी पांच सु कही, इन षोडश प्रकृती हन सही ।

द्वादशमें गुणथान मझार, द्वितिय शुल्क बलसो निर्धार ।।१६६
सात तीन अरु छत्तीस जान, एक और सोलह पहचान।
इम त्रेसठ प्रकृतनकौ नाश, करके पायौ ज्ञान प्रकाश ।।१६७।।
लोकालोक सकल प्रभु लखो, केवल ज्ञान थकी सब अखौ।
फाल्गुनकी सितपक्ष उदार, एकादशि दिन तिथि मनहार ।।१६८
उतराषाढ नक्षत्र जु सही, सकल अर्थकौ भेद जु कही।
ज्ञान अनंतो दर्शन जान, बीरजभी सु अनंतो मान ।।१६९।।
क्षायक सम्कित जानौ सार, यथाख्यात चारित को धार।
दान लाभसु अनंतो थाय, भोगोपभोग अनंत सुपाय ।।१७०।।
इन नव केवल लब्धि लहाय, चवविध सुर आसन कंपाय।
क्षोभभयो दिवमें अधिकाय,जानौ प्रभु केवल उपजाय ।।१७१
ध्यान खड्ग कर जिनवर गही, घाति कर्म रिपु नाशे सही।
गुणगणके समुद्र प्रभु सोय, नमूं सुगुण मुझ प्रापत होय ।।१७२

वसंततिलका छन्द

जे भव्य जीव प्रभु भक्ति करे तिहारी, तेही लहे तुव दिये वर सोख्य भारी। मैं तो अनाथ यह दुष्ट जु कर्म घेरे, श्री आदिनाथ भव दुःख निवार मेरे ।।१७३।। सीता पतादि तुलसी पतिकौं जुध्यायो, भैरो सुयक्ष पदभावतिकौ मनायो। तासो जुन काज मम एक सरौ न कोई, ऐसी कृपाकरि जिनेश जु मुक्ति होई। १७४।।

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते श्री बृषभानाथचरित्रे भगवतकेवलोत्पत्ति वर्णनोनाम एकादशमः सर्गः ।।११।।

अथ द्वादश सर्ग

गीता छंद

सबसे प्रथम जिन ज्ञान हूवो प्रथम उपदेशक भये ।
सु अनंत महिमाके निधान जु सकल जगकर बंदिये ।
जिन मोक्षमार्ग दिखाय अद्भुत करम रिपुकौ भेदियो ।
सब तत्व झलके ज्ञान माही तासको मैं सिर नयौ ॥१॥

पद्धड़ी छंद

अब प्रभुको केवलज्ञान थाय, ताकौ वर्णनको कवि कहाय । सुर लोक विषै घंटा बजाय, बर सिंहनाद जोतिष ग्रहाय ॥२॥ शुभ संख भवनवासिन सु थान, व्यंतर घर भेरी बजो महान । सिंहासन ह्वै कंपायमान, सिर मुकट सबै हरिके झुकान ॥३॥ सुरगज निज सूंड कमल सुधार, करते सु नृत्य आनंदकार । सुर द्रुमसे पुष्प सुवृष्टि थाय, दसहूं दिस अति निर्मल लखाय ॥४॥ शुभ मंद सुगंध पवन चलाय, इन चिह्नन कर जानौ सुभाय । भगवान आज केवल लहाय, चवविध हरिलष निज सीस नाय ॥५॥ प्रभुकी पूजाके करन काज, उद्यम कीनो सब देवराज । जिस नाम बलाहक देव सोय, तिस रचो विमान सुहर्ष होय ॥६॥ सो बादलके आकार जान, मुक्ता लडिकर सोभायमान । देवी देवन करिके भराय, जोजन इक लक्ष प्रमाण थाय ॥७॥ रत्नन की किरण को बिथार, सो फैल रहो सब जग मझार । जिसकी अति ऊँची पीठ जान, अरु महाकाय शुभ गज रचान ॥८॥ मद झरत कपोलनसे अघाय, बर कर्ण विषै चामर धराय । लक्षण व्यंजन कर सहत देह, कल्याण

प्रकृत बहु तुंग जेह ॥९॥ वर दीर्घ सुगंधित श्वास लेय, जुग पार्श्वन बिच घंटा बजेय। नक्षत्र माल नामा सुहार, सो धारत गजग्रीवा मझार ॥१०॥ इक लक्ष जोजन विस्तरि अभंग, चलतौ पर्वत मानौ सुढंग। सुर नागदत्त अभियोग जात, सो ऐरावत गज इम रचात ॥११॥ बत्तीस बदन जाके बनाय, इक मुखबिच अष्ट सुदंत थाय। दंतन प्रत इक सरवर मनोग, इक सर प्रत इक कमलनि मनोग ॥१२॥ कमलनि बिच बत्तिस कमल जान, द्वात्रिंस पत्र प्रत कमल ठान। इक पत्र बिषै बत्तिस प्रमाण, नाचे देवी अति रूपवान ॥१३॥ ऐसे हाथी पर हो सवार, सौधर्म इन्द्र फुन शचीसु लार। शुभ ढोल बजे आनंदकार, केवल पूजा हित चलो सार ॥१४॥ युवराज समाने देव जोय, तिग नाम प्रतेंद्र चले जु सोय। जिनकी आज्ञा ऐश्वर्य नाह अरु आयु काय हरि सम बताय। १५॥ पित मात समाने सो कहाय। ते सामानिक सुर सब चलाय। जे मंत्री प्रोहत सब गिनाय, ते त्रायस्त्रिंसत सुर सु थाय ॥१६॥ जो सभा निवासी देव जान, तिनकी परिषद संज्ञा कहान। जो अंगरक्ष जु समान चीन, सो आत्मरक्ष संज्ञक प्रवीन ॥१७॥ जे कोटपालकी सम निहार, ते लोकपाल चालै सुलार। जो सेन्या तुल्य अनीक देव, गज आदि सात विध जो कहेव ॥१८॥ जैसे पुरमें रैयत रहाय, तिन नाम प्रकीर्णक सो चलाय। जो दास यहां करते जु सेव, तिनि सम अभियोग चले सु एव ॥१९॥ जो प्रजा बाह्य रहते चण्डाल, ओ किल्विष सुर चल नाय भाल। इम

दस विध देव चले सबैहि, निज निज विभूति संजुत तबैहि ॥२०॥ अपने अपने बाहन सवार, देवी आदिक वेष्टित जु सार। सब चले इन्द्रकी साथ सोय, शुभ धर्म माह चित धार जोय ॥२१॥ सौधर्म अरु ईशान दोय, बाकी सुरिन्द्र सब साथ होय। नाना वाहन पै चढ़ चलाय, सब देवी देव सु साथ थाय ॥२२॥

कामनी मोहन छन्द

अमर किन्नर सबै गायन जय-२ करैं, दुंदभी ध्वनि सबै बहुत निर्जर भरे। महत उच्छव सहत निज विभूती लिये, छत्र वाहन ध्वजा सकल शोभा किये ॥२३॥ अंग भूषण किरण सर्व नभ फैलियो, इन्द्र धनुकी जु शंका सकल मन लयो। सोलहो स्वर्गके त्रिदस सब आइया। जोतिषी पटल उल्लंघ भुव धाइया ॥२४॥ चंद्र सूर्यादि ये पंच जिन भेद हैं, जोतिषी विबुधते चले बिन खेद हैं। त्रायस्त्रिंश रहित लोकपाल नहीं, आठ विधतैं कलत्रादिकौ संग जहो ॥२५॥ भवनवासी सबै भेद दस जानिये, तोड़ पृथ्वी सबै आयु मुद ठानिये। व्यन्तरा आठ विध संग परवार ले, सहत बहुसंपदा पूजनेको चले ॥२६ चार परकार त्रिविवेश इम धारिया, समोश्रत दूरते देख आनंदिया। धनदने इन्द्र आज्ञा थकी निर्मयो, तास वर्णन तनी कौनमें सकत यौं ॥२७॥

पद्धड़ी छन्द

तौ भी निज शक्ति समान गाय, वर्णन करहू भक्ति पसाय। जब केवलज्ञान प्रभू लहाय, तब ढाई कोस सु उच्च थाय ॥२८ जो पंच सहस जोजन उचान, तसु बीस सहस सोहै सिवान। ऐसो इक पीठ धनद रचाय, द्वादश योजन विस्तार भाय ॥२९

चौपाई

इंद्र नील मणि कौसो जान, ता ऊपर रचना सब ठान।
पंच रत्नमय धूली शाल जिम परकोटा होय विशाल ॥३०॥
जिम रेतनको टीवो होय, तथा दमदमा कहे सु लोय।
ऐसी आकृत जानौ सही, प्रथम कोट वह दुतकी मही ॥३१॥
चवदिश स्वर्ण जु थंभन माय, तोरण मणि माला लटकाय।
तहां तें आगे मानस्थंभ, जिस देखन तैं होय अचंभ ॥३२॥
चवदिशमाही चार बखान, जिनमें बने अष्ट सोपान।
चव गौपुर अरु कोट सुतीम, श्री जिनवर मूरत पुन लीन ॥३३
तिसके मध्य सु भाग मझार, सोहैं पीठका परम उदार।
ता ऊपर त्रय पीठ सुजान, सुर नर नाग सबै पूजान ॥३४॥
जिन मूरति ऊपर त्रय छत्र, ध्वज चामर घटादि पवित्र।
जो मिथ्याती मानी थाय, जाकौ देखत मान हराय ॥३५॥
तातैं साथिक नाम धराय, मानस्थंभ सकलजन गाय।
नंदोतरा आदि जे नाम, ऐसी वापी सब सुख धाम ॥३६॥
एक दिशामें चार सु कही, चार दिशा सोलह लख सही।
मणि सोपान बिराजत जास, जल निर्मल जहां कमल विकास।३७
वापी प्रति दौ कुंड रचाय, पद प्रक्षालन हेत बनाय।
तुष्णांतर आगे सो जाय, तहां खोतिका अति शोभाय ॥३८॥
गली गली बिच मानौ गंग, प्रभु सेवन आई जुत तुरंत।
रत्न किनारे परजु विहंग, कमलन पर गुंजारे भृंग ॥३९॥
ता आगे सुलतावन सही, सब रितु फूल फले जिस मही।
तहां देवी क्रीड़ा नित करें, शय्यायुक्त लताग्रह खरे ॥४०॥

चंद्रकांति मणि सिला उदार, तहां विश्राम लहे सुरसार ।
तातें कितनक चलकर जाय, कोट स्वर्गमय प्रथम लहाय ।।४१
कहियक रत्न विचित्र सु जोय, कहियक धन आशंका होय ।
कहि विद्रुमकी दीप्ति समान, पद्मराग मणिमय कहि जान ।।४२
हस्ती व्याघ्र हंस सुखदाय, और मयूरनके जुग थाय ।
इत्यादिक चित्राम सु बनें, मोती माला कर सोभने ।।४३।।
चारौं द्वार चार दिश मांहि, उन्नतता कर नभ परसाह ।
पद्मराग मणिमय अति तुंग, सिखर विराजत जाके शृंग ।।४४
तहां बैठ सुर जिनगुण गाय, केई सुने केई नृत्य कराय ।
एक एक गौपुर में जहां, मंगलद्रव्य धरे वसु तहां ।।४५।।
भारी कलशा आदिक जान, भिन्न एक सौ आठ बखान ।
सौ सौ तोरण इक दिस कहे, रत्नाभरण प्रभा लहलहे ।।४६

गीता छंद

चव द्वार प्रत संखादि नवनिध पडी मवली ह्वै सही ।
प्रभुने अनादर कियो इनकौ तो भी ये जाती नहीं ।
तिसके जुअंतर महावीथी पार्श्व दोऊ के विषै ।
चवदिशा मांही नाट्यशाला बनी दो दो सब लखै ।।४७।।
सुवरणमई जिम थंभ सुंदर फटिक भीत सुहावनी ।
सुन्दर रत्न के सिखर चमके नभ विषैं जिम दामिनी ।
पुनि तीसरी भू माह जानो देव देवी भर रहे ।
सो दर्श ज्ञान चारित्र मारग मोक्ष तसु कथनी कहे ।।४८।।
फुन नाट्यमंडपके विषै बाजे मृदंगादिक बजे ।
तहां सुरी नृत्य बहुत विध करें मानूं धरम रत्नाकर गजे ।
किन्नरी बहु विध भक्ति करहैं गाय गुण प्रभुके सबै ।
तुम कर्म अरि सरे जीत लीने कहैं किम महिमा अबै ।।४९

गाथा

धूप घडे दोदोई, वीथी मध्य उभय दिशा जु सुखदाई।
धूप धूम तस होई, शुभ गंधी दश दिशा छाई ।।५०।।
वीथी आगे जानौ, चारौ वन रम्य पुष्प फल धारे ।
सब रितु इकठी ठानौ, प्रभु पूजन आय ततकारे ।।५१।।
प्रथम अशोक जु नामा, चंपक दूजो सु आम्र तीजो है ।
सप्तपर्ण गुण धामा, ये चारौं सकल जीव मन मोहै ।।५२।।
चारौं बनमें सोहैं, चारौं शुभ चैत्य वृक्ष मनहारी ।
तीन छत्र सिर सोहैं, राखे कलश सु चमर अरु भारी ।।५३
घंटे तहां बजाई, दस दिस बधरी करी तानें ।
चव गौपुर सुखदाई कोट नये सहित शुभ ठाने ।।५४।।

अडिल्ल छंद

मध्य भाग जिन प्रतमा चारौं दिश विषै, ऊँची ध्वजा लहकाय त्रमेखल सब लखे। तुंग पीठत्रय जान स्वर्णमय सोहई,
अशोकादि चारौं बनमें मन मोहई ।।५५।।

पायता छन्द

बन माह सुवापी राजे, चतुकोण त्रकोण विराजे ।
तिन माह कमल विकसाई, सुर क्रीड़ करें तहां आई ।।५६।।
क्रीड़ा मंडप तहां सोहै, ऊंचे सबके मनमोहै ।
इक खन दोखनके जानो, महलनकी पंक्ति मानो ।।५७।।
कहीं सरिता लता बिराजे, ता तट सिकता थल छाजे ।
ध्वज एक दिशाके माही, सत अष्टोतर सुकहाही ।।५८।।
दस जात तनी सो थाई, तसु भेद सुनौ चित लाई ।
मालापट मोर बखानो पुन कमल हंस पहचानौ ।।५९।।
पुनि गरुड मृगेन्द्र तनी है, गज वृषभ सुचक्र भनी है ।

इक सहस असी जु बताई, मोहारि जीत सुकराई ।।६०।।
सो पवन थकी जु उड़ाई, भानु भव जोवन सु बुलाई ।
तुम आय सु पूजा करहो, भव भवके पातक हरहो ।।६१।।
अग ध्वज में माला जोई, पट ध्वजमें वस्त्र सु होई ।
इम शेष ध्वजा जो बताई, जिन नाम सु मूर्ति धराई ।।६२।।
सब चारौं दिशा तनी हैं, सब जोड सु एम भनी हैं ।
चव सहस तीन सत जानौ, ऊपर जिन बीस बखानौ ।।६३।।
तहांसे पुन आगे जाई, तहां कोट दुतिय सुखदाई ।
सो रजित तनौं अति सोहै, शुभ रचना कर मन मोहै ।।६४।।

चौपाई

पूरववत गौपुर हैं चार, तोरण नवनिध संजुत सार ।
पूर्व सभा द्वय नाट्य जु साल, दो दो धूप खड़ेजु विशाल ।।६५
मंगल द्रव्य जान सुखकार, रखे पूरववत मनहार ।
तहांते आगे चलकर जाय, कल्पवृक्ष बन तबहि लखाय ।।६६
नानारत्न प्रमाणजुत सोय, तुंग सफल छाया जुत होय ।
माला वस्त्राभूषण धार, इम पल्लव लागे सु विचार ।।६७।।
जोतिरांग तल ज्योतिस रास, दीपांगहि ढिग स्वर्ग निवास ।
वृक्ष भृगांग सुभावन जान, सुखतिष्ठे कर जिनगुणखान ।।६८
तिस बन मध्य सिद्धारथ वृक्ष, ता बिच सिद्ध प्रतिमा परतच्छ ।
चैत्यवृक्ष बरनन पुर कियो, ताकी सदृश यह लख लियौ ।।६९
कल्पवृक्ष जो ऊपर कहे, सकल अर्थदाता श्रद्धये ।
रत्नकिरण कर व्याप्त सुजान, नरसुर पूज करे हितठान ।।७०
तिस बनकी दीवार जु बनी, स्वर्ण रत्नमय उन्नत घनी ।
जाके चार द्वार बन रहे, मंगल द्रव्य तहां शुभ लहे ।।७१।।

रत्नाभरण सुतोरण जहां, देव सु जिनगुण गावें तहां ।
तिस विधिके अंतर भाय, नानाविध ध्वज पंक्ति थाय ॥७२
स्वर्ण थंभ बिच लागो केत, रत्न पोठसे मन हर लेत ।
अट्ठासो अंगुल को जान, मोटो थंभ कहो शुभ मान ॥७३॥
पच्चिस धनुष जु अंतर सहो, सबको ऐसो विध सो लहो ।
मानस्तंभ ध्वजा थंभ जोय, चैत्य सिद्धारथ वृक्ष बहोय ॥७४
तूप सु तोरण अरु प्रकार, पर्वत गेह और दोवार ।
जिन तनतें बारह गुण सार, ऊंचे ह्वै हैं शोभा धार ॥७५॥
पर्वतको चौड़ाई इसी, उच्चाईसे बसु गुण लसी ।
तुपनकी विस्तार सु एम, उच्चाईसे अधिक सु तेम ॥७६
जानो वेदीको विस्तार, भाषामें जिस कहे विचार ।
जाके नांह कगूरे होय, जास कंगूरे कोटसु जोय ॥७७॥
ऊंचोसे चौथाई भाग, जानौ चौड़ो सरस सुहाग ।
विश्व अर्थके जाननहार, गणधर तिन इम कियो उचार ॥७८
कहिं वापी कहिं नदी बहाय, कहीं समाग्रह बन बिच थाय ।
बनवीथीके आगे जान, स्वर्णवेदिका लसे महान ॥७९॥
तत्त हेममय गोपुर चार, ऊंचे बने सकल मनहार ।
तोरण मंगलद्रव्य रखाय, पूरववत शोभा अधिकाय ॥८०॥
दरवाजेसे आगे जाय, गलियन मध्य जु भूमि रहाय ।
महालनकी पंकत तहाँ बनी, देवसिल्पि जिस रचनाठनी ॥८१
स्वर्णमई जहाँ थंभे लगे, चन्द्रकांत सिलसौं जगमगे ।
दुगने तिखने अरु चौखने, चंद्रशाल बल्लभ छंद बने ॥८२॥
दोहा—बहु उतंग प्रासाद हैं, ऊंचे कूट धराय ।
सभा गेह केई बने, प्रेक्षशाल बहु भाय ॥८३॥

सय्या आसन जहां धरे, सुंदर बने सिवान ।
तहां देव देवी रहे, करे सु जिनगुण गान ॥८४॥

चौपाई

वापीमेसे जल भर लाय, प्रभु मूरत अभिषेक कराय ।
आगे फटक कोट सोभाय, पद्मरागमय द्वार जु थाय ॥८५॥

लावनी

चतुर्दिसमें चारो जानौं, सुमंगल द्रव्य तहां मानौं ।
जहां तोरण नवनिध सौहै, पूर्ववत रचना मन मोहै ॥८६॥
छत्र चामर अरु भ्रंगारा, कलश ध्वज दर्पण जहाँ धारा ।
बीज नासु प्रतिष्टक नामा, रखे सब गोपुरमें तामा ॥८७॥
तीन कोटनके जो द्वारे, तहाँ सुर खड़े गदा धारे ।
प्रथम वितर देवा राजे, दुतियमें भवनपति छाजे ॥८८॥
कल्पवासी तीजे चीनो, जान नहि देह विनय हीनो ।
फटकके कोट तने आगे, भीत षोडश तहाँ चित पागे ॥८९॥

अहो जगतगुरुकी चाल

फटकमई सो जान तास ऊपर सुखदाई, रतन थंभ दुतिवान भी मंडप तहाँ छाई । जोजन एक प्रमाण नौ विस्तीर्ण बखानौ, जगत जीव सब आय तौ भी भोड न ठानौ ॥९० तहां तिष्टे जगनाथ वृष उपदेश करंते, सुरशिव लक्ष्मीयुक्त सब जन आस पुरंते । तातैं सार्थिक नाम श्रीमंडप सुधराई, मध्य पीठका जान वैडू रजमय थाई ॥९१॥ जहाँ षोडश सोपान सोलह मार्ग तनी है, चारदिशा मगचार बारह सभा भनी है । तिन प्रवेशके काज यह शिवान सुभ राजे, मंगल द्रव्य जु आठ धर्म चक्र हि छवि छाजें । ९२॥ यक्षसु सिरपै आर सहस आरे जिस सोहैं । मानौं सूरजबिंब उदयाचल

ऊगो है। ताके ऊपर जान दुतिय पीठ दुतवंतो। स्वर्णमई सोभाय रतन किरण धारंतो ॥६३॥ तहाँ ध्वजा लहकाय आठ भेद कीजो है, हस्ती वृषभ सुचक्र कमल बसतर मन मोहै। सिंघ गरूड अरु माल पवनथकी सु उडावे, दर्शनके गुण आठ मानो नृत्य करावै ॥६४॥ तिस उपर शुभजान पीठ तोजी सुखदाई। जगलक्ष्मीको थान मंगल द्रव्य रखाई। तस्योपर दिव्यांग गंधकुटो शुभ जानौं, पुष्प धूपकी गंध सो दस दिस महकानो ॥६५॥ तातै सार्थिक नाम गंधकुटी शुभ राजे। मुक्तामय बरजान रत्नाभरण विराजे, छसो धनुष उतंग उपमा रहित भनीजे। कछुक अधिक चौडान लंबाई सु गनीजे ॥६६॥ तहां सिंहासन तुंग रत्नप्रभा जुत थाई, स्वर्णमई जो सिंघ ता तल सदा रहाई। तिस विष्टर के माह श्री आदीश्वर देवा, अंतर अंगुल चार तिष्टे तापर शेवा ॥६७॥

पद्धड़ी छंद

शुभ फटक शालके मध्य जान, इक योजन भूम कही बखान। वसु धनुष जु ऊंचौ प्रथमपीठ, दूजी कटनी चवदंड दीठ ॥६८ चवचाप तन तीजो कहाय, ताऊपर सिंहासन रचाय। तहां धर्मचक्र अदभुत बनाय, इत्यादिक रचना बहुत थाय ॥६६ मैं किमपी कहो लघु बुध धार, समवश्रुत रचना है अपार। जिनकौं विशेष जानन सु चाव, ते दीर्घ ग्रंथमाही लखाव ॥१००॥ द्वादश योजन विस्तीर्ण सोय, गंधोदक वर्षा तहां होय। अब प्रतिहार्य होय अष्ट जेम, तिनकौं कछु वर्णन करूं तेम ॥१०१॥ जो वृक्ष अशोक उतंग सार, मरकत

मणिमय शुभ पत्र धार । जिस देखत सबको शोक जाय, साथिक नामको सो धराय ॥१०२॥ मन मरण देव मन्मथ डराय, तिहु जग सरणौ ढूंढत फिराय । प्रभु चौर समझ कोई ना रखाय, तब हार मान प्रभु शरण आय॥ १०३॥ निज शस्त्र तबं डाले तुरत, पुष्पन वर्षा मनु इम भनत । तिनपर सु भ्रमर करते गुंजार, मानौ प्रभु की थुति करत सार ॥१०४॥ सिर छत्र तीन सौभं विशाल, तिनमें सोभं मुक्ता सु जाल। रत्नत्रय मनु छाया कराय, त्रिभुवनवत प्रभु मनु इम कहाय ॥१०५॥ दुग्धाब्धि तरंग समान जान, ढारे सुर चौसठ चमर आन । मनु चन्द्र किरण समुदाय सोय, वा मुक्ति स्त्री जु कटाक्ष होय ॥१०६॥

चौपाई

जग जीतो इक मोह जु सूर, तीन लोक पटहादियो पूर ।
शुल्कध्यान असिसो जिनराय, ता बैरीको बसुजु कराय ॥१०७
तास हर्ष दुन्दभी बजाय, प्रभुकी जीत तबं बतलाय ।
साढे द्वादश कोट प्रमाण, दसों दिस जिन बहरी ठान ॥१०८
प्रभु शरीरको तेज जु होय, ताहि प्रभामंडल कटि सोय ।
तेज देख रवि लज्जित थाय, ता महिमा हम किम वर्णाय॥१०९
प्रभु तन हिमवन गिर सम थाय, गंगासम वाणी निकसाय।
मोहमई विजयार्द्ध महान, ताको भेद चली सुखदान ॥११०
जग जड़तापत दूर कराय, ज्ञान पयोनिध महा मिलाय ।
जसे मेघ सुवर्षा एक, ता कर फल हो है जु अनेक ॥१११

त्रोटक छन्द

सिंहासनपे जिनराज तहीं, चारौं दिशमें चव मार्ग सही।
प्रभुकौं मुख पूरबमांह मनौ, परदक्षरण रूप सभा जु गुनौ ॥११२
चारों दिश त्रय त्रय कोष्ट बरे, अजगद्भुव्यन कर सर्व भरे।
सोलह भीतनके मध्य कहो, इम बारह सभा सुजान गहो ॥११३
प्रथम गणधर मुनराज तनी, दूजी मध्यकल्प सुरी जु भनी।
वृतकामानुषनी तीजीमें, चौथीमें जोतिषनी सुनमें ॥११४॥
व्यंतरनी जान सु पंचममें भवन स्त्री राजत षष्टममें।
सप्तमें भावन अमरा, अष्टममें व्यंतर जान खरा ॥११५॥
नवमें कोठे जोतिष गनिए, दसमें मध्य कल्प सुरा भनिए।
एकादशमें जु मनुष्य सजे, द्वादशमें सर्व पशु सु सजे ॥११६॥
जिन सन्मुख राजत भव्य तबै, जिनवाणीके बांछिक सु सबै।
इसमें वर्नन संक्षेप कहो, तुछ बुध मूजब विस्तार गहो ॥११७
पण भवित मनको प्रेरे है, तुम वर्णन कहीं बटेरे है।
सो सब वर्ननमैं केम भनौ, गणधर बिन और जु नाह ठनौ।११८
शक्रादि असंख जु देव सबै, नभ मांह आनद संयुक्त सबै।
मनमें उछाह प्रभु दर्शनको, आये जिनचर्ण सु पर्सनको ॥११९
सबही मिलकर जयकार करें, कर हर्ष पुण्य भंडार भरे।
हरि इंद्राणी मिल पूज रचे, श्री जिनवरके जुगपद अर्चे ॥१२०

पायता छन्द

कंचन अंगार भराई, तीरथ जलसे अधिकाई।
सो जिनवर अग्र चढ़ावे, तासे त्रय दोष नसावे ॥१२१॥
भव तपहर सीत वचन है, सो चंदन में नहि गुण है।
प्रभु तुम गुण एम सुनीजे, सोई सांचो कर दीजे ॥१२२॥

मुक्ताफल अक्षत लाई, ताके शुभ पुंज कराई ।
तुम जीती इन्द्री पांचौ, मोह अक्षय पद दे सांचौ ॥१२३॥
तुमने मन्मथ जु नसायो, तातें हम पुष्प चढ़ायो ।
जो शील सुलक्षि लहावे, इम कामबाण नस जावे ॥१२४॥
नैवज इन्द्री बलकारी, सो तुम ढिग लागे प्यारी ।
तुमने चूरो नवधारी, येही अचरज है भारी ॥१२५॥
दीपक की जोत प्रकाशा, सो तुमरे तनमें भासा ।
मानौ यह ध्यान कणासो, टूटे कर्मन की रासी ॥१२६॥
कृष्नागर धूप सुवासी, दस दिस तिय वर सुख रासी ।
अती हर्षभाव परकासे, मनु नृत्य करे अघ नासे ॥१२७
बहुविध फल ले तिहुं काला, उर आनंद धार विशाला ।
तुम शिव पद देहु दयाला, तौ हम मांगत तो नाला ॥१२८
यह अर्घ कियौ निज कारण, तुमको पूजौ जग तारण ।
जो खेत किसान कराई, तामें नृप भाग सुधाई ॥१२९

अडिल्ल

रत्न चूरण ठान तबै सतियौ कियौ, पुष्पांजलि सु चढ़ाय मत्र उच्चारियौ। फुनि प्रभु आरती करे इन्द्र हर्षायके, इंद्राणी भी संग देव सब धायके ॥१३०॥

मोती दाम छन्द

तुमी जगनाथ तुमी वरदेव, तुमी गुरुके गुरु हो जयदेव ।
करो तुम लोक पवित्र सदाय, समस्त जगद्धितको सु कराय ।१३१
तुमी सब नाथ निरोपम थाय, अनंत गुणाकर पाप नशाय ।
अशक्य भये गणराज समस्त, तुम स्तुतिमें किमहूं मैं वरक्त ।१३२
तऊ तुम भक्ति करें वाचाल, सुता वस होय कहूं गुणमाल ।

किये तुम वस्त्राभर्ण सु दूर, सु रूप विराजत अद्भुत सूर ॥१३३॥ नहीं तुम नेत्रन माह निमेष, नहीं जुल लाई कों कहूं लेश। कषाय तनो चख जोत बताय, सबै भवि निरखत आनंद थाय ॥१३४॥ मुखाब्ज सुदिव्य महा अविकार, नयो जिनचंद्र सुक्रांत अपार। मनौ इम लोकन कहत सुनाय, दिये इन सर्व जु दोष नसाय ॥१३५॥ प्रभु तुम वाणी सबै हितकार, सुधावत तोषत भव्यन सार। अविकल्प मनोवृत धारत श्रेष्ट, सबै उपमायुत हो जगजंघु ॥१३६॥ भवाब्धि विषै जिय दुःख लहाय, तिनै तुम काढन उत्सक थाय। तुमी जिनदेव सहो बिन राग, सु पूज करे नर जे बड़भाग ॥१३७ तथा अविनय जन कोई करेय, तुमी नहीं राग जु द्वेष धरेय। निजार्थ करे तुम पूजन जाय, सोई जग पूज लहे पद आय ॥१३८ तुम स्तुतिकौ जु करे बुधवान, जग स्तुति पद योग्य लहान। जग त्र तनो लब्धिके तुम स्वाम, कहे कवि फेर निर्ग्रन्थ ललाम ॥१३९॥ शची प्रमुखा शुभदेविसु आप जजे तुमरे पद ओक धराय। तुमे भव पूजत भक्ति बषाय, तऊ तुम नाह सुराग धराय ॥१४०॥ सु पूजन हार लहे जगलक्ष, यही फल भावतनौ परतक्ष। जुमूढ़ करें तुम निंद्य सदीव, तुमे नहि रोष भमे वह जीव ॥१४१॥ प्रभु तुम भक्ति लहे सुख स्वर्ग, तथा तपधार लहे अपवर्ग। अभक्ति गहे दुःखदारिद रास, जु दुर्गत जाय करे बहुवास ॥१४२॥ शुभाशुभकौ फल सर्व लहाय, नहीं तुम रागजु द्वेष धराय। महान अचंभ तनो यह बात, सु अद्भुत चेष्ट तुमो जगतात ॥१४३॥ अनंत-

सुखाब्धि नमो तुम देव, अनंत सुदर्शन नमो जगदेव। अनंत सुवीर्य सुखादिक धार, यही जु अनंतचतुष्टय सार ॥१४४॥ समस्त जगज्जिय आपद टाल, त्रिलोक जु मंगलकारण म्हाल। तुमी जग उत्तम हो जगजेष्ठ, सुमुक्ति तियापत हो उत्कृष्ट ॥१४५॥ इम स्तुति ठान कियौ जैकार प्रभू हमको भवसागर तार। करांजुल जोड़ तबै अमरेश, स्वकोष्ट विषैंहि कियो सुप्रवेश ॥१४६॥ चतुर्विध देव सु देवि महंत, सबै निज कोष्ट विषै जुलसंत। वृषामृत प्यास लगी उरमांय, सबै तिह तिष्ट प्रभुपद ध्याय ॥१४७॥

गीता छन्द

इम जगतगुरु गुण वृषभ जिनवर सकल संपद तिन लही,
कैवल्यदर्शन ज्ञान राजित प्रातिहार्यादिक सही।
सब जगत पूजत जिन चरणको कायसे नहि राग है,
सब हित करन भगवान मुझको शिवकरन बड़भाग है ॥१४८
तुम गर्भकल्याणक सुमाही रतन वर्षा अति भई,
ता कर जु सब जन तृप्त हुवे नाहि वांछा उर रही।
तुम जन्मदिन मांही किमच्छक दान पितुने बहु दियौ,
पुन राज्य लह सब प्रजा पालो सकल दुख तिन मेटियौ ॥१४९
तप धार केवलज्ञान रविकर सकलको भ्रम नासियौ.
उपदेश दे भवजीव सारे सकल तत्व प्रकाशियौ।
मेरी तरफ क्यों दृष्ट नहीं मैं भी तुम सेवक सही,
अब मैं शरण तुमरे जु आयो तारहो मम कर गही ॥१५०

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्री सकलकीर्तिविरचिते भगवान् समवशरण रचना वर्णनोनाम द्वादशम: सर्ग: ॥१२॥

—:o:—

अथ त्रयोदश सर्ग:

सवैया ३१

नमो आदिनाथ जिनराजके सुपद सार गुणगण पूरण सकल अंग भरे हैं। दोषनमें देख इम गर्व कीनौ मन गाहि कहा हमें लोक माह कोई नहीं बरे हैं। तब तुम छोड़कर औरन के पास गये तब तिन देवगण आदर सुकरे हैं। फेर तुमे स्वप्न माह पादक भू कियो नाहि ऐसे सब दोष प्रभु आपसेती टरे हैं ॥१॥

चाल अहो जगतगुरुकी

एक समे भरतेश आनंद सहित विराजे, तीन पुरुष तहाँ आय नृपको नमन कराजे। फुनि इम विनती ठान सुनिये नृप मन लाई, अपनी अपनी बात कहत भये सुखदाई ॥२॥ वृष अधिकारी एक बोलो इम सुनराई, जगगुरु वृषभ सुनाय केवलज्ञान लहाई। दूजो नम इम भाष आयुधशाला माही, उपजो चक्र सुरत्न तुमरो पुन अधिकाई ॥३॥ त्रतीय कंचुकी बेग बोलो बचन रिसाला, अनंत सुंदरी नार पुत्र जनो गुणमाला। इम सुनकर चक्रेश हिरदे माह विचारी, तीनौं कारज माह कौनसों प्रथम सुधारी ॥४॥ वृषकर विभव महान और भोग सब पावे, बीज थकी ह्वं धान्य तिम वृष विन नहलावे। श्री जिनवरकी पूज धर्मवृद्धि कारण है, सोई करनी बेग भवदधिसे तारण हैं॥५॥ वृषसे चक्रोत्पति अरु पुत्रादि अपारा, सब ही कार्य सु होय तातें धर्म सु सारा। पहले करने जोग और सब कारज छांड़ो, बिंदो देयनकाम

अंक जो एक न मांडा ॥६॥ काम अर्थ अरु मोक्ष इनको मूल यही है, यूं नृप निश्चै जानकर वृष काज सही है। अंतःपुर सब साथ पुरके लोक सबै हो, चार प्रकारो सैन तिन जुत चाल तबै हो ॥७॥ पूजन वस्तु जु सार सब आगै भिजवाई, पटह सुभेरी आदि बाजे बहु बजवाई। क्रमकर तहां पहुंचाय मानस्थंभ सु देखो, तहां जिन प्रतिमा पूज खातिका आदि सु पेखो ॥८॥ जिनप्रतिमा जिह थान सबको पूज करंतो, पहुंचो सभा सु थान भर्तराय गुणवंतो। तहाँ राजे त्रय पीठ तापर जिनवर सोहै, त्रिजग तनतकर बंद्य सुरनरके मनमोहै ॥९

मरहठो

देखो जिनस्वामी त्रिभुवन नामी आनंदयामी, भक्ति भरौ, नमकरपंचांगा बांधव सांगा सब मिल जै जैकार करो।
उठ कर फुन राजन कर परदक्षण प्रथ पीठपे दृष्ट धरी, तहाँ धर्म चक्र चव दिशा माह चव तिनको वसु विध पूज करी ॥१०॥ द्वितीय पीठ मध्य ध्वजा देख शुभ तृतीय पीठ पर जिनराजे, अष्ट द्रव्य कर पूजन कोनी मुद ह्वै शिव सुखके काजे। कर प्रणाम नृप थुति आरंभी ताके चार सुभेद गनो, स्तुत्या स्तुति जो कहिए फल इन सबको भेद सुनो ॥११॥ गुण अभ्यंतर संयुक्त सु जानौ सर्व दोष कहि ताहै, त्रय जगकर थुति जोग प्रभुजी सोइ स्तुत्य जु महताहै। हेयादेय तत्व जो जानत गुण अरु दोष विचारे हैं, ख्याति लाभ पूजा नहीं वांछित सो श्रोता पद धारे हैं ॥१२॥ सत्य गुण ग्रामनको कहनौ सोई थुति है सुखकारी, अर्हतको भक्तिके काजे सो थुत

वृष वर्धनहारी। तासे पुण्य उपार्जन करना सोई फल सुर शिवदानी, चक्रवर्ति यह सर्व समझ कर श्री जिनकी पूजन ठानी ॥१३॥ तुमरे मध्य अनंत जु गुण है औरनमें एकहू नाहीं, अधा मध्य ऊरध लोकनमें फैल रहे इच्छा पाई। इंद्रादिकके कर्ण हृदयमें तिन प्रवेश कीनो जाई, अति वीरजको आश्रय करके वीर्यवान ते भी थाई ॥१४॥ पगमे लेके मस्तक ताई गुण सबने तुम घेर लियो, दोषनने तब, थान न पायो तब तिन यहाँसे गमन कियो। मनमें धर अभिमान इसी विध क्या हमको कोई नहि धारे, हरि हरादिके पास जु पहुंचे तिनने बहुविध सत्कारे ॥१५॥ तहाँ रहे आनंदसु ह्वके सुपनेमें भी नहि आये, तातें तुम निर्दोष प्रभु हो याते तुमरे गुण गाये। मेंघ धार सागर कल्लोल हि ताको गिनती हो जावे, पर तुम गुण सख्या नहि होहै इंद्रादिक लज्जित थावे ॥१६॥ हे गुणवारिध तुमरे गुणको जो कोई कहवो चाहै, सो ऐसे कर जान जगत पत मूको बोलन उत्साहै। जो तुमको ध्यावत नित हितकर ध्यावन योग्य सु होत सही, भक्ति भारकर तुमे जु नमहै वंद्यपदी सो तुरत लही ॥१७॥ तुमको पूजे जो भवि प्राणी पूज पदी ततक्षिण पावे, कल्पवृक्ष कल्पित फल देवे चिंतामण चिंतत थावे कामधेनु अरु चित्राबेली एक जन्ममें सुख देवे, तुम सेवा मनवांछित दाता तातें भवभवमें सुख लेवे ॥१८॥ मात पिता बांधव तुम ही हो तुम निश्चय सब हितकारी, तातें तुमको नमन करत हूं चक्षुज्ञान केवल धारी। केवल दर्शन जुतही स्वामी दान लाभको

नहि अंता, भोगोपभोग बिना मरजादा वीर्य अनंतो धारंता ॥१६॥ पूरण क्षायक समकित धारौ जो अवगाढ़ परम कहिए, यथाख्यात चारित्रजु क्षायक धारत जैसोही चहिये। इम नव केवल लब्धि जु स्वामी द्वैविध धर्मप्रकाशक हो, तीन जगत के भव जीवनकौ सरन एक अघ नाशक हो ॥२०॥

ते गुरु मेरे उर बसो इम चाल में

जो तुमरी भक्ती करे, और करे परणाम दर्शन ज्ञान चरित्र लह। पावे सुरशिव धाम मेरे सब अघकौं हरो ।२१॥ तुम भक्तिको फल यहे बोध समाधि लहाय, जन्म जन्म तुम स्वामि हो। जब लो शिव नहि पाय, मेरो सब अघको हरो ॥२२॥ इम थुति कर चक्री तबै, नमस्कार फुनकोन निजपर हित-दायक सही। पूछत भयो प्रवीन, मेरे सब अघकौ हरौ ॥२३॥ तुम सबके ज्ञायक सही, द्वादशांग कर्त्तार। तत्त्व पदार्थ सत्य जे, तिन लक्षण कहु सार ॥ मेरे सब अघको हरो ॥२४॥ मुक्त मार्ग परघट करौ, किम फल किम सुख थाय। कर्मन करके किम बंधे, लहे चतुर्गति जाय ॥ मेरे सब अघको हरौ ॥२५॥ काहेकर भवमेरु ले, काहेकर शिव जाय। अंध पंगु क्यों दुख लहे, क्यों विकलांगी थाय, मेरे सब अघको हरौ ॥२६॥ उत्सर्पण्यवसर्पिणी, कालतनौ जो भेव। सो सबही कहिए सबै मेरे भ्रम उच्छेद, मेरे सब अघको हरो ॥२७॥ इम प्रश्नको सुन तबै, वाणी खिरी सुखदाय। भो भर्ताधिप सुन सही, चित एकाग्र कराय, वाणी सकल भ्रम नासनी ॥२८॥

तालू होठ हिले नही, मुख विक्रय नहि थाय। जगतवंद्य वाणी खिरे, तत्व अर्थ दरसाय, वाणी सकल भ्रम नासनी ॥२६
जीव अजीवाश्रव कहो, बंधसु संवर जान। निर्जरा मोक्ष जु मानिये, तत्व कहे भगवान, वाणी सबै भ्रम नाशनी ॥३०
जीव माह दो भेद हैं मुक्त और संसार, मोक्ष माह कछु भेद नही। ताहि नमूं चित धार, जिनवाणी भ्रम नाशनी ॥३१

संसारीके भेद दो

भव्य अभव्य कहाय तामें पण थावर कहे।
इक त्रस है सुखदाय, जिनवाणी भ्रम नाशनी ॥३२॥

बंदो दिगम्बर गुरु चरण इस चाल में

चेतन सुलक्षण जीव है, उपयोगमय त्रयकाल। अरु अमूर्तीक सुजानिये, कर्ता सु भोक्ता हाल॥ काया समान सुजीव कहिये, अरु संसारी मान। फुन सिद्ध पदवी लहे, ये ही उर्द्धगामी जान ॥३३॥ इत्यादि बहु नय भेदतें, जिन जीवतत्व कहान। फुन शुद्ध अशुद्ध द्वै भेद करके, चेतना दुविधान ॥ शुद्ध ज्ञानमई सुजानो अशुद्ध कर्मज मान। शुद्ध नय कर जीव, केवलज्ञान दर्शनवान ॥३४॥ अशुद्ध निश्चयनय थकी, मति आदि ज्ञान लहाय। व्यवहार नयकर जीव कर्ता, भोगता सु कहाय॥ शुद्ध निश्चय नय थकी, कछु बंध मोक्ष जुनाह। व्यवहार सूक्षम थूल होवे जो शरीर लहाह ॥३५॥ निश्चय असख्य प्रदेश धारक समुद्घात कराय, तब लोक माहीपूर जावे जीव यह मन लाय। यह जीव संसारी जु कहिये, नव व्यवहार प्रमान॥ निश्चयसो सिद्ध समान जानौ, कर्म क्षयको ठान॥३६

यह जीव आप स्वभावसे ही उर्द्ध गमन करंत, फुन कर्म कर बांधो थकौ दस दिस विषै विचरंत । व्यवहार नय दस प्राणमय है पंच इंद्री जान, मन वचन काया आयु अरु उश्वास ये दस प्राण ॥३७॥

चौपाई

अभव्य अपेक्षा यह संसार, है जु अनादि निधन दुखकार ।
निकट भव्य जु अपेक्षा ठोक, है जु अनादि शाति तहकीक ॥३८
तत्व पदार्थ जग विच जेय, तिनमें जीवतत्व आदेय ।
सिद्ध समानसु आतम जान, ध्यावो नित इंद्रीवस ठान ॥३९॥
सिद्धनकी सम आतम मान, ध्यान करँ निसदिन मुदटान ।
सिद्धनकी माफक हो सोय, सकल कर्म क्षयकर सुख होय ॥४०
इस विध आतमको पहचान, रुचिसे भावन कर अरु ध्यान ।
सर्व अवस्थामें सब थान, तजो नहीं तुम हे बुधठान ॥४१॥
जीवतत्व जो ग्रहणो जोग, गणधर व्रत सो कहो मनोग ।
अजीवतत्वको जो व्याख्यान, सुनो सकल भविकर सरधान ॥४२
धर्म अधर्म और नभ कहो पुद्गल काल पंच सरदहो ।
जिय पुद्गलको चलन सहाय, जिम मच्छी जलमाह चलाय॥४३
नित्य अमूरत प्रेरे नहीं, धर्म द्रव्य सो जानो सही ।
जिय पुद्गल जब थितको करें, तब अधर्म सहकारा बरे ॥४४
दो प्रकार आकाश बताय, लोक अलोक सु जानौ भाय ।
सब द्रव्यनको दे अवकाश, अमूर्तीक निक्रय अविनाश ॥४५
धर्मादिक जहां द्रव्य लखाय, सोई लोकाकाश बताय ।
जहां नहि दूजो द्रव्यसु नाम, सोई आलोकाकाश ललाम ॥४६
काल द्रव्य दो विध मन धार, एकजु निश्चय अरु व्यवहार ।

समय पहर घटकादिक जोय, सो व्यवहारकाल अवलोय ॥४७
काल द्रव्य दो विध मन धार, एकजु निश्चय अरुव्यवहार।
समय पहर घटकादिक जोय सो व्यवहारकाल अब लोय ॥४८
निश्चयमें अणुरूप सुजान, रतनराशि वत भिन्न लखान।
नई वस्तु को जोरण करे, लक्षण जास वर्तना धरे ॥४६॥
अणु स्कंध भेद द्वय सार, पुद्‌गल तने जान निरधार।
सूक्ष्म सूक्ष्म आदि महान, षट्‌ प्रकार कहियो भगवान॥५०
अविभागी परमाणु सही, सूक्ष्म सूक्ष्म सो जिन कही।
अष्ट कर्मको प्रकृत जु गिनो, सो सूक्ष्म पुद्‌मल सब भनो ॥५१
शब्द स्पर्श रस गंध जु थाय, सूक्ष्म थूल यहो जु कहाय।
धूप चांदनी अरु पड छाय, स्थूल सूक्ष्म ये भेद बताय ॥५२
जल ज्वालादिक जानो थूल, धाम विमानहि थूल सुथूल।
जोव द्रव्य संयुक्त सु येह, सब षट्‌ द्रव्य लखो गुणगेह ॥५३
काल बिना पंचास्ति जु काय, कालद्रव्य विन काय लखाय।
भावद्रव्य द्वैविध पहचान आश्रब तत्व लखो बुध ठान ॥५४
रागद्वेषयुक्त परिणाम, भावाश्रव सो कहो ललाम।
पुन्य थको शुभआश्रव होय, पाप करत अशुभाश्रव जोय ॥५५
भावाश्रव को कारण पाय, द्रव्याश्रव होवे सब ठाय।
कर्मतनी वर्गणाए जु आय, सो द्रव्याश्रव जानो भाय ॥५६
जो मिथ्यात पंच परकार, बारह अव्रत तज दुखकार।
और तजो पच्चीस कषाय, योग पचदस तजो सदाय ॥५७॥
ये भावाश्रव के लख भेद, इनको मूलथकी जु उछेद।
शुभआश्रव आवे शुभयोग, अशुभ थको द्वै असुभ संयोग ॥५८

जौ लौं आश्रव जियके जोय, तौ लौं मोक्ष कहांसे होय ।
जब जियके आश्रव रुक जाय, तबही सिद्ध सु पदवी पाय ॥५९
ऐसे जान व्रतादिक राय, बुधजन आश्रव को रोकाय ।
बंध भेद द्वै द्रव्य रु भाव, बदो ग्रहवत् जान सुभाव ॥६०॥
शुभ रु अशुभ भेद द्विविधाय, मोक्ष रोक भव वर्धक राय ।
रागद्वेष करके यह जीव, भाव बंधकर बंध सदीव ॥६१॥

पायता छन्द

जो जीव कर्म मिल जाई, सो द्रव्य बंध कहलाई ।
सो प्रकृत प्रदेश जु माना, थित अरु अनुभाग सुतामा ॥६२
जो प्रकृत प्रदेश बंधानौं, सो योग चलन से जानौं ।
फुन थित अनुभाग जु कहिये, सो बंध कषाय न लहिये ॥६३
जिम बंधन बंधो जु कोई, सहवे है दुःख बहोई ।
तिम कर्म बंधकर जीवा, भुगते है दुख अतीवा ॥६४॥
भव जानौ इम मन माही, यह बंध सदा दुःखदाई ।
तप शस्त्र थकी इस छेदो, मुक्त्यर्थी इसको भेदो ॥६५॥
दो विध संबर सुखदाई, सो द्रव्य भाव मन लाई ।
मुक्ति श्री जनक महंता, भव नाशक सुखद अनंता ॥६६॥
कर्माश्रव रोकनहारे, चेतन परमाण सु धारे ।
जो आतम ध्यान कराई, सो संवर भाव गहाई ॥६७॥
जो कर्माश्रव रुक जाई, सोई द्रव्य संवर थाई ।
सो पंच महाव्रत कर ही, अर पंच समित फुन धर ही ॥६८
त्रय गुप्त धर्म दश पाले, बारह अनुप्रेक्षा संभाले ।
जो जीत परीषह सब ही, चारित पण धारे तब ही ॥६९

जो ध्यानाध्ययन कराई, सो मोक्षमार्ग दर्शाई । ये भाव जु संबर कारन, है भवसमुद्रसे तारन ॥७०॥ संवर जुत जो तप करई, सो शिवकामनकौ बरई । संबर बिन जो तप धरही, सो तुष खंडनकौ करही ॥७१॥ इम जान जु संवर कीजे, मन बचन काय रोकीजे । द्वै भेद निर्जरा ताका, सविपाक और अविपाका ॥७२॥ सविपाक सबन जिम होई, अविपाक मुननके जोई । जैसे तरु आम्र लगाई, सो आपथ की पक जाई ॥७३॥ तिम कर्म उदयमें आवें, सो सुख दुख दे खिर जावे । सोई सविपाक बखानी, तसु हेय ज्ञान तज प्रानी ॥७४॥ जैसे जु पालमें आमा, पक जाय तुरत अभिरामा तपकर मुनिवरके लहिए, ताकौ अविपाक जु कहिए ॥७५॥ जिम जिम संवर मन थाई, तिम-२ निर्जरा सु बढ़ाई । जिम जिम निर्जरा मन भावे, तिम मुक्ति स्त्री ढिग आवे ॥७६ इम जान सकल भव प्राणी, निर्जर मनमें नित ठानी । तप धरकर कर्म खिराई, संवर जुत ह्वै हर्षाई ॥७७॥ द्वै भेद द्रव्य अरु भावा, शुभ मोक्ष माह दरसावा । जो सर्व कर्म क्षय करने, परणाम विशुद्ध जु धरने ॥७८॥ सो भाव मोक्ष सुखदाई, सब सुखकी रास बताई । जो कर्म काष्टकौ जारे, सोई शिव माह सिधारे ॥७९॥ है द्रव्य मोक्ष तसु नामा, सु अनंत गुणनकी धामा । जिम पग सिर सब बंध जाई, बंदीग्रहमें सु रुकाई ॥८०॥ तिसके बंधन जब खोले, तिसकौं सुख होवे तोले । तिस कर्म बंधसे छूटो, तिन ही सास्वत सुख लूटो ॥८१॥

पद्धड़ी छन्द

त्रयकाल जगत्रय माह सार, जो सुख होवे इक दिश सु धार।
अर एक समय सुख मुक्ति माह, सो तुल्य कदाचित होय
नाह ॥८२॥ फुन जीवतने त्रय भेद जान, बहिरातम जिय
जड़ एक मान। अन्तर आतमको भेद येह, जो जिय पुद्गल
को मिलन खेह ॥८३॥ बहिरातमता तजके मलीन, अन्तर
आतमकी बेग चीन। फुन परमातमको धार ध्यान, जो होय
शीघ्र वसु कर्म हान ॥८४॥ जो निज परकौं श्रद्धान होय,
सोई दर्शन शिवकार जोय। संवर निर्जर अरु मोक्ष तीन,
ये ग्रहणयोग्य जानो प्रवीन ॥८५॥ पुद्गल आश्रव अरु बंध
हेय, निज जीवतत्त्वकौ जान ध्येय। अन्तर आतमको इक
जु थाय, ओ पुन्यबन्ध शुभको कराय ॥८६॥ जे बहिरातम
हैं ज्ञान अन्ध, ते बहु पापाश्रव करें बन्ध। संवर आदिक
जो तत्वसार, तिनको स्वामी मुनिगण निहार ॥८७॥ ये
सात तत्व पुन पाप थाय, ये नव पदार्थ जिनवर बताय।
इन तत्वनकौ श्रद्धान ठान, ये मोक्ष महलके हैं शिवान ॥८८॥
करहै निश्चै शुध चित्त लाय, ताकौ व्यवहार दर्शन कहाय।
तत्वनकौ साचौ ज्ञान होय, सो सम्यग्ज्ञान सु जान लोय
॥८९॥ जो समित सु व्रतगुप्ती लहाय, सब दूषण तज
तिनकौ धराय सम्यक्चारित्र सोई बखान, शिवसुर पदवी
कौ है सु खान ॥९०॥

त्रोटक छन्द

यह रत्नत्रयको भेद कह्यो, सो सर्व विध सुखकार गह्यो।
यह रत्नत्रय व्यवहार सही, निश्चयको कारण जेम मही ॥९१

पुद्गल आतमको भिन्नपनौ, श्रद्धे सो निश्चय दर्श मनौ ।
निज आतमको जब वेदत हैं, परकी चिंता सब छेदत है ।।९२
सो निश्चय ज्ञान प्रमाण धरो, सुन चारितको अब भेद खरौ ।
अपने आतमको जो भजना अरु सर्व विकल्पनको तजना ।।९३
सो निश्चय चारित आदरनौ, जो मुक्ति सखीको तुम परनौ ।
इम रत्नत्रय द्वय भेद गनौ, सबहो सुखकारन बेग ठनौ ।।९४।।

दोहा–जो भव पहले शिव गये, अथवा जो अब जाह ।
तथा सु आगे जाहिंगे, रत्नत्रय परभाह ।।९५
मुक्त मारग यह सत्य है, सुख अनंतकी खान ।
जो इसको धारण करे, पावे पद निर्वाण ।।९६

गीता छन्द

जो तीव्र विषयाशक्त नर हैं सब विशन सेवे सही, जिनके जु तीव्र कषाय हो है धरे मिथ्याचार ही । जिन धर्म बाहिज जीव ऐसे मुक्त बहु आरंभ गही, ऐसे जु पापनके करें नर जाय सप्तम नरक ही ।।९७।। माया जु चारी अरु कुशीली अव्रती जो जानिए, परके गठनमें चतुर लेश्या नील जिन परमानिए, खोटे जु मतके धरनहारे निंद्यकर्मी मानिए ते आर्त ध्यान थकी मरण कर पशुगतिकौ ठानिये ।।९८।। जे शीलवान आचार निरमल महाव्रतकौ पालहैं, अथवा अनु-व्रतको धरे वृष ध्यानमें नित रत रहैं । जिन भक्ति पूजन करे नितही अरु कषाय जु मंद हैं, इत्यादि पुनको जे करे ते स्वर्ग-गति वेगी लहैं ।।९९।। ये धर्म मार्दव धरणहारे अल्प आरंभको

करै, जो अल्प आरंभ धार श्री जिनराज भक्ति उर धरे। करने न करने जोग जान तू श्रेष्ठ कारज आदरे, शुभ ध्यान-सेतीदेह तजके मनुषगतिकौ सो वरे ॥१००॥ श्रद्धान नास्तिक दुराचारी जो मिथ्याती जीव है, जिन मार्गसेती हो अपूछे इंद्रियोंके वश रहै, शुभ धर्म पथको छोड़ करके अन्य मारग जे गहैं, ते रुले बहु संसार माह निगोदके बहु दुख सहे ॥१०१॥ जे राग वर्जित सदाचारी रत्नत्रय भूषित महा, दीरघ तपसी निः कषाय सु इंद्रियांसे जय लहा। भयभीत भवतें सदा रहते करत संवर निर्जरा, इत्यादि उत्तम करम कर तिन मुक्त पद सहजे वरा ॥१०२॥

चौपाई

द्रिष्ट विषं जो ईर्षा करै, निज नेत्रोंका मान जु धरे।
तिय योनादिककौं निरखाय, ते मरकर अंधे उपजाय ॥१०३
खोटे तीरथ गमन जु धरे, पगकर परकी ताड जु लड़े।
इच्छापूर्वक जहां तहां जाय, सोई जीव पांगुले थाय ॥१०४
यत्नाचार करे नहीं कदा, हस्त पैर पर भंजै मुदा।
ते जिय मर विकलांगो होय, द्वि त्री चतु पंचेन्द्रिय सोय ॥१०५
हीनाचरण रहित जो जीव, परकी रक्षा करे सदीव।
ते संसार तने सुख पाय, धर्म कर्मके थानक थाय ॥१०६॥
इस बिध प्रश्न जो चक्री किये, तिनके उत्तर जिनवर दिये।
कालभेद द्वै षट विध कहौ, भवि जीवनमें सब सरदहो ॥१०७
उत्सर्पिणीमें बढ़ते जाय, आयु काय बल सुक्ख सदाय।
अवसर्पणिमें घटते जान, इन द्वै भेद कहे भगवान ॥१०८

अवसर्पिणी जो अब बताय, ता बिच काल कहे षट भाय।
सुषमा सुषमा पहलो अखो, सुखमें सुख सब जीवन लखो ॥१०६
चव कोटाकोटी सागरा, सर्व दुखसे रहित सुखरा।
भोगभूमि उत्कृष्ट सु जहां, जुगल साथ उपजै शुभ तहां ॥११०
तीन पल्यकौ आयु प्रमान, सब तिय पुरुषनकौ सम ठान।
तप्त कनक सम प्रभा महान, तीन कोसको देह उचान ॥१११
दिन त्रय गये लेय आहार, बदरीफल सम सुख करतार।
नही निहार कदाचित करे, रूप अनोपम अद्भुत धरे ॥११२
पुरुष स्त्री मिल भोगे भोग, पात्रदानके पुन्य संजोग।
कल्पवृक्ष जहां दस परकार, तिनकौ दियो भोगवे सार ॥११३
पुरुष जंभाई तियको छींक, मर्ण समैं आवे है ठीक।
मंद कषाय देवगति लहे, दुतियकाल बर्नन अब कहें ॥११४
सुखमा नाम जास उच्चरा, कोडाकोडी तीन सागरा।
भोगभूमि हैं मध्यम जहां, चन्द्रवर्ण हैं मानुष तहां ॥११५
दोय कोसकी काया कही, दोय पल्य जीवन शुभ लही।
बज्रवृषभ नाराच जु नाम, संहनन सोहै सब सुखधाम ॥११६
लेय बहेडेकी उन मान, जो आहार छह रसकी खान।
दो दिन पीछे असन कराय, मरकर सबही सुर पद पाय ॥११७
त्रयकालको वर्णन सुनौं, सुषमा दुषमा नाम जु भनौ।
भोगभूम जहां जघन रहाय, आदि सुख अंतम दुख थाय ॥११८
कोडाकोडी सागर दोय, काल तनौ मरजादा होय।
एक कोसको होय शरीर, श्याम प्रयंगु समानौ धीर ॥११९
इक दिन अन्तर लेय आहार, दिव्य आंवले सम निर्धार।

कल्पवृक्षसे सब सुख लहे, एक पल्यकौ आयु सु गहे ॥१२०

अडिल्ल छंद

तृतीयकालमें पलकौं अष्टम भाग ही, शेष रहे तब कुलकर उपजन लाग ही। भोगभूमियोंको हितकारक उपजिये, सबी चतुर्दश जान प्रथम प्रत श्रुत भये ॥१२१॥ स्वयंप्रभा जिस राणी गुणकी खान ही, स्वर्ण वर्णतन जान महा बुद्धवान ही। अष्टादस सत धनुष तनौ ऊंचो सही, ऐसो जान शरीर तेज जिम भान ही ॥१२२॥ पल्य सु दसमें भाग आयु तसु जानिये, जोतिरांगके कल्पवृक्ष परमानिये। तिनकी मंदी जोति भई भूमैं जबै, तब आकाशमें चन्द्र सूर्य लखिए सबै ॥१२३॥ भय धरके प्रतिश्रुत कुलकर पै सब गये, सो बुद्धवान सरूप सर्व कहते भये। शशि सूर्यादिक देव गगनमें रहत है, कल्पवृक्ष ह्वै मंद तबै ये दरस है ॥१२४॥ तुम कोई भय मत करो तुमे दुखको नहीं, पल अस्सीमो भाग गये दूजो लही। सन्मति नामा कुलकर उपजौ तन सही, सतक त्रयोदस धनुष देह जिसने लही ॥१२५॥

दोहा—पल्यतने सत भाग कर, तामें इक बढ़ आय।
यस्ववती जिस नार है, हेमवर्ण सुखदाय ॥१२६॥

अडिल्ल छन्द

जोतिरांगके कल्पवृक्ष सब ही नस गये, नभमें ग्रह तारादिक सब ही दरसिये। तिन देखत भय मान गये कुलकर नखे. कहत भये महाराज आज तारे दिखे ॥१२७॥

जोगीरासा

तिनके भय नाशनके कारण, कुलकर एम कहाई, ताराग्रह आदिक ये नभमें भ्रमण करे जु सदाई। इनसे तुमको भय नहीं होहै, इन करि निश दिन थाई। ऐसे बच सन्मतके सुन कर सबही निज गृह जाई ॥१२८॥ जो कोई दोष करे तो कुलकर हा इम दंड कराई, पल्य अष्ट सत भाग करो जहां तामें एक बिताई। क्षेमंकर मनु जन्म लियो तहां तिया सुनंदा ताकी, अष्ट सतक धनु उच्च देह है कंचनसम दुति वाकी ॥१२९॥ पल्यतने जु सहस्र संख्यवट कीजे जो बुद्धिवाना, तामे तैं इकबट गह लीजे इतनी आयु सु ठाना। तास समयमें सिंघादिक जिय क्रूरपनो उपजाई, तब सबही जन विकल होयके कुलकरके ढिग आई ॥१३०॥ पहले तो हम इन बनचरसे क्रीड़ा करत सुखदाई, अब ये क्रूर भये मुख फाड़े अरु नखसे नोचाई। तब मनु कहत भये इन सबते काल दोष तुम जानौ, इन विश्वास कदाचि न करनौ इनतें दूर रहानो ॥१३१॥ जो कोई जन करै दोष कछुहाइ ति दंड गहाई, पल्यतने अठ सहस भाग कर एक भाग अरु जाई। तब कुलकर उपजो बड़भागी क्षेमंकर सुखदाई, ताकी बिमला राणी अठसत धनुष देह सु ऊंचाई ॥१३२॥ पल्य सहस वसु भाग करो तिस आयु एक बढ़ जानौ, तिस समय बहु जीव क्रूर ह्वै तिनसे सब डर पानौ। कुलकरके कहनेतें तबही लाठी आदि रखाई, जो कोई दोष करै नरनारी तो हा दंड दिखाई ॥१३३ पल्य तनौ अस्सी सहस्र बढ़ और गयो सुखकारी, सीमंकर मनु उपजे तब ही मनोरमा तसु प्यारी। धनुष सातसे पंचास

जाकी देह कनक सम धारी, पल्य लक्ष इक भाग आयु है दंड दियो महा भारी ।१३४।। कल्पवृक्ष तब बिनस गये बहु मंद जु फलको देवै, विसंवाद तब करन लगै सब आपसमें बहु भेवै। तब सीमा बांधी कुलकरने, झगड़ो दियो मिटाई, पल्यतने लख अष्ट भाग कर इक बट जब बीताई ।।१३५।। सीमंधर कुलकर जो उपजो, वर्ण सुवर्ण धराई त्रया धारणी कोपत जानौ हा मा नीत चलायी। पल्य तने दस लख बट कीजै आयु एक बट जाकी, पण विसत अरु सप्त शतक धनुष देह उच्च शुभ ताकी ।।१३६।। कल्पवृक्ष बहु मंद हुवे तब काल दोष कर जब ही, तब वो आरज विसंवाद बहु करन लगे मिल सब ही। तिनकी सीम करी जब कुलकर सबकी कलह मिटाई, पल अस्सी लख भाग जु कीजै ता मध्य एक बिताई ।।१३७।। विमल जु वाहन नाम सु जाकौ कुलकर सो उपजाई, सुमति स्त्रीको भर्ता कहिये हेमकांत मन भाई। सप्त शतक धनु उच्च शरीर जु हा मा नीत चलानौ, पल्यतने शुभ भाग कोट कर आयु एक बट जानौ ।।१३८।।

छन्द पायता

तिन गज आदिक असवारी, अंकुश आयुध कर धारी।
पल्य आठ कोट बढ़ कीजै, तिसमें इक भाग सु लीजै ।।१३९
इतने दिन बीते जब ही, शुभ कुलकर उपजे तब ही।
जिस नाम सु चक्षुष्माना, तिस नार धारणी जाना ।१४०
छस्सै जु पिछत्तर धनुकी, इतनी काया उस मनुकी।
दस कोट भाग पल कीजे, इक भाग सु आयु कहीजे ।।१४१
तिस वर्ण प्रियंगु कहाई, निज पुत्र तबै दरसाई।

सब आरज तब भय पायो, सब मिल कुलकर ढिग आयो ।।१४३
मनु तिन भय दूर कराई, कहा तुम इन पालो भाई ।
तिन सार्थिक नाम धराई, फुन हामा नीत चलाई ।।१४३।।
इक पलके भाग सु जानौं, अस्सी जु कोट परमानौ ।
इक भाग और बीताई, तब ही कुलकर उपजाई ।।१४४।।
तीस नाम यशस्वी थाई, तिय कांति माल सुखदाई ।
साढेछस्सै धनु तुंगा, जिस काय हरित शुभ रंगा ।।१४५।।
पल्य भाग कोट सत जानौ, इतनो तिस आयु सु मानौ।
तिन हा मा नीत प्रकाशी, सो प्रगट हुवे जस राशी ।।१४६।।

गीता छंद

पुत्री सुतनको सकल मिलकर जाति कर्म सबै करै,
कितनेक दिन तिन पाल करके काल लह तन परहरे ।
तिसके जु पीछे पल्य अठ सत कोट भाग गये सही,
अभिचंद्र कुलकर ऊपनो तिन श्रीमती तिरपाल ही ।।१४७।।
छस्सै सु पच्चिस धनुष ऊंचो काय जिसकी जानिए,
पल्य कोट जु भाग कीजे इतनो आयु प्रमानिए ।
शुभ स्वर्ण वर्ण शरीर जाकौ नीत हा मा तिनकरी,
तिस समै पुत्रादिक खिलावत करत क्रीड़ा रस भरी ।।१४८
पल्यके सु अष्ट सहस्र कोट सु बट करो सुखदायजी,
तिस माह एक जु भाग बीतो तबै कुलकर थायजी ।
चन्द्राभ नाम सु चन्द्रवर्णी तिय प्रभावति सोहनी,
षट सत धनुषको काय जानौ सबनकौ मनमोहनी ।।१४६
दस सहस कोट सु भाग पल्यके जास जीवन जानिये,
जो कोई दोष करै प्रजा हा मा धिक्कार बखानिये ।

तिनके बचनकर पुत्र पुत्री प्रीत से पालत भये,
पलके जु अस्सी सहस कोट सु भाग मनमें समझिये ॥१५०
तिस माह एक जु भाग बीते मरुद्दे देव सु नाम है,
राणी अणुपमको पती कुलकरा हुवो गुणधाम है ।
पणसै पिछत्तर देह जाकी धनुष ऊंची मन हरै,
पल्य कोट लक्ष सु भाग आयु जु प्रभा हाटक द्युत धरे ॥१५१

पद्धड़ी छन्द

हा मा धिक्कार ये दंड थाय, तव मेघतनी वर्षा लहाय ।
तब नदी जु सागर भरे जोय, तव नाव जहाज वनाय सोय ।१५२
गिरपर चढ़नेके काज जान, बनदाये कुलकरने सिवान ।
अठलक्ष कोट जो भाग चीन, ये कल्पतनै जानो प्रवीन ॥१५३
तामै इक भाग जबै बिताय, तब मनु प्रसेनजित सुगम थाय ।
साढ़े जु पंच सत धनुष तुंग, वपु जास सु सोभै जिम प्रियंग ॥१५४
दशलक्ष कोट जो भाग होई, इक पल्य तने इम आयु जोय ।
हामाधिक नीत तबै चलाय, तसु पिता अमितगति शुभ लहाय ।५५

चौपाई

सो कुलकर इकलो उपजाय, कन्या संग विवाह कराय ।
उतपत युगल तबै मिट गई, जगमें व्याह रीति जब भई ॥१५६
जरा पटल तब ही उपजाय, बालकके इन दूर कराय ।
अस्सी लाख कोट बट करौ, एक पल्यके इम चित धरो ॥१५७
तामै तै इक भाग बिताय, तब कुलकर सु नाम उपजाय ।
मरुदेवो तिन राणी कही, हेम समानी तन दुत सही ॥१५८॥
पंच शतक ऊपर पच्चीस, इतने धनुष काय शुभ दीस ।
कोट पूर्व प्रमाण जु आय, हामाधिक ये दंड चलाय ॥१५९॥

नाभ नाल तिस काल जु भई, तब इनने कटवाई सही ।
तातें इन सार्थिकजु नाम, नाम सकलने मिल रख ताम ।।१६
वर्षा बहुत भई जिहवार, गर्जे चमके तडित अपार ।
धान्य बहुत विधके तब भये, बहुत कच्चे बहु पक गये ।।१६१
सांठे गेहूं यब कंगनी, तिल मसूर अरु अलसी भनी ।
जीरा सरसों औरजु धान, मूग उड़द अरु चना प्रधान ।।१६२
कुसम कपास और सब नाज, परजाके जीवनके काज ।
ये सब वस्तु जु उत्पत थाय, कल्पवृक्ष सबही विनसाय ।।१६३
मबकौ क्षुधा लगी दुखकार, जो सब अंग जलावनहार ।
तब सबही जन आकुल थये, नाभिरायके पासजु गये । १६४
देव कल्पद्रुम सकल विनास, अब ये उपजे बहु तरु रास ।
इसमें केते तजने योग, कितने ग्रहण करे सु मनोग ।।१६५।।

लावनीकी चालमें

नाभि राजा तब उच्चरी, सुनौ तुम सब ही सुखकारी ।
किते फल तुम भोगाई, कितेयक विखवत त्यागाई ।।१६६।।
कितेयक औषध है सारा, सु बहुते ईक्षु दंड धारा ।
इने कोलूकर पिलवाई, पोकर तृप्ति होउ भाई ।।१६७।।
इसी तिनकी सुनकर वानी, सबै मनमें आनंद ठानी ।
करत परसंसा बहु भाई, नमन कर निजनिज घर जाई ।।१६८
भये कुलकर चौदह ज्ञानी, पूर्व भव विदेह उपजानी ।
ग्रहण सम्यक्तपूर्वक करही, पात्र दानादिक उर धरही ।१६९
भोग भूमि सु बंध ठानौ, पिछे क्षायक समकित आनौ ।
तहां से चय यहां उपजाई, लही सबसे अति चतुराई ।।१७०

किते जाती सु मरण पावे, अवधि ज्ञानी केते थावे ।
प्रजाहितका नियोग करते, नाम आदिक तिनके धरते ॥१७१
नाभि कुलकरके सुत थाई, वृषभ तीर्थंकर सुखदाई ।
पंद्रमे कुलकर सौ जानौ, नीति हामाधिक परमानौ ॥१७२
तास सुत भरतचक्री देखो, सोलंवो कुलकर सो पेखो ।
वध बंध आदिक दंड दीने, न्यायमारगसे सुख कीने ॥१७३॥
काल चौथो तब ही लागौ, दुखमा सुखमा जु नाम पागौ ।
दुख सुख दोनोंको धामा, कोडाकोडी सागर नामा ॥१७४॥
सहस ब्यालीस जिस मांही, बरस इतने कमती थाई ।
इते दिनको सोहै काला, कर्मभूमी तहां है चाला ॥१७५॥
मोक्ष सुरसाधनकौ कारन, कोट पूरब जीवन धारन ।
आदि मैं पंच वर्ण देहा, धनुष पणसत ऊंचौ जेहा ॥१७६॥
एकबेर करहै आहारा, एक दिन माही सुभ धारा ।
कर्म पट करते सुखदाई, चतुर्गति माही सो जाई ॥१७७॥
बहुत जिय जाते निर्वाणा, कर्म शत्रुको कर हाना ।
चर्तुविशत हो तीर्थेशा, होय द्वादश जहां चक्रेशा ॥१७८॥
होय बलिभद्र सुनो जबही, फेर नव वासुदेव तबही ।
होय प्रतनारायण जबही, रुद्र एकादस जान तब ही ॥१७९
चर्तुविस तसु कामदेवा, नवो नारद तहां उपजेवा ।
तीर्थपत जगतपूज्य स्वामी, जान निश्चै सु मोक्षगामी ।१८०
चक्रवर्ती त्रय गति पाई, मोक्षस्वर नर्क माह जाई ।
नवो बलभद्र गति जानौ, जाय सुर तथा मौक्ष ठानौ ॥१८१
कामदेवहि जो चौवीसा, होय ते शिवनगरी ईसा ।

नारायण प्रतनारायण जो, रौद्र दुर्ध्यान परायण जो ।।१८२
नेम करके नर्कहि जावे, रामश्री जिनवर बतलावैं ।
सलाकापुर बनको ऐसें, कहौ बलवीर्य जु थौ तैसें ।।१८३।।
कहे सबके जो पौराण, तप स्वर्गादिक जो ठाना ।
धर्मफल धर्म सबै कहियो, भव्य जीवनने तब गहियो ।।१८४
अबै पंचम दुखमा काला, दुखकर पूरत बेहाला ।
वरस इक्कीस हजारको है, सप्त करको तन ऊंचो है ।।१८५
आयु सत वर्ष अधिक वीसा, रुक्ष देहीके सब दीसा ।
एक दिन मध्ये द्वैबारा, करे हैं सबही आहारा ।।१८६।।
आयु बल बुद्धि घटती जाई, घटते घटते सब घट जाई ।
धर्म राजाग्नि बिन साईं, फेर षष्टम सु काल आई ।।१८७

गीता छंद

दुषमा जु दुषमा नाम जाकौ बहुत दुख पूरत सही ।
इक्कीस हजार जु वर्ष जाको थित रिषभ जिनने कही ।
जहां धर्महीन मनुष होहैं धूम्र वर्ण बखानिये ।
द्वै हस्त ऊंची काय जानौ नग्न पशु सम ठानिये ।।१८८।।
विसत वरष उत्कृष्ट आयु जु मास को आहार है ।
दिनमें अनेक जु बार खावे विलखसे अविचार है ।
तिर्यग नरक गतिसे जू आवै वहीं जाते है सबै ।
माताविसे मैथुन जु करहै भ्रष्ट मति होवे तबै ।।१८९।।
जिस काल अन्त जु काय जानौ एककर ऊंची गनौ ।
षोडश वरसकी आयु जादे उष्ण सीत अधिक भनौ ।
तिस काल अन्त विषाग्नि वर्षा होय आरज भू जबै ।
तब प्रलय पर्वत आदि हो है मनुष पशु आदिक सबै ।।१९०।।

जोड़े बहत्तर देव ग्राकर रखे बिजयारध विषें।
उत्सर्पणी जब काल ह्वहैं वृद्धि सब वसुधा लखे।
दुखमाजुदुपम आदि लेके काल छह तहां होय है।
ग्ररु सुधा मेघ जु आदि वर्षा दिन उनचस जोयहै ॥१६१॥

सवैया

पृथ्वीतलमें धान्य मनोहर उपने नाना सुख दातार।
ग्रवसर्पणीसे उलटो जानौ छहौं कालकौ जो विस्तार।
उत्सर्पिणी इस नाम जु कहिये क्रमकर वृद्ध होत सब सार।
बारहकाल सरूप इसी विध कहो जिनेश्वर सर्व निहार ॥१६२
होय चुकौ अर अब होवे हैं ग्रथवा जो होवेगा सोय।
तीन लोक बिच तत्व पदारथ शुभ ग्रर ग्रशुभ ज्ञान से जोय।
द्वादसागमें सर्व निरूपो गणधर प्रति कहियो थिर होय।
धर्म प्रवर्त चलाई जिनने तिनको मैं वंदूं मद खोय ॥१६३॥
तीन जगतगुरु सब गुणके निधि स्वर्ग मोक्षके दायक जान।
जिनके बचन भव्य जीवनको तीन काल दिखलावत भान।
लोकालोक सरूप कहो जिन स्वर्ग मोक्ष मारग दरशान।
मैं तिनके गुण गणको गाऊं दीजे निज पदको ग्रमलान ॥१६४
असम गुणनकी खान जु कहिये विश्वतत्व दरसावन हार।
तीन भवनके पतकर पूजत तीर्थनाथ तुम वृष कर्तार।
सर्व दोषकर रहित जु स्वामि आदिनाथ जिनवर भवतार।
द्वादस सभा धर्म उपदेशक ताह जजूंमैं ग्रष्ट प्रकार ॥१६४॥

इतिश्री वृषभानाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते भगवान् तत्वधर्मोपदेशवर्णनोनाम त्रयोदशमः सर्गः ॥१३॥

अथ चतुर्दश सर्ग

चाल बाईस परिषहकी

दश अतिशयधारक प्रभु उपजे, दस फुन ग्यान तनेजु महाना।
चौदह अतिशय देवन कृत हैं अनंत चतुष्टय अद्‌भुत थाना।
अष्ट प्रातहार्यन कर सोभित इम षट्‌चालीस गुण परमाना।
ऐसे रिषभनाथके पद नित, पूजत हैं हम मोद उपाना ॥१॥

चौपाई

अब भरताधिप नृप पुनवान, धर्मरूप अमृत कर पान।
जिनमुख चंद थकी सो झरो, जन्म मृत्यु विखता कर हरो ॥२
परम प्रमोद सु प्रापत होय, सम्यक क्षायक निर्मल जोय।
श्रावक व्रतकौ ग्रहण कराय, धर्मसिद्धके अर्थ जु थाय ॥३॥
पुर मितालवौं राजा जान, भरतरायकौं अनुज महान।
वृषभसैन जिस नाम बखान, सो प्रभुवानी सुनकर कान ॥४॥
काललब्धिके उदय पसाय, बाह्याभ्यंतर संग तजाय।
मुनि ह्वै कर गणधर सोभये, सप्त रिद्ध चवज्ञान सुलये ॥५॥
भव्य जीव जो थे बहु भाय, मोक्ष मारग तिनकौं बतलाय।
द्वादशांग रचना जिन करी, भवजीवनने हिरदै धरी ॥६॥
हस्तनापुर राजा कुरु बंस, सोमप्रभ अरु जान श्रेयंस।
धर्म श्रवणकर ह्वै वैराग, अंतर बाहर परिग्रह त्याग ॥७॥
दीक्षा लेकर गणधर थये, सर्व अंग रचने क्षम ठये।
और बहुत भूपत थे जहां, लह वैराग संपदा तहां ॥८॥
भगवत मुख सुन धर्म महान, दीक्षा ले गणधर पद ठान।
किंचित राय उपध सब त्याग, मुक्तिकाज मुनि ह्वै बड़भाग ॥९

भरत बहन जो ब्राह्मी कही, ताने भी शुभ दीक्षा लही।
गणनी पद ताकौं शुभ जोय, अर्यकानमैं मुख्य सु होय ॥१०॥

पायता छंद

सुन्दरी बहन दूजी है, सो ह्वै बैरागिन सही है।
इक साड़ी बिना जु सब ही, त्यागो परिग्रह तिन जब ही ॥११
वहु राजनकी जो रानी, तीर्थंकर की सुन बानी।
जिन चर्णनमें चित दीनौ, शिव हेत सु संजम लीनो ॥१२॥
श्रुतकीर्ति जगत विख्यातो, सो श्रावक वृतमें रातौं।
सम्यकदर्शन कर मंडित, सो सील धरे सु अखंडित ॥१३॥
अर अन्य बहुत भव प्राणी, तपकौ शुभ भार धराणी।
कितने समद्रष्ट जु थाई, कितने अणुव्रत गहाई ॥१४॥
प्रियदत्ता श्रावका जानौ, सब तियमैं मुख्य सु जानौ।
द्रिगव्रत शीलादिक धारे, श्रावक के जो सुखकारे ॥१५॥
वहुते जन जपतप कर ही, शुभ शील भावना धर ही।
मुनि वीर्य अनंत जु नामा, तिन कर्म हते बल धामा ॥१६॥
फुन केवल ज्ञान उपायो, जिस कर सब जग दरसायो।
इन्द्रादिक पूजा कीनी, पहले तिन मुक्त जु लीनी ॥१७॥
कच्छादिक भ्रष्ट मुनिजे, तिनने जिन वचन सुनी जे।
पथ मुक्त तनो जु लखाई, सबही जु कुलिंग तजाई ॥१८॥
बाह्याभ्यंतर परिग्रह छारे, जिनमुद्रा धर तत्कारे।
भगवत पोतो जु मरीचा, सुर हो मिथ्यात सुवीचा ॥१९॥
केचित मृगेन्द्र सर्पाई, तिनकाल लब्धि जो आई।
दर्शन अरु व्रत धराई, श्रावक पदवी तिन पाई ॥२०॥

पद्धड़ी छंद

देवी सुदेव जे वचन काय, अरु मनुष पशु आदिक सुथाय।
जिनवर शशितें अमृत झराय, सो काललब्धि वस सब पिवाय
॥२१॥ पीकर मिथ्या मन वमन कीन, जो नर्क थान कारण
प्रवीन। दृग रत्नतनो प्रापत कराय, फुनि अन्त मुक्ति पदवी
लहाय ॥२२॥ इम वचन जु सुनकर भव अनेक, मोहारि
हतो तिन ह्वै विवेक। तब भरतराय कर नमस्कार, निज-
पुर प्रति कीनो गमन सार ॥२३॥ फुन बाहुबली आदिक
जु शेष, निज योग सुव्रत धारे नरेश। पूजा करके फुन नमन
ठान, निज निज ग्रह प्रति कीनो पयान ॥२४॥

चौपाई

भरतराय जब जाते भये, सब जनके जु क्षोभ मिट गये।
दिव्यध्वनि होती रह गई, प्रथम इन्द्रने भाषा चई ॥२५॥
दोनों हस्त हृदय पर धरे, बारबार सु प्रणमन करें।
उठकर सभा मध्य हरि जबै, आरंभ कीनी अस्तुत तबै ॥२६
नाम स्थापना द्रव्य सु जान, क्षेत्र काल अरु भाव महान।
इम चव विधि निक्षेप कहाय, सो छै भेद अस्तुतके थाय ॥२७
तुम हो आदि देव गुण धाम, अष्टोतर सहस्र गुन नाम।
तुम जिनेंद्र जिन धोरी कही, जिन स्वामी जिनाग्रणी सही ॥२८
जिन शार्दूल जिनेश जु कहो, जिनाधीश जिन उत्तम गहो।
जिनराजा जिनजेष्ट बताय, श्री जिन जनपालक सुखदाय ॥२९
जिनश्रेष्ठी जिननाथ सुधीर, जिन उन्नत जिनमल्ल सुबीर।
जिन नेता जिन श्रेष्ठा सार, जिनादित्य जिनदेव संभार ॥३०
जिनपति जिन सु जिनेश्वर सूर, जैनेश नाम युगगण भरपूर।

जिनाराध्य जिन पुंगव सही, जिनाधिपो जिन अच्चो गही ॥३१

तोटक छंद

जिन मुख्य जिनार्च सुवीर कहो, जिन सिंघ जिनेंद्रिन नाम गहो । जिनप्रेक्षा वृद्धि जिन उत्तर है, जिनमान्य जिनास्तुत योग्य सहै ॥३२॥ जिनप्रभू जिनेन्द्र नाम तुही, जिनपूज्य जिनाकांक्षी जु तुही । जिनेन्द्र तुही जिनसत्तम हो, जिनतुंग तुही जिन उत्तम हो ॥३३॥ जिन यो जिनकुंजर नाम मनो, फुन जिनाकार जिनभृत सुनौ । जिनभर्ता जिनचक्री सु लखो । फुनि जिनाग्रह जिन आद्य अखो ॥३४॥ जिन-चक्रभाक जिनसेव्य तुमो, फुन जिनाकांत तुम अक्षदमो । जिनप्रीत जिनाधिप जिन प्रिय हो । जिनधूर्य जिनागम नाम कहो ॥३५॥ अधिराट जिननके सत्य सही, आरत हर प्रस्तुत योग्य तुही । जिनहंस जिनत्राता जु नमो, जिनधृत जिनचक्र सु ईस पमो ॥३६॥ जिनऋषी जिनात्मक नाम ठनौ, जिनदातृ जिनाधिक सर्व भनौ । जिनशांत जिनालक्षो गनिये, जिन आश्रित जिन उत्कट भनिये ॥३७॥ जिन आह्लादी जिनतर्क कहा, जिन स्वामी जैन पिता सु महा । जैनाडए जैन संघार्चित हा, फुन जैनोजनकौ पालत हो ॥३८॥ सुजिताक्ष तुही जितकाम तुही, सुजिताशय जिनकंदर्प सही । सु जितेंद्रिय जितकुर्मारि गनौ, सुजितारि सुबल जितशत्रु भनो ॥३९॥ अक्रोध अलोभ जितात्मक हो, न राग न द्वेष न मौह गहो । नहि शोक न मान न दुर्मति है, सब वादी वृंदन जीतन है ॥४०॥ जयो जिन क्लेश सुखेद जयो, आरत परणाम सु मूल गयो । पति नायक यतिपत

पूज्य सही, यति मुख्य यति स्वामी जु तुही ।।४१।। यतिप्रेक्ष यतोश्वर यतीवर हो, यति श्रेष्ट सुजेष्ट हितंकर हो । योगींद्र योगपति योगीसा, योगीश्वर योग सु पारीसा ।।४२।।

अडिल्ल छन्द

योगा पूज्य योगांग योग वेष्टित सहो, योगिसु भूपति जान योगिकृत है सही । योग मुख्य नमन मू योगभृत जानिये, है सर्वज्ञ जु सर्व लौकको ज्ञान है ।। सर्व तत्व वितसर्व सुव्रक अमलान है ।।४३।। सर्व चक्षु सब राय सर्व अग्रम गनो, सब दर्शन सर्वेश सर्व जेष्टहि भनो । सब धर्मांग महान सर्व जगद्धितो, सर्व धर्ममय सर्वगुणाश्रत संजुतो ।।४४।। सर्व जीवको दया करौ तुम ही सदा, विश्वनाथ तुम श्रेष्ठ विश्वविद जितमदा । विश्वा हो विश्वात्म विश्वकारक नमूं, विश्वबांधव जाननमें सब दुख वमूं ।।४५।। विश्वेट विश्व पिता सु विश्वधर नाम है, विश्वव्यापी अभ्यंकर गुण धाम है । विश्वधार विश्वेस विश्वभूमिय महा, विश्व-धीर कल्याण विश्वकृत जो गहा ।।४६।। विश्ववृद्धि अरु विश्व सु पारग जो कहा, विश्व सु रक्षणहार विश्वपोषक महा । जग कर्ता जग भर्ता जग त्राता गनौ, जगतमान्य जगजेष्ट जगतश्रेष्टो मनो ।।४७ जगज्जयी जगपती जगन्नाथो कहो, जगद्धतो जगध्येय जगतत्राता गहो । जगतसेव्य जग-स्वामी जगतपूज्यो सदा, जगत् सार्थ जगहितू जगद्वर्ती बदा ।।४८।। जगच्चक्षु जगदर्शी जगतपिता वरो, जगत्कांत जग-जीत जगद्दाता धरो । जगज्जात जगवीर जगद्धीराग्रणी,

जगतप्रात महाकृती महाज्ञानी भनी ॥४९॥ जगत्प्रिय महा-ध्यानी जान महाव्रती, महार्थज्ञ महाराज महातेजो जिती। महातपा महाक्षांत महादम जानिये, महादात महाशांत महाबल ठानिये ॥५०॥ महाकांत महादेव महापूतो प्रयो महायोगी महाकामी महाधनी श्रियो, महायशस्वी माहसूर सुभटो महा। महानाद महास्तुत्य महामह पति कहा, महाधीर महावीर महाबंधू गनो ॥५१॥ महाकार महासर्म महासर्मा ठनो, महासुयोगी जान महाभोगी भयो, महाव्रतको धार महीधरजी थयो ॥५२॥

गीता छंद

महाधुर्य अरु महावीर्य जानो महादर्शी प्रभु तुही, तुम महाभर्ता महाकर्ता महाशील सुगुण मही। प्रभु महाधर्मी महामौनी महामेरु महाव्रतो, तुम महाश्रेष्टी महाख्यात सु महातीर्थ महाहितो ॥५३॥ तब महाधन्य सु महाधीश्वर महारूप महामुनि, महाविभु महोकीर्तिक कहिये महादाता महागुणी, महारत महाकृषा कहिये महाराध्य महापति, तुम महाश्रेष्ट महार्थकृत हो महाक्षारि जगत्पती ॥५४॥ फुन महालोक महान नेत्र महाश्रमी जगबंद हो, शुभ महा योग्य महाशमी सु महादमी वृषचंद हो। प्रभु महेश समहेश आत्मा महेशन कर पूज हो, फुन महानंत महेश राजा महातृप्ति सदा रहो ॥५५॥ तुम महाहर महावर जु कहिये महर्षि मन आनिये, प्रभु महाभाग महा जु स्थानी महांतक परवानिये। तुम महा केवललब्धि स्वामी महाकार्य बखानिये, शुभ महाशिष्ट सु महातिष्ट सु महाबक्षहि जानिये ॥५६॥ वर

महाचल महालक्ष जानौ महार्थज्ञ सु ठानिये, विद्वान महार्बल कहिये महात्मक सो मानिये। तुम हो महावादि महेन्द्रार्चो महानुत हो सही, परमात्मापर आत्मज्ञ सु परं जोती तुम गही ॥५७॥ पर अर्थ कृत परब्रह्मरूपो परम ईश्वर देव हो, तुम हो परार्थी परम स्वामी परम ज्ञानी वे वहो। परकार्य धृत फुन सत्यवादी पराधीन सु नाम हौ, तुम सत्य आत्मा सत्य अंग सु सत्य शासन धाम हो ॥५८॥ फुन सत्य अर्थ जु सत्य वागीशा जु सत्य धरो सदा, सत्यासत्य विद्वेस तुम हो सत्य धर्मासत वदा। सत्याशयो सत्योक्त मत हो, तुम ही सत्य हितंकरा। सत्यारुत्य सु तीर्थ तुम सत्यार्थ शुद्ध तीर्थंकरा ॥५६॥

जोगीरासा छन्द

सत्य सोमंधर धर्म प्रवर्तक लोकनाथ तुम सेवे, लोकालोक विलोकन तुम ही तुम सेवा शिव देवे। लोक ईस तुम लोक पूज्य हो लोकनाथ सुखकारी, लोक पालनेहारे तुम ही मंगल के करतारी ॥६०॥ लोकोत्तम तुम लोकराज हो तीर्थंकार तुमसो हो, तीर्थेश्वर तीरथ भूतात्मा तीर्थ भाक मन मोहो। तीर्थाधिश हितार्थात्मा हो तीरथ नये करानै, तीर्थ आद्य तीरथके राजा तीर्थ प्रवर्तक छाजै ॥६१॥ निःकर्मा निर्मल सु नित्य हो निरबाध हितकारी, निर आमय निर उपमा जानौ भवजनके मनहारी। निष्कलंक निर आयुध कहिये हैं निर्लेप महानौ, निष्कल अरु निर्दोष बखानो निरजरा गुणी जानौ ॥६२॥ निःस्वप्नो निर्भय अतीव है निःप्रभाव हैं तामा, निर आश्रय निर अम्बरस्वामी अनंत गुणन के धामा।

निरांतक निर्भूष जु स्वामी, निर्मल आश्रय कहिये। निर्मद निर अतीचार बिराजै मोह नहि तिन गहिये ॥६३॥ निरुप-द्रव तुम निर विकार हो निराधार पहचानौ, पाप रहत तुम आस रहित हो र्निनिमेष चख ठानौ। निराकार निरतो निरतिक्रम निवेदो कह गावै, निष्कषाय निर्बंध सुनिस्प्रह विराजक तुम घ्यावे ॥६४॥ विमलात्मज्ञ विमल विमलांतर विरतो विरतांधोशा, वीतराग जित मत्सर तुमही तुम ध्यावै जोगीसा। विभवो विभवांतस्थ तुमी हो विस्वासी तुम देवा, विगताबाध विशारद तुम ही करे सुरासुर सेवा ॥६५॥ धर्मचक्र धर धर्म तीर्थंकर धरमराज तुम ही हो, धर्म मूर्ति धर्मज्ञ धरमधी धर्म तनी सु मही हो। मंत्र मूर्ति मत्रज्ञ जु स्वामी तेजस्वी तुम पाई, तुम ही विक्रमी तुम ही तपस्वी संजम रीत बताई ॥६६॥ वृषभो वृषभाधोशो तुम ही वृष चिह्नौ भगवंता, वृषा कर्तु तुम वृषाधार हो वष्टभद्रो अरिहन्ता। ईश्वर शंकर मृत्युंजय तुम ज्ञान बक्ष कहावौ, अनागार यति मुनी शिरोमणि पुरुष पुराण महावो ॥६७॥ अजितो जित संसार तुम्ही हौ, सन्मति सन्मति दाता, तुम क्षेमी क्षेमंकर कुलकर कामदेव के घाता। विघन रहत निश्चल तुम ही हो सबके ईसा, तुम अछेद्य अभेद्य तुम हो तुम तिष्टो जग सीसा। सूक्षमदर्शी कृपामूर्ति हो कृपाबुद्धिको धारो, इत्यादिक इक सहस अष्टये नामसु उरमैं धारो ॥६८॥

पद्धड़ी छंद

इस अस्तुतको फल एम जोय, ये नाम सुमेरे सर्व होय। इन नामनको जो नित पठाय, सु ताके घर मंगल नित रहाय ॥६९

तुमरी प्रतिमा की पूज ठान, अरु नमन करै जो धारि धान। ते श्रेष्ट पुन्य लहकर सदोव, शिवरमणीके होवै सुपीव ॥७० साक्षात तुम्हारे रूप जोय, जे करे स्तवन बहु मुदित होय। तिनके पुनको महिमा जु सार, कवि कौन सके निज मुख उचार ॥७१॥ औदारिक दिव्य सुदेह जान, जो जगतसार अणुकर रचान। ते परमाणु तितने ही थाय, तब तुम सम क्यों कर रूप पाय ॥७२॥ तुमरे जो धर्म तने प्रसाद, स्वर मोक्ष सोख्य पावे अनाद। निर्वाण क्षेत्र पूजा महान, जो करे भव्यजिय पुन्यवान ॥७३॥ अथवा जो पंच कल्याण माह, तुम अस्तुत करतो धर उछाह। तिनकौं सुख सार सु प्राप्त होय, फुन स्वर्ग मोक्षको सहज जोय ॥७४॥ केवल दर्शन अरु ज्ञान जान, इनकौ जो स्वतन करे सुध्यान। तिन ही गुणकर सो जुक्त थाय, इम तुम महिमा जग रही छाय ॥७५॥ मोहारितनो तुम नाश कीन, फुनि भव्यनको संबोध दीन। जगके हितकर्ता हो वृषेश, तुमको नित नमहूं हे जिनेश ॥७६॥ प्रार्थना तबै इम इन्द्र ठान, करिये विहार किरपा निधान। भव जीव रूप खेती लहाय, सो पाप धूप करि सूक जाय ॥७७॥ धर्मामृत तुम मुखसे झराय, तब स्वर्ग मोक्ष फलको फलाय। जब श्री जिनवर करते विहार, तब धर्मचक्र आगे निहार ॥७८॥

चाल अहो जगतगुरुकी

मोह अरीकी सैन सकल ताप उपजाई, सन्मारग उपदेश करत सु नाम कराई। इम अरजी हरि कीन जग संबोधन

कारण, सुनकर बेग विहार करत भये जग तारन ॥७९॥
तब सबकी गीरवाण जय जय नंद कहाई, दुंदभि देव बजाय
कोटक केत उड़ाई । किन्नर अरु गंधर्व नृत्य करे अरु गावै,
भानु समान बिहार बिन इच्छाजु करावै ॥८०॥ सत जोजन
परमान होय सु भिक्ष सदा ही, प्रभुके चारौं ओर होय न
रोग कदा ही । नभमें गगन कराय जात विरोध नसाई,
सिंहादिक जिय क्रूर मृग आदिक महताई ॥८१॥ जिन नहीं
करे अहार अरु उपसर्ग न होवै, प्रभु इक आनन थाय चव-
दिश चवमुख जौवै । सब विद्याके ईश तनकी नहीं परछांही,
नेत्रनकी टिमकार सो नहीं होय कदाही ॥८२॥ नाहि बढ़े
नख केश नहि होवे दिन राता, इम दस अतिशय होय जब
चव कर्म जु घाता । तब केवल उपजाय चौदह अतिशय
थाई, देवनकृत सो जान श्री जिन पुन्य प्रभाई ॥८३॥ अर्द्ध
मागधी भाष श्री जिनका जु खिराई, सकल अर्थ दर्शाय
दीपक सम सुखदाई । सब जिय मैत्री थाय गज सिंघादि
अनेका, सर्प नकुल इक ठाम बैठे धार विवेका ॥८४॥ गोसुत
निज सुत जानि सिंघन दूध पिलावै, सब रितुके फल फूल
एके काल फलावै । दर्पण सम है भूमि पिछली पवन सुहावै,
सबको परमानन्द धर्म सर्म सु बढ़ावै ॥८५॥ पवनकुमार
सुदेव इक योजन परणामा, तृण कंटक कांटादि वर्जत
धरा कराना । गंधोदककी वृष्टि करे ते स्तनित कुमारा,
विद्युत जहाँ चमकाय इंद्र धनुष विस्तारा ॥८६॥ जब प्रभु
करें विहार चरण कमल तल थाई, कमल सुदेव रचाय

स्वर्णमई सुखदाई। सम सु पीछे ठान सप्त आगे सु रचाई, एक बीचमें जान इम पन्द्रह समझाई ॥८७॥ दोसो पच्चीस सर्व कमल जानो सुखकारी, ऊंचे अंगुल चार गमन करे हितकारी। शाल्यादिक जो धान्य सब उपजे सु जहाँ ही, ह्वै निर्मल आकाश दिशा निर्मल सु तहाँ ही ॥८८॥ इन्द्र हुकम को पाय देव सु भव्य बुलावे. आवो दर्शन हेत इम सुनकर बहु आवे। रत्नमई जु दिपंत आरे सहस विराजे, मिथ्यातम को हंत धर्मचक्र पुनि छाजे ॥८९॥ आदर्शादिक आठ मंगलद्रव्य जु सोहै, देव करे जयकार थोक देत मन मोहै। चौदह अतिशय येम जग अचंभ कर्तारा। देव करे धर भक्ति महिमा अपरंपारा ॥९०॥ चौतिस अतिशय सर्व प्रातिहार जब सु जानो, अनंत चतुष्टय धार इम छालिस-गुण ठानो। वृष उपदेश कराय बचन अमृत वर्षायो, जिन भवकर्ण सुधार मुक्ति तिन पहुंचायो ॥९१॥ दर्शन ज्ञान-चरित्र आदिक रत्न सु जोई, भव्यनको वह देय कल्पवृक्ष सम होई। देश और पुरग्राम सबमें कियो विहारा, जो अज्ञान अंधियार तमु हरकर उजियारा ॥९२॥ दिव धुन किरण पसाय मुक्ति सुपथ दर्साया, जगमें कियो उद्योत सूरजवत मन भायो। जिनरूपी जु मेघ धर्म अंबु वर्षायो, चिरके प्यासे भव्य चातक वत सु पिवायो ॥९३॥ दिव्य-ध्वनि सुभ जान जहां बिजली चमकाई, प्रभुको अंग अनूप इंद्र धनुष सम थाई। ज्ञानसु जलकी वृष्ट होत भई सुखदाई, भव्य खेतकी वृद्धि सुर शिवफल उपजाई ॥९४॥ अंग बंग

सु कलिंग काशी कौशल देशा, मालव और आवन्ति कुरु पंचाल महेशा । देश दशार्ण जु सुक्य मागध आदि विशेषा, विहरे आरज खण्ड मोक्षमार्ग उपदेशा ॥६४॥ भ्रमण कियो चिरकाल धरणीतलके माही, बहु भव्यन सम्बोध मुक्तिमें पहुंचाही । मुनि सु अर्जिका जान श्रावक श्रावकनी हैं, संघ चतुर्विध एम सब कैलाश ठनी हैं ॥६६॥ अति ऊंचो गिर सोय जास शिखर सुन्दर है, पूरववत मंडान समोसरन सुर करहै । वृष उपदेशक राय द्वादश सभा सु मांसी, त्रिजगद्-गुर भगवान सो तिष्टे सु तहां ही ॥६७॥ गणधर जिनके साथ सम्बोधे भवजीवा, आरज क्षेत्र बिहार कर कैलाश गहीवा । बंदूं सो वृषभेष जा अस्तुत सुर करहै, सो मुझको दो ज्ञान जाकर मुक्ति सुबरहै ॥६८॥

सवैया २३

तीर्थंकर पहले जो अनुपम, भव्य लोकके शिवदातार ।
असम गुणनकी निधसो जानौ, धर्म कहो जिन द्वै परकार॥ ६६

गोता छन्द

'तुलसी' जु सीता गौर जापति देखनो नीको भयो, कोई जु आयुधतान ठाडे कोई तिरिया कर गहो । उनको स्वरूप जु देखनेकर भई तुम पहचान है, तुम देखते वह कुछ जु नाहीं यह जु चितमें ठान है ॥१००॥

दोहा—बहुत दिना इस आयुके बीते तुम परभाव ।
शेष आयु प्रभु चरण ढिग, जाय यही उर चाव ॥१०१

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे सकलकीर्तिविरचिते भगवान् सहस्रनाम स्तुति तीर्थविहारवर्णनोनाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

—:०:—

अथ पंचदश सर्गः

दोहा—आदितीर्थ प्रगटाइयो, दियो धर्म उपदेश ।
जग उद्धारणको चतुर, नमूं स्वहित वृषभेश ॥१॥

अडिल्ल

अब सु चक्रधर चक्र तनी पूजा करी, श्री जिनकौ अभिषेक कियो पूजन वरी । दीन अनाथ जननकौं दान सु बहु दियो, पुत्र जन्मको उच्छव बंधुन सह कियौ ॥२॥ तब प्रयाणकी भेरी बजवाई सही, स्नान कियो फुन वस्त्राभूषण बहु गही। स्थापित रत्नने निर्मापो शुभ रथ तबै, कंचनमय मणिजड़ित महा ऊंचौ जबै ॥३॥ तिसमें ह्वै असवार चक्रनायक ठनौ, षटविध दल संयुक्त महुरत शुभ बनौ । चले दिग्विजय हेत पूर्वदिश जीतने, उद्यम कियो महान शक्र जिम कोडने ॥४॥ चकररत्नकौ तेज नभस्तल पूरियो, आगे आगे जाय सुरन रक्षित थयो । चक्र सु पीछे जान नवौनिध चलत है, नवसहस्र सुर रक्षा जाकी करत है ॥५॥ दंडरत्न ले हाथ सेनपति चालियो, आगे आगे जाय मार्ग सम कर दियो । सहस देव रक्षा उसकी करते जहां, निराबाध ह्वै सैन्य चली सुखसो तहां ॥६॥ सरदकालमें सरद जु लक्ष्मी बन रही, फूले तहां पयोज ग्रामादि ही । देखे चक्री मुद्रा शालिको खेत ही, गंगा तटपर फले लखो जल स्वेत ही ॥७ सारथि तब यों कहैं सुनो महाराय जू, गंगा बनकी बरनन जो सुखदाय जू । मच्छादिक बहु चकवे केल जहां करें, स्थापित रत्नग्रह रचो तास लखिये खरे ॥८॥

पायता छन्द

चांदीके थंभे तुंगा, तापे रच सौंध अभंगा। जो दूरथकी दिखलाई, षट मंडप सोई रचाई॥ तिस देखत जन ये जाने, मनु स्वर्ग चढन सो पाने ॥६॥ मध्यानसमयके मांही, जब भानु किरण फैलाहीं। तब छत्रारत्नकृत छाया, रथमें सवार नरराया॥१०॥ जहां राज मजूरन आई, इंटा चूनान लगाई। जो स्थापित रतन नृप घरहै, सुर सहस सुरक्षा कर है॥११ चौरासी खनको महला, वो देव बनावे सहला। जिसके बहु द्वार बिराजे, नाना रचना जुत छाजे॥१२॥ बहुजन कर दुर्गम सोई, आवे जावे बहु लोई। जहां रचिये बहुत बजारा, जहां रत्नादि व्यवहारा॥१३॥ तिस महल विषै चक्रेशा, लीला जुत कियो प्रवेशा। नृप मुकटबंध संग आये, तिन सबको भी उतराये॥१४॥ फुन चक्री कर स्नाना, पूजन कर भोजन ठाना। सुखकर तिष्टे नृपराई, सबही नृप सेव कराई॥१५॥ पूरव मंडल जो थाई। ताके सु भूप सुखदाई, तिन सब होंकों बस कीना, कन्या रत्नादिक लीना॥१६॥ इक दिनको सुन सु विधानो, परभातक्रिया शुभ ठानो। गज विजय सु पर्वत नामा, तापर चढ़कर गुण धामा॥१७ पूरब दिश जीतन काजे, उद्यम सु कियो महाराजे। शुभ चक्रदंड पुर धरहो, इस विध प्रयाण नृप करहो॥१८॥

तेगुरु मेरे उर बसो इस चालमें

चक्ररत्न जु अलंघ है, अरि समूह हरतार। दंड रतन अर दंड दे सबमें ये द्वै सार, चक्री पुन्य उदै लखो॥१६॥ सहस सहससुर रक्षते, इक इक रतन सु जान, इन सेती जय

होय है। सब चौदह मन आन, चक्री पुन्य उदै लखौ ॥२०
सेनापति कहतौ भयौ, सुन सेनाके लोग। दूर सु चलनौ आज है, नहि विलंब तुम जोग ॥ चक्री पुन्य० ॥२१॥ डेरे तीर समुद्र है, करो सिताबीकाज। चक्री तो आगे गयो, ढील करो मत काज ॥ चक्री पुन्य०॥२२॥ समुद्र तलक चलनौ सही, डेरे गंगाद्वार। इम बच सुनकर कटक सब, शीघ्र चलौ तत्कार ॥ चक्री पुन्य० ॥२३॥ मारगमें बहु देश हैं, नदी जु पर्वत थाय। बहुतेरे बन कोट हैं, तिन सबकौं जु लखाय॥ चक्री पुन्य०॥२४॥ मारगमें आये सही, जे राजा अधिकाय। रत्नादिक बहुवस्तु शुभ, नमकर भेटकराय॥ चक्री पुन्य उदै०॥२५॥ देश देश प्रत आवते, नाना विधके राय। चक्रीकी किरपा चहै, भेट सु देवे आय॥ चक्री पुन्य०॥२६॥ शस्त्र लियो नहीं हाथमें, नाही धनुष चढ़ाय। पूर्व दिशाको जीतियो, केवल पुन्य प्रभाय ॥ चक्री पुन्य० ॥२७॥ बनमें बनचर बहुतसे, हस्तीदंत सुलाय। बहु गज मोती लाईया देकर नम नृप पाय ॥ चक्री पुन्य० ॥२८॥ केश सु चमरी गायके, लाये अरु कस्तूर। म्लेच्छ देशके भूपति, आय नमे सब सूर ॥ चक्री पुन्य० ॥२९॥ चक्रीके आदेशतें, सेनापत तब जाय। दुर्ग सहस्रों साधिया, तहांके नृप जीताय ॥ चक्री पुन्य०॥३०॥ तिनकौ धन बहु लाइयों, रतन जु लायो सार। दीप अंतके राय जों, नम आज्ञा सिरधार॥ चक्री पुन्य० ॥३१॥ बहु मारग उल्लंघके सब ही सेना संग। निकट समुद्र

जु पहुंचिबा, गंगा द्वार अभंग ।। चक्री पुन्य० ।।३२।। महा-
समुद्रको देखियो, कठिन प्रवेश सुजान। गंगाके उपवन
विषै, सेना सब ठैरान ।। चक्री पुन्य उदै लखो ।।३३।।

चाल बंदो दिगम्बर गुरुचरनको बीनती बागोता तहां कटक
किंचित मकुच उतरो

भूमि थोड़ी जान धक्का जु मुक्की होय तहां जहां भीड़ बहुत
लहान। जंबू सुद्वीपहि वेदकांतर बहुत पादयप थाय। तिन
की पवन गंगा परसकर लगो अति सुखदाय ।।३४।। तब
सकल दल सुखमग्न होकर उतरियो हितठाम, तब चक्रवर्त
जु साधियो जो देव बहु गुणधाम। उपवास त्रय करि बैठयो
शुभडाम सेज बिछाय, शुभ मंत्र आराधन कियो। तब देवता
वस थाय ।।३५।। तिन आनकर शुभ रथ दियो, अर दिये
घोटक सार। जो जल विषं थल जेम जावै बहुत दिये हथियार,
तब चक्रवर्त सु पूज्य प्रभुको करो बहु सुखकार। सेनापति
कों सौंप रक्षा कटकको मुदधार ।।३६।। नाम अजितंजय
सुरथ है तास पर जु चढाय, जो दिव्य शस्त्रन कर भरो
बृष सुर दियो जो आय। ग्रह जेम गंगा द्वार माही गये धीर
महान, कल्लोलमाला सहित देखो क्रूर जलचर थान ।।३७।।
शुभ लवण समुद्र अगाध तिस चक्री सु गोपदमान, रथ
लसे पोत समान तब ही पुन्य उदय सुजान। चक्री तनौ
अति पुन्य गाढौ लखो भवि जिनसार, दुस्सहकौ सुनत शंका
रथ सु लीलाधार ।।३८।। निर्विघ्न रथ द्वादश सु योजन
जाय कर ठैराय, तब वज्र कांड धनुष सु चक्री छोड़ियो

मुद थाय। मानों समुद्र चलियो तथा सब जगत क्षोभ लहाय ॥ तिसना दुस्सह को सुजान शंका सुखेचर लाय ॥ ३६॥ तिस बाण मध इम वर्ण लिखये सुनौ सब जन श्रेष्ट, मुझ भरतचक्री नाम जानो बृषभ नंदन जेष्ट। पूरब दिशा मुखधार करके छोड़ियो जब बाण, सो पड़ो मागध सभा माही सर्व क्षोभ लहान ॥४०॥ मानो प्रलयको पवन सेती समुद्र प्रति कोपाय, अथवा सु भूमहि कंप हुवो सकल इम चिताय। मंत्री तबै कहते भये सुनिये अमरपति एम, इस बाणको यो शब्द हुवो अरु कारन केम ॥४१॥ जिसने जु सर य छोड़ियो कोई स्वर्गवासी देव, तिसकी जु सेवा करन चहिये यही याको भेव। इनके वचन सुनके जु मागध तबै प्रति कोपाय, कहतो भयो निज सचिव सेती तुम कहा डरपाय ॥४२॥ बहुते कहनसे काज क्या, धीरज रखो उर-माह। मम भुजा दंडनको पराक्रम देखना रणठांह ॥ इक बाण छोडन मात्र करके बस करूं मैं ताह, धनके जु बदले निधन देहूं सरनचूरू चाह ॥४३॥ मम कोप अग्नि विषें सुईंधन तासको कर बेग, तब वृद्धसुर कहते भये जासे नसे उद्वेग। हे देवको पशु योग्य नाही तुम करन इसवार, दोनों सु लोक विनासकर्ता कोप यह दुखकार ॥४४॥ कोई महा बलवान जानो जात छोड़ो वान, जिन वचन मांहि यू कहो ताकौं सुनो सु कथान। शुभ भरत नामा आदि चक्री होय है बलवान, जाकी सुकीर्ति दशो दिशामें फैल है शुभ जान ॥४५॥ अन्य हि पुरुषमें एमशक्ति बाण मोचन नाह, तुम पढ़ो इसमें लिखे

अक्षर नाम परघट थाय। इस बाणकी पूजा करौ शुभ गंध अक्षत लाय, तुम जाह आज्ञा ग्रहण करके यहो तुम सुखदाय ॥४६॥ पुन चक्रधर पूजाकरौ नातर व्यतिक्रम होय, पूज्यनसु पूजा लंघने करदुःख होय व होय। इम तास वच सुनकर सु मागध स्वस्थताकौ पाय। शुभ ज्ञान अवधि थकी सु लख के इम विचार कराय ॥४७॥ इम कुल विषे जो देव हुवौ करत चक्री सेव, अब प्रथम चक्री यह भयौ जिस नाम भरत लखेव। तिसकी सु जान उलंघ आज्ञा इसी भव लह मोख, त्रिजगत प्रभुकौ पुत्र कहिये त्रै पद धर गुण कोख ॥४८ इक इक सु पदवी धार पूजन जोग होवे संत, यह त्रपद धारक इने क्यों नहि पूजिये बहु भंत। इम समझ बहु सुर साथ ले मागध चलो तत्काल, भरतेश पास सु जायकर जुग जोड़ नमियो भाल ॥४९॥ जो बाण चक्रीने सु छोड़ो ताह सुर सिरधार, रत्नन पिटारी माह रखकर लाइयो निजलार। सो बाण चक्रीकौ दियौ अरु एम वचन कहाय, तुम चक्र उत्पत जब भई तब हमें आवन थाय ॥५०॥

त्रोटक छन्द

अब मुझ अपराध क्षमो सब हो, इम कह बहु रत्न दियो तब ही। जो सूरजको समजो तलसे, मुक्ताफल थूल दिये जु इसे ॥५१॥ कुण्डलको जोड़ो भेट करी, तिस क्रांत थकी दिश सर्व भरी। अपने सेवक मध मोह गिनौ, जो आज्ञा हो मैं वेग ठनौ ॥५२॥ इम कहकर देव नमाय जबै, सत्कार सुलह ग्रह जाय तबै। तिस कारजको करके सु जहां भरतेश फिरे उलटे सु तहां ॥५३॥

पद्धड़ी छन्द

अंबुध मध बहु आनंद पाय, बहु थूल मत्स आदिक लखाय।
नाना कौतूहलको सुठान, निर्विघ्न चले अति पुन्यवान ॥५४
तब महासमुद्र उल्लंघ कीन, गंगा सुद्वार आये प्रवीन।
तहां खड़े सजन भूपत जु थाप, जय हो नंदो इम सब कहाय॥५५
आनंदित हो निज थान आय, प्रवेश कियौ निज कटक जाय।
तहां नृप सामंतादिकसु आन, बहु जयजयकार कियो महान॥५६
निध रत्न आदि सबही गहाय, सब जन सुपुण्य फलको लखाय।
मघवा समान लीला सुधार, निज गृहमें कर प्रवेश सार ॥५७

गीता छन्द

तब वृद्ध नप आनंद हो सामंत स्वजनादिक सबै।
देते भये सु असीम बहुती चक्रवर्ती कौ तबै।
नन्दो सु वृद्धौ चिरंजीवौ एम सब कहते भये।
पुन चक्रधर पूजा करन अर्हंत मन्दिर में गये ॥५८॥

अडिल्ल

तब प्रयाणको पटह सु बजवायो सही, पूर गयो नभ अंगन अरु सारी मही। दक्षिण दिश जीतन उद्यम चक्री कियो, सेन्या ले सब संग खेचर भूचर लियो ॥५६॥ एक ओर तो लवण समुद्र सु जानिये, एक ओर उपसागर खाड़ी मानिये। तिन मध चक्री सैन चलत शोभाय है, मानो तीजो समुद्र चलौ यह जाय है ॥६०॥ हस्ती रथ अरु अश्व पयादे सोहते, देव और विद्याधर सब मन मोहते। इम षट विधकी सैन समुद्र तट चल रही, नीत सुजलकर आज्ञा बेल सुफल तही। ६१॥ नृपगण आदिकके मस्तक चढ़ती भई, प्रजा और

राजनकी देखी दुखमई । निज हासिल कर माफ सबै सुखिया कियौ, तब सब परजा चक्री की थुति जंपियौं ॥६२॥

चाल अहो जगत गुरु की

एक पुन्य है साथ दुजो चक्र सु जानौ, दोनौ साधक जान सैंन्य विभूति प्रमाणौ ॥ हरि प्रयाणके माह बहुते नृपत सु आवे, आज्ञा सिर पर धार नमकरके सुख पावें ॥६३॥ देश अवंती जान कुरु पंचाल जु सोहैं, काशी कौशल ठान तिनके नृप मन मोहैं । वैदर्भादिक देश इनके भूप प्रचंडा, बिना जुद्ध ही जीत दास किये बलचंडा ॥६४॥ कच्छदेश अरु वत्स पुङ्ग सु गौड विराजे, तहांके नृप सुखकार आज्ञा धर हित काजे । देश दशार्ण महान अरु काश्मीर सुजाई, मध्य विषै बहु देश सबही बस करवाई ॥६५॥ भीलनके जो देश सेनापत बस कीने, ते सब आज्ञा धारकर उर हरष नवीने । सरिता बहुत अगाध पर्वत बहु उलंघा, नाना देशन माह चक्री फिरत सुरंगा ॥६६॥ जहां जहां ये जांहि उपमा रहित जु सेना तहां नमें सब आय और कहें मृदु बैना । क्रम कर सैंन्य चलंत सुन्दर बन पहुंचाई, वैजयंत जहां द्वार लवण समुद्रको थाई ॥६७॥ तहां बन षट-त्रिधसैन उतरी अति सुख पाई, कटक सुरक्षा सर्व सेनापती सो पाई । पूरववत तब जाय रथ पर होय सवारा, अम्बुधके मध जाय वैजयंत शुभ द्वारा ॥६८॥ बाण सु मोचन कीन चक्री ने तिह काला, क्षण भर में सो जाय देखो पुन्य विशाला । अब्धि सुअन्तर दीप वरतन देव जु सोहैं, व्यंतर अधिपत सोय भक्ति थकी जुत मोहैं ॥६९॥

चूडामणि जो रत्न अर कटि सूत्र जु लायो, हीरादिक बहु रत्न देकर नमन करायो। जहां चक्री जय पाय सेना थान सु आये, पुन्य उदय कर रत्न बिन उद्यम बहु पाये ॥७०॥

जोगीरासा

अब पश्चम दिशके जीतन को उद्यम कर महाराजा, पहले प्रभु की पूजा कीनी चले चमू सब साजा। रथ हस्ति अरु अश्व पयादे सब ही सैन चलाई, नदियों में कर्दम निकली जब पर्वत मारग थाई ॥७१॥ बहुते पर्वत नदी उलंघत बहुत देश मध जाई, कर प्रयाण विंध्याचल देखो नदी नर्मदा थाई। तहां तिष्टे चक्री सुख कारन जहां बनचर बहु आई। बन महोषधी गज मुक्ताफल भेट किये अधिकाई ॥७२॥ नदी नर्मदा लंघन करके पश्चिम दिश सु चलाई, तहांके सब राजनको वश कर देवन कर पूजाई। चक्र सुदर्शन ही सब राजा मनमें भय अति धारौ, चीन पट्ट अति सूक्षम देकर आराधन सुखकारौ ॥७३॥ जल थल मारग हो सेनापति बहु साधे भूपाला, जो तीर्थंकर होनेवाले तिनकी जय गुणमाला। प्रत प्रयाण जो वस्तु मनोहर रत्नादिक बहु आवे, लवलसमुद्र को सिंधु द्वार है जो देखे सुख पावे ॥७४॥ सिंधु नदी तट वन अति सुंदर तहां कटक उतरायौ, तहां सब ही जन स्वस्थ होयकर सगरे काज करायो। धर्मचक्र अधिपत जो जिनवर तिनकी पूज करंते। गंधोदक मस्तक पर धरकर जै जै रव उचरंते ॥७५॥ तव विद्यामय लेय शस्त्र शुभ रथ मांही बैठायो, मानौं पुन्य जहाज सु चढ़ियो लवणौदधि प्रति धायो। सिंधु द्वार

प्रवेश सु करके शेर छोडो तत्कारा, नाम प्रभास सु व्यंतर अधिपति तांह जीत जस धारा ।।७६।। दीप प्रभास जु नायक जानौ सो आयो इन पासा, मुक्ताफल माला अति मोटी देकर कर अरदासा । संतान जात पुष्पन की माला सो गल मैं पहराई, हेम सुमुक्ता दो जालनकर चक्री अति शोभाई ।।७७।। इंद्र समानी लीला करते सिंधु द्वार सो आई, सिंधु नदीकी शोभा निरखत निज आवास सुजाई । अब उत्तरदिश जीतन काजे उद्यम कर महाराजा, श्री जिनवरकौ ध्यान सु कीनौ पटहादिक बहु बाजा ।।७८।।

चाल अठाई पूजा की

मारगमैं जो थे राय ते सब बस कीने, विजयार्द्ध निकट तब जाय तहां डेरे दीने । प्रभु देखो गिर सु उतंग कूट सुबन सोहै, बनदेवी बहुत सुरंग देखत मन मोहै ।।७६।। तहां बरके अंतर भाग मध्य सु जान सही, पृथ्वीतल धर अनुराग चक्री तिष्टे तहीं । तहां थित चक्रीको जान सुर बिजयार्ध जबै, बहु वस्त्राभूषण ठान नमियो बेग तबै ।।८०।। चक्री सुरको बैठाय बहु सत्कार कियौ, तब निर्जर बहु सुख पाय इम वच कहत भयौ । मम विजयारध है नाम तिष्ठत कूट विषै, इस पर्वतपै सुर थाम मम आज्ञा सु लखै ।।८१ । इम कहकर समुद्र सु जाय बहु जल घट लाओ, अभिषेक कियो सुर आय बाजे बजवायो । पुन रत्नमई शृङ्गार छत्र प्रभा धारी, जुग चामर विष्टर देय कीनो मनुहारी ।।८२।। बहु रत्न सु भेंट कराय बहु थुत कर नमियो, चक्रीको आज्ञा पाय निज

आवास गयो । विजयारध जब जीताय दक्षण भरत जयौ, इम जान सुगंध मगाय चक्र सु पूजन ठयौ ॥८३॥ तहांतें सब कटक चलाय द्वार गुफा ग्राये, रूपाचल दक्षिण भाय कटकसु उतराये तहां सिन्धु नदी तट जान बन है सुखदाई, तहां प्रभु पूजनकौ ठान हस्त सु जोड़ाई ॥८४॥ सिरसे ती नमन कराय भक्त करी भारी, सुवरण मणि मुक्तक लाय पूजे भर थारी । कुंकम अर अगर मंगाय कर्पूरादि लिए बहु सुन्दर रत्न चढ़ाय जिनवर पूज किये ॥८५॥ उत्तरके जीतन काज कुरराजादि ठये, कृतमाल नाम सुरराज ग्रायो हर्ष हिये । चक्रीकौ नमन सु ठान बैठो सुखदाई, प्रभुदेव छुद्र हम जान तुछ पुन भोगाई ॥८६॥ तुम महापुन्य गोगाय देवन देव तुही, तुमकौ नरसुर पूजाय हमतौ नाम गही, मेरो कृतमाली नाम मर्म सु जानत हूं । विजयार्द्ध कूट मुझ धाम भेद बखानत हूं । ८७॥ वह गुफात मिश्रा जान द्वार सुर बोलाई, सेनापति दंड महानता सुनियौ गाई । भूषण सु चतुर्दश लाय दीने सुखदाई, फुन निज ग्रावास सुजाय नम थुत उचराई ॥

चाल करुणा लौजी महाराज सेवककी करुणा लो जिनराज

सेनापत तब बजायकै दंड सु करमें धार, द्वार गुफाको खोलियो धीरज धार ग्रपार । लखो भवचक्री पुन्य विशाल, चक्रीपुन्य विशाल लखो भवचक्री०॥८६॥ अग्नि निकली गुफा से, षट महीना सुरराय । तब तक साधे सेनपत म्लेच्छ खंडके राय, लख भव चक्री पुन्य विशाल ॥६०॥ पश्चिम दिशके

राय जो, आज्ञा सिर पर धार। फुन सेनापत आइयौ, सिंधु नदी तटसार ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६१।। राय म्लेक्षन कन्यका दीनी बहु थुत ठान, अर बहु रत्नादि दिये। सब लाये इस थान ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६२।। म्लेच्छ देशके मनुष जो, धर्म करम नहिं धार। और जात आचार सब, आरजकी सम थान ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६३।। गुफा जबै शीतल भई, तब सेनापति आय। दूर तलक अन्दर गयो, सोधन कियौ सुभाय ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६४।। चक्रवर्ति ढिग पहुंचियो, सब भूपत हैं साथ। सबही कर बहु वीनती, बहु नमायो माथ ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६५।। कन्या रत्नादिक तबै, सब नृप भेट कराय, चक्री तिन आदर कियौ, ताकर वो सुख पाय ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६६।। म्लेक्ष-रायने पाइयौ, चक्रीसे सत्कार। नमकर नृपके पदकमल, गये सु निज निज द्वार ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६७।। और दिनचक्री चले, जयहस्ती असवार। सब सेना चलती भई, बहुते नरपत लार ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल विशाल ।।६८।। सेनानी कै सोधियो, पूरब मारग जाय। तिस मारग चलती भई, सबही सेना भाय ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।६९।। रूपाचल सोपान पथ, गये गुफाके द्वार वसुयोजन ऊँचो सही, चौड़ो द्वार सुसार ।। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।१००।। वज्रकपाट सु द्वै तहां, गुफा लंबाई जान। जोजन परम पचीसकी नामत मिश्रा ठान ।। लखो

भवचक्री पुन्य विशाल ।।१०१।। अंधकार तहां बहुत है, यह चक्रीने जोय। सेनापतिसे यौं कही, रचो उपाय सु कोय, लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।१०२।। काकरिण अर मणि रत्नसे, गुफा भीतमैं थाय। दो दो शशि सूरज लखौ, प्रत योजन सुखदाय। लखो भवचक्री पुन्य विशाल ।।१०३।।

चाल बाईस परीसहकी

तिनकी प्रभा किरण जो फैली ताकरिके तम सर्व गयो है। गुफा मध्य प्रवेश कियो तब द्विधा कटकने भेद लयो है ।। सिंधु नदीके पूरब पश्चिम दोनों तट मध्य गमन भयो है। चक्र महादैदीपमान शुभ सेनापति जुत अग्र ठयो है ।।१०४।। निर्बाधा चाली सब सेना दोनौं पथ सुन्दर अधकारी। अर्द्ध गुफामें चक्री पहुंचे तहां सब सेना रुकी अपारी ।। तहां उन्मग्न जली सुनदी है अरु निमग्न जल दूजी धारी। पूरब पश्चम से वो आकर सिंधु नदीमें मिल सुखकारी ।।१०५।। विषम नदी दोनोंको लखकर चक्रसैन तहां ठैराई। सेनापतसे एम कहो जब रचो उपाउ सुबुद्ध लगाई ।। इम सुनकर जयकुमार सु बोलो बनमें तैं बहु वृक्ष मंगायी। तिनके थंभ लगाय मनोहर तापै काष्ट रास धरवायी ।।१०६।। सब कारज कीने सेनापति सेत तबै अति द्रढ़ बनवायौ तिस पर होकर सारी सेन्या नदियनसे उतरायो ।। अनुक्रमसे कैयक दिन चलकर गुफा द्वार सब कटक जु थायो। मानों गुफा इन निगल गई थी कठिन कठिनताने उगलायो ।।१०७।। गुफा माह गरमी बहु पाई तातैं खेद बहु मन आनो। बाहर

सीतल पवन लगी जब तब ही सबकौ दुख पलानौ । स्वस्थ होय तहां वनसे निबसे सेनापति तब कियो पयानो । पश्चिम म्लेच्छ खंड में जाकर तिन सब नृपको सेवक ठानौ ।।१०८।। मध्य म्लेच्छ खंड हि जीतनकौ चक्रीने जब उद्यम कीनो । कितनी दूर गये भरतेश्वर म्लेक्षरायने तब सुन लीनौ ।। इक चिलात आवर्त सु दूजो होय तयार लड़नके ताई । चार प्रकार सेन सब सजकर नृपके संग तबै चलवाई ।।१०६।। तब ही मंत्री चतुर नमन कर रण निषेध करबचन कहाई । हितकारक अरु सत्य मनोहर ऐसे वचन कहे सुखदाई ।। बिन समझे जो काज करत तिन लक्ष्मी हान पराभव थाई । इस राजाको नाम कहा है कितियक सेन कहांतै आई ।।११०।। यह सब बातें पूछन चहिए पीछे जुद्ध करन मन धारौ । रूपाचलको लंघि जु आयो सो सामान्यन भूप निहारौ ।। महत्पुरुषकर करन विरोधहि सो तो प्राणघात कर्तारौ । जो कुलदेव तुमारे कहिए तिनकौ ध्यान करौ सुखकारो ।।१११।।

चौपाई

नागासुर अर मेघकुमार, तिनको ध्यान धरौ हितकार ।
आराधन पूजा तसु करौ, तातै शत्रु हानि जय वरौ ।।११२
इम मंत्री वच सुन तत्कार, देव उपासन कीनी सार ।
तब ही आये देव तुरंत, जलदाकार उदक वर्षंत ।।११३।।
तीव्र गर्जना करते भये, महापवन सु चलावत थये ।
बहुत सुवर्षा तबहि कराय, चक्रीको दल लीनौ छाय ।।११४
समुद तुल्य सोवन भयौ ताम, चक्रीने इम कीयौ काम ।
चर्म रत्नकौ दियो बिछाय, ऊपर छत्र रत्न ढकवाय ।।११५।।

नव बारह योजन विस्तार, रही सेन श्रंडवत धार ।
चक्र रत्न उद्योत सु कीन, द्वार चार जहां रचे प्रवीन ॥११६
बाहर जयकुमार बैठाय, रक्षा जलसे करे अघाय ।
सप्त रात्रि दिन जल बर्षाय, देवन कृत सो नाहि थंभाय ॥११७
चक्रीके पुनके परभाव, सेनाको कछु खेद न थाय ।
सप्त दिवस पीछे मुद होय, स्थापित रत्न रथ रचियो सोय ।११८
तामैं बैठ जयसुकुमार, सेनापत नभ करत विहार ।
ह्वै अक्षोभ सु धीरज धार, बहु दिव्यास्त्र सु ले तत्कार ॥११६
देवन संग संग्राम कराय, जो कायर जनको भयदाय ।
कल कल शब्द बहुत तब भयो, हस्त खड्ग बहुते नृप लयो ।१२०
तब चक्रीको हुकम जु पाय, जो गण बद्ध जात सुर थाय ।
हुंकारादिक तर्जन ठान, करत भये सो युद्ध महान ॥१२१॥
जयकुमार तब पुन्य पसाय, मेघ समानौ अति गर्जाय ।
बाणवृष्ट रणमाह सु ठान, धीर सिंहवत अति गर्जान ॥१२२
पुन्य उदै कर नभके मांह, नागकुमारनको जीतांह ।
पुन्य उदय कर होवे जीत, तातें पुन्य करौ धर प्रीत ॥१२३
तबै चक्रधर मोद लहाय, मेघेश्वर इन नाम धराय ।
जयकुमारको बहु सत्कार, कीनो चक्रीने तिहबार ॥१२४॥
वीर पट्ट मस्तक बांधियौं, वीराग्रणी तबै इन कियौ ।
बाजे बहु विध तबै बजाय, मेघ गर्जकौ सो जीताय ॥१२५॥
ततक्षण म्लेक्ष नृपत सब आय, नाम चिलातावर्त धराय ।
भय धरके परणाम कराय, बहु धन भेट कियौ सिर नाय ॥१२६
फुन हिमवन पर्वत पर्यंत, बहु प्रयाण कर तहां पहुचंत ।

सिंधु नदी शुभ जहां गिराय, अनुक्रम कर सो थान लहाय ॥१२७
तहां सुन्दर बन मध्य महान, सेना सबै तहां ठैरान ।
चक्रीको तब आयो जान, देवी सिंधु आय थुत ठान ॥१२८॥

पद्धड़ी छन्द

नमकर सिंघासनपैं बिठाय, अभिषेक कियौ शुच वारि लाय । भृंगार लेय निजकर मझार, शुभ सिंधु नदीकौ जल सुढार ॥१२९॥ आशीर्वाद कह बारबार, फुन देवी निजग्रह गमन धार । फुन चक्री केई प्रयत्न ठान, पहुंचे शुभ हिमवत कूट जान ॥१३०॥ तहां शुभ स्थानकको लखाय, सेना सगरी तिस थल ठराय । तहां चक्रीने तेला कराय, अरुडाभ सेज-माही सुवाय ॥१३१॥ परमेष्टीको करके सुजाप, तब एक देव आयो सु आप । ताने सब रीत दई बताय, तिस ही मूजब चक्री कराय ॥१३२॥ निज नाम तने अक्षर लिखाय, छोड़ो इक बाण तबै सुराय । सो पहुंचो हिमवत कूट जाय, तब देवसु पुष्पांजल क्षिपाय ॥१३३॥ इकसोपच्चीस योजन सु जान ऊंचौ तिसकौ आवास मान । सो बाण गयो तिस देव पास, कंपित तिसको कियो निवास ॥१३४॥ सो सभा मांह बैठो सुदेव, तहां वज्र समानो शर गिरेव । हिमवन कुमार तिस नाम थाय, सो मागध सुरवत वेग आय ॥१३५॥ सो चक्रीसे डरकर प्रवीन, नमकर बहु थुतको वरण कीन । तुम देव मनुष विद्या धरेश, सबके अधिपत तुम हो महेश ॥१३६॥ हिमवन गिर तुम परताप थाय, अर लवणसमुद्र

में जीत पाय चक्रीको सुर अभिषेक ठान, वंदनमाला देकर नमान ॥१३७॥ आज्ञा लहकर सुर थान जाय, हिमवन गिरको नरपत लखाय। कौतूहल जुत चक्री चलाय, वृषभाचलके तब निकट आय ॥१३८॥ सतयोजन ऊंचौ सो महान, इतनो चौड़ो जड माह जान। क्रमतैं घटतो घटतो सुजाय, ऊपर पंचस योजन रहाय ॥१३९॥ कोटन चक्री बीते अशेष, लिन नामन कर भरियो विशेष। इन नाम लिखनकी ठौर नाह, इम लखचक्री चितवन कराह ॥१४०॥ यह संपत वपु अरु विषयराज, प्राणांत भये आवें न काज। जो यश करले सो थिर रहाय, तातैं इम पर्वत पे सु जाय ॥१४१॥ विख्यात हेत लिखहू सु नाम, जो यश थिर होय सदा ललाम। इम चितवन कर चक्री उदार, पहुंचौ गिर पास तबै सु सार ॥१४२

तोटक छन्द

तब काकणी रत्न सु हाथ लियो, इक चक्री नाम सु मेट दियो। तहां कोटन चक्री नाम लिखे, यह भूपतने निज नैन दिखे ॥१४३॥ तिस देखत सर्व गुमान गयौ, यह किस किसकी पृथ्वी कहियौ। किस ही की लक्ष्मी नाह रही, मुझ सम भूपत संख्याति गही ॥१४४॥ इम चितवन कर तब लेख कियो। तिस दर्शन सुन भव खोज हियो ॥१४५॥ इक्ष्वाक कुलाकाश हि गिनियो, ताको रवि भरतेश्वर भनियो। पहलो चक्री ये जान सही, श्री वृषभनाथ जिन पुत्र कही ॥१४६॥ पोता श्रीनाभ तनो वरनौ, बल विक्रमताको केम भनो। षट्खंडतने नृप सेवत ही, खग व्यंतरकी गिनती जु नहीं ॥१४७॥

दिगजीत पछे नृप आय गयो, तब निज नामाक्षर लेख कियो। इस पर्वत पै जस थाप दियो, निज कीरतको परकाश लियो ॥१४८॥

सुन्दरी छन्द

इम सु लिख करके चक्री तबै, शुभ अनुक्रम कर चलियो जबै। जहां पड़ी सर गंगा आयके, कटक संयुक्त तहां पहुंचायके ॥१४६॥ गंगादेवी तब ही आइयो, भूप सिंघासन बैठाइयो। फुन करो अभिषेक सुरी तहां, जलसु गंगामें ला जहां ॥१५०॥ कर नमन फुन तोषित नृप कियो, नंदीवर्ध सु बैरिन जीतियो। दिव्य सिंघासन तिनने दियौ, नमन कर निज थानककौ लयौ ॥१५१॥ क्रम सबै नृप म्लेक्ष तने जये, निकट विजयारध प्रापत भये। पूर्ववत सेनापत जायके, गुफा द्वार तवै उघड़ायके ॥१५२॥ म्लेक्ष राजनको फुन बस किये, नम विनम विद्याधर आगये। साररत्न जु कन्यादिक दिये, नमन मस्तकतें करते भये ॥१५३॥ नाम जास सुभद्रा जानिए, विध विवाहतनी शुभ ठानिए। रत्न पटराणी चक्री गही, और बहु तिया व्हांसे लही ॥१५४॥ छह महीनामें जय आइयो, म्लेक्ष राजनको संग लाइयौ। ते सबै नमते भये आयके, चक्रपतकौं भेट चढ़ायके ॥१५५॥

गीता छंद

तहां गुफा कांड प्रतापनामा, तिस प्रवेश कियो सबै।
पूरव गुफा बन सकल दल चक्री सु बाहर आ तबै।

तहां गुफा द्वारे बास कीनौं नाटच माली सुर तहां,
सो आपहीसे आयके पूजो सु चक्रीको जहां ॥१५६॥
बहुते रतन सुर भेट करके लेय आज्ञा घर गयो, सेनापति अदिश नृप लह जाय म्लेक्षन जीतयो। इस धर्मके परिपाकतें चक्री सकल जीतत भये, नर खचर सुरपत सर्वको षट्खंडके सब वस किये ॥१५७॥ अद्भुत निरोपम संपदा अर रत्न निध सब ही लिए, षट् विध जु सेन्या सकल पाई खेचर भूचर सब नये। फुनि रूप सुख अरु कला निध लक्ष्मी निरोपम ठानिये, यह धर्मरूप जु वृक्ष बोयो तासको फल जानिये ॥१५८॥ वृष बिना कहां सु बिभूति पावै बिना वृष नहि सुख लहे, बिन धर्म किम लह चक्र पदवी न धर्म कारज सिध नह्वै। बिन धर्म उन्नत भोग नहि। बिन धर्म कीरत नहीं चले, वृष बिना बुद्धि नाह पावें क्रांत तनमें ना मिले ॥१५९। इम जान बुधजन सकल तजकर धर्ममें रुचि धारियो, मन वचन काय लगाय व्रत नियमादि नित्य विचारियो। इस धर्मसेती सु गत होहै सकल गुण वृषसे लहै, सो धर्म मुझ भव भव मिलो प्रभु यही वांछा पुर है ॥१६०॥

इतिश्री वृषभानाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते भरतेश्वर दिग्विजयवर्णनो पंचदशमः सर्गः ॥१५॥

अथ सोलहवाँ सर्ग

अडिल्ल छन्द

दशलक्षण जो धर्म तास दातार है, सब जगके हितकार सर्म कर्तार है। धर्मतने वो नाथ सकलके गुर सही, तिने नमूं मैं वेग सकल दुख नाश ही ॥१॥ अबै सु चक्री सर्व दिशाको जीतियो, निजपुर जानेकी इच्छ करतो भयो। विजय सु पर्वत नाम सु गज ऊपर चढ़ौ, धर्म काजमें मन जाको अति ही बढ़ौ ॥२॥ क्रम करके सो पहुंचे गिर कैलाश ही, षट्विध सेना थापी पर्वत निकट ही। और नृपनिको संग लेय चलि ये मुदा, भगवतको कर ध्यान चढ़ो गिरपे तदा ॥३॥ तब चक्रीने अचरज देखोएक ही, अजापुत्रकौ सिंघनि दुग्ध पिलावही। नकुल सर्प इकठाम सु क्रीड़ा करत हैं, सब रितुके फल फूल मनोहर फल रहै ॥४॥ तिस पर्वतके भाल समोश्रत बन रहो, चक्री तिसको देख महा आनंद लहौ। मुकट सीसपै धरे बहुत नृप साथ है, मानौ इन्द्र सोधर्म देव संग जात है ॥५॥ त्रैजगत पतिको वंद्य सु जय जय उच्चरी, भक्ति धार उर माह सु बहु पूजन करी। जौ दिग जीतन मांह पाप बहुतौ भयो, तिसकी हानि सुकाज प्रभु पूजन ठयौ ॥६॥ फुन प्रभु अस्तुत कीन सु चक्रीने तहां, ता बरनन भव सुनौ ध्यान धरके यहां। तुम स्वामी त्रै जगतके तुम हो देव ही, तीन लोक मह पिता करे सुर सेव ही ॥७॥

छप्पय छन्द

जगनाथन कर पूज्य नाथ तुम सबके स्वामी, वंदनीक कर वंद्य तुमी त्रिभुवनमें नामी। धर्मराज सार्थिक विश्वमंगल

के कर्ता, सर्वोत्तम गुण थान सकल भव जन भय हर्ता ॥
बिन कारण जग वंद्य तुम सबके हितकार हो, चिंतामणि सम
जगतमें चिंतत फल दातार हो ॥८॥ कल्पित फल दातार
तुमा हो कल्प सु वृक्षा । द्रग रत्नादिक थान तुमी धारत
गुण स्वच्छा । कामधेन सम तुभी अर्थ अरु काम दातारा,
माता स्वामो सुह्रत सभा हितके कर्तारा ॥९॥ मैं अनदेवन
पूजहूं, नहि वंदन करहूं कदा । इम परभव शिव दातार लख,
तातैं तुम पूजूं मुदा ॥१०॥

नाराच छन्द

सु कल्पवृक्ष छोड़के धतूरको न सेवही, सु अमृतादि त्यागके
पीवे हलाहल कहीं । तथा जु स्वर्ग मोक्षदाय आपकौ जु
त्यागके, जु और देव पूजहै सु पाप माही पागके ॥११॥ सु
आप नाम लेत ही सु जाय पाप भाज ही, तुम्हारी पूज जे
करे सु पूजनीक थाय ही । जु वंदना करे वही सु वंदनीक
होत है, जो कोर्ति आपकी करे सुवेग कीर्तिको लहै ॥१२॥
तुमी सु नाम लेत ही जु विघ्न रोग जाय है । सुवज्रपानतैं
तथा जु पर्व ताप लाय है । सु ध्यान आपकौ करैं सु घाति
कर्मकौ हरे, जु ज्ञान केवलं धरे सु मुक्ति कामनी वरे ॥१३॥

सवैया २३

अब मै सुकृतवंत भयौ हूं अब जिन जीवन सफल जु मान,
अब मुझ बचन पवित्र भयो है जब तुम गुणकौ कीनो गान ।
नेत्र सफल तुम दर्शन करते सीस सफल तुम चर्णन मान,
कान सुफल तुम वचन सुनतही हस्त सुफल तुम पूजन ठान
॥१४॥ अंतातीत गुणकर स्वामी वचन अगोचर प्रभुता थाय,

गणधरसे कहने समरथ नहीं मंदबुद्धि मैं किम वरनाय। ऐसो जान बहु थुत नही कीनी कीनी नाममात्रहीमैं कहवाय, कर्मारी नाशक तुमकौ लख तातैं नमूं तुमारे पाय ॥१५॥

पायता छन्द

तुम गुण समुद्र अभिरामा, कल्याण मित्र गुण धामा।
तुम नंत सु लक्ष्मी धारी, निर्ग्रंथ मूर्ति सुखकारी ॥१६॥
तुम देव असंखज जाई, तौ भी तुम निस्पृह थाई।
इम नमस्कार थुत कीनो, भक्ति उर धार नवीनो ॥१७॥
प्रभु मैं तुम शरण गहाई, निज गुण सम निज गुण थाई।
इम अस्तुत कर बहुबारो, फुन धर्म सु [illegible] हितकारो ॥१८॥
जो स्वर्ग मोक्षको दाता, श्री जिन भाषित विख्याता।
फुन चक्री नमन कराई, निज थानककौ जु सिधाई ॥१९॥
फुन शीघ्र कियौ सु पयाना, अजुध्या नगरी पहुंचाना।
परवेशित नग्र सु मांही, सारी सेना अटकाही ॥२०॥
द्वारेके बाहर जब ही, भयो निश्चल चक सु तब ही।
यह बात सुनी जब काना, चक्री अति विस्मय ठाना ॥२१॥
प्रोहतसे तब पूछाई, किम कारण चक्र रुकाई।
क्या अब कोई बस करनौ, कोई शत्रुसे अब लरनौ ॥२२॥
इम सुनकर तब बोलाई, अन्तर अरि है तुम भाई।
तुम आज्ञा नाही मानै, अरु नमस्कार नहि ठाने ॥२३॥
तहां जेष्ठ बाहुबल जानौ, निज बलकर नाह न मानौ।
इम सुन करके महा राई, बस करहूं ये मन भाई ॥२४॥
तब दूत तहां भेजाई, तिनकौ सत लेख दिवाई।
सो सब देशन पहुंचाई, बाहुबल बिन सब भाई। २५॥

सबने जु दूत सन्माना, तब दूत कहो हित ठाना ।
हे कुमर सुनो मन लाई, तुम जेष्ट भ्रात सुखदाई ॥२६॥
जिसको नर सुर बंदाई, विख्यात सरव जगमांहीं ।
तुम मानन जोग सदाही, जिम कल्पवृक्ष फलदाई ॥२७॥
तुम बिन नहि राज जु सोहै, तुम बिन विभूत नहीं को है ।
इस कारण तुमे बुलाई, तुम सहित लक्ष भोगाई ॥२८॥
इम दूत वचन जु सुनाई, सब भ्रात विचार कराई ।
तिसको उत्तर इम दीना, तुम सुनहो दूत प्रवीना ॥२६॥

चौपाई

त्रिजगत गुरुने हमको दियो, सोई राज हमने भोगियो ।
न तृष्णा हमको अधिकाय, जो अब भरतरायपै जाय ।३०॥
जगतगुरुको अबै तजाय, और न काहूं नमन कराय ।
पूर्व किसीको नमियो नाह, बल भय तैं अब हूं न नमाह ॥३१॥
तीनलोक पतके जो चर्ण, सेवेंगे हम आपद हर्ण ।
तिनके निकटसु प्रापत होय, फिर हमको होवे भय कोय ॥३२
इम कहकर प्रति लेख जू दीन, दूतनको सत्कार जु कीन ।
करो विसर्जन दूत जु तबै, आप प्रभु ढिग पहुंचे सबै ॥३३॥
विश्वनाथ कर अर्चित जोय, तिनको पूजे हर्षित होय ।
जन्मथकी तुमही हो नाथ, और जु किसको नमहूं माथ ॥३४॥
तुम चरणनको कर परणाम, कौन कौनहि नमहै ताम ।
भरतायने हमें बुलाय, चाहो थो परणाम कराय ॥३५॥
तातैं हम आये तुम तोर, पथ्य वचन तुम कहो गहीर ।
इम कहकर सो बैठत भये, श्री जिनवानी सुनि हरषिये ॥३६
जिन दिव्य ध्वनिमें इम कहो, अहो भव्य तुम दीक्षा गहो ।

सकलभ्रात मिल संजम धरो, जगतइंद्र तब प्रणमन करो ।। ३७
भरत राज्य की है क्या बात, वृषसे तीर्थंकर पद पात
शाश्वत मुक्ति तनो सुख लेह, अनघ अनंत इसो पद गेह ।। ३८
जगत पाप करता यह राज' बैर जु कारण बंधु समाज ।
बहुत शत्रु करके दुखदाय, तातैं निंदित राज अघाय ।। ३९।।
बहुत भोग भोगन के मांह, आतम तृप्ति कभू ह्वै नाह ।
सर्प समान प्राण ये हरे, को बुधवान सु इच्छा करे ।। ४०।।
चिंता दुख अर क्लेश जु थान, भय आदिकको है यह खान ।
चपलजु वेश्याकी सम जान, है अनित्य फुनि निंद्यबखान ।। ४१
विषयनके सुख ऐसे कहै, विष मिश्रत जु अन्न सरदहै ।
नरकादिकको कारण सही, बुधजन तामें किम राचही ।। ४२।।
संपद बिपत समान गिनाय, भाई बंधु बंधन सम थाय ।
शृंखल सम रामा दुखकार, पुत्र पासवत् बंधन धार ।। ४३।।
निधि रत्नादिक सबै असार, यम मुखमें जीवत निरधार ।
तीनजगत क्षणभंगुर लखो, जोवनजरा ग्रसतनित दिखो ।। ४४
दुखसागर संसार निहार, जहां कषाय जल भरियो क्षार ।
यह शरीर रोगकी खान, क्लेशकार दुर्गंध महान ।। ४५।।
इस संसार विषै बुधवान, निज कल्याण करे हित ठान ।
संजम बिन रमणीक न कोय, तातैं संजम धर मुद होय ।। ४६
कितने काल पछे चक्रेश, निध आदिक लछ त्याग अशेष ।
संयम धारण करे महान, फेर मोक्षपुरको पहुंचान ।। ४७।।

गीता छंद

इम सुन प्रभु वाणी मनोहर, धर्ममें रुचि धारियो । जग

भोग त्याग वैराग होकर, सकल परिग्रह टारियौ । सब कुमर तब दीक्षा लही, फुन द्वादशांग पढ़ौ सही । फुन ध्यान धर्म जु शुक्ल तत्पर, मूल उत्तर गुण गही ।।४८।। फुन महाव्रत जो पांच धारे भावना पनवीस ही, भावे निरंतर धर्म दशलक्षण धरे निर्दोष हो । बाईस परोषह सुभट जीते अरु कषाय विनाशिया, फुन आर्त रौद्र कु ध्यान तजकर वचन मन तन वश किया ।।४६।। निज कायसे निस्पृह सदा मन मुक्तिसे लौं लग रहो । वाहिर अभ्भितर त्याग परिग्रह रत्नत्रय निध जिन गहो ।। जो ध्यान अरु अध्ययन करते चार विकथा परहरैं । उपदेश सुन जो शरण आवे ताहि जगसे उद्धरे ।।५०।। जे शून्य घर अर गुफा वनमें अरु मसाण विषं बसैं । पर्वत तथा निजन जु थानक बैठकर इंद्रिय कसैं ।। जो पक्ष मासरु छै महिना आदि का उपवास हैं । फुन तप उनोदर करैं जहांसे तुच्छ लेवे ग्रास हैं ।।५१।। जो व्रतपरसंख्यान धरते अटपटी बातें गहैं । जे राय घर कोई सु भोजन थाल मृतकाको लहै । अथवा दरिद्री गेहमें हो स्वर्ण भाजन पावना । अरु क्षीर खांड तनौ सु भोजन होय तो हम खावनो ।।५२।। षटरस विषं कोई जु रसको त्याग करहैं मुनि सही । अथवा छहौं रस त्याग करके लेय गुण-गणको मही ।। मिथ्या जु दृष्टि दुर्जनादिक क्लीव तीय पशु जानिये। इन रहत थानक देखके तहां सयन आसन ठानिये ।।५३।। अब कायक्लेश जु तप सुनो जो धरत मुन गुण-रास हैं । वर्षा जु रितु तरु मूल तिष्ठे डांस मच्छर काट हैं ।।

झंझा जु वायु चले महा वर्षा जु वर्षे अति घनी। तिस काल मांहो तरु तले तिष्टे सकल हो शिव धनी ॥५४॥ जे ताल नद्दोके किनारे शीत ऋतुमें तप करें। जे ध्यानरूपी अग्नि करके तपन बहु विध आचरें॥ जो ग्रीष्मऋतुमें तप्त पर्वत तुंग ऊपर बैठ हो। शुभ ध्यान अमृत पान करके सूर्य सन्मुख जे ठहो ॥५५॥ इत्यादि नाना काय क्लेश जु तप करत बहु प्रीतसौं। इम भेद षट बाहिर सुतपको आचरत इस रीतसों॥ अब भेद अभ्यंतरसु तपके सुनो अति सुखदाय जो। जो आचरत सत भ्रात सुंदर तासको वर्णायजी ॥५६॥

पद्धड़ी छंद

प्रायश्चित व्रतधारें बुधवान, जिसके नव भेद प्रभु बखान। फुन विनय चार विधको धराय, वैयावृत दस विधको कराय ॥५७॥ स्वाध्याय तने पण भेद धार, मनगज रोधन अंकुश विचार। धारे व्युत्सर्ग सु दो प्रकार, फुन धर्मध्यान धरहै जु सार ॥५८॥ फुन शुल्कध्यानको भी धरंत, अर आर्त रौद्र दोनों तजंत। इम द्वादश तपको जे करंत, ते कर्महान शीघ्र ही करंत ॥५९॥ ते सत मुन मन शुद्ध कर सदीव, अणिमा महिमादिक रिद्ध लहीव। तिव अवधिज्ञान आदिक सु थाय, विक्रिया आदि रिद्धि उपाय ॥६०॥ फुन ग्राम खेटमें कर विहार, सब घात कर्मको कर संघार। शुभ केवलज्ञान उपाय सोय, फुन मोक्ष गये सब कर्म खोय ॥६१॥ अब चक्रधिपने सब सुनाय, मम भ्रात तने दीक्षा ग्रहाय। अनुजनको बहु आश्चर्य ठान, तिनको समान लाखो बखान ॥६२॥ अब

दूत सुबाहुल तटाय, पहुंचौ केतक दिनके सु माह। पोदनपुर के माही सु जाय, फुन द्वारपालसे सब कहाय ॥६३॥ फुन राजसभामें गयो सोय, राजाको नमियो मुदित होय। जब भूपतकी आज्ञा सु पाय, आसनपर दूत तबै बिठाय ॥६४॥

चाल ग्रहो गुरुकी

दूत तबै इम भाखसुनिए राय प्रवीना, चक्रीको आदेश उचित सु प्रिय हत भी ना। तुम मम बंधु जान प्रीत सु कारण थाई, तुम यहां आओ वेग मिलकर लछ भोगाई ॥६५॥ मैं अंबुधमैं जाय मागधको बस कीनो, व्यंतर कृत रथ बैठ फुन सरको छोडीनो। हिम बन गिर तट जाय बारा सुमोचो जबही, भृत्य होय सुर आय आज्ञा सिर धर तबही ॥६६॥ विजयारधके सीस सुर कृतमालि विराजै, इत्यादिक बहु देव आकर नमन कराजे। आरज और म्लेक्ष छहों खंड के राई, धरकर बहुविध भेंट सबही नमन कराई ॥६७॥ घर दासी सम जान लक्ष्मी जाके थाई, सुर किंकरता ठग्न पुन्य फलो अधिकाई। नीत थकी जु प्रताप अरिके सीस विराजे, तुमरो जेष्ट सु भ्रात माननोक महाराजे ॥६८॥ तिस षट-खंड विभूत तुम बिन शोभे नाहीं, तातैं तुमें बुलाय जाय प्रणाम कराही। इम बच सुन भूपाल बाहुबली तब भाखो, तैंने साम दिखाय दंड भेद अभिलाखो ॥६९॥ चक्री बल जु कहाय सो हम मन नहि आयो, डाभ सेजपे सोय ताने काज बनायो। देवनसे संग्राम कर जीते बहुवारी, मैं तिस पौरष देख निज बलपर तपकारी ॥७०॥ उत्तम प्राण सु त्याग क्षम

वासो शुभ जानो, नमहूं नाह कदाय ये ही चितमें ठानो।
अथवा जिन ढिग जाय लू दीक्षा सुखकारी, अहो दूत तुम
जाय यह विध वचन उचारी ॥७१॥ रण करणो मुझ बेग
तुम भी होउ तयारा, इम कहकर नृप ईश दूत विसर्जन
कारा। तब बाहूबली भूप चव विध बल ले लारा, निज देश-
हीकी सीम आयौ जुध मन धारा ॥७२॥

जोगीरासा

भरतराय तब दूत वचन सुन मनमें अति क्रोधायौ, सब
सेन्याको संग लेयके पोदनपुर पहुंचायौ। तब संग्राम करनके
पहले मंत्री सबन विचारौ, दोनों भूपत नाह मरेंगे चर्मांगी
चित धारौ ॥७३॥ युद्ध माह बहुभट क्षय होगे तिनकी रक्षा
करिए, दोनों भ्राता युद्ध कर लेवें इनसे यो उच्चरिए। दृष्टि
युद्ध मल युद्ध सु करहैं अरु जल युद्ध करावें, इम मंत्री सब
निश्चय करिके जुग नृपको समझावें ॥७४॥ दोनों नरपत
रणको उद्धत हट करते अधिकाई, तब मंत्रिनने कहो युद्धसे
कोटक जीव मराई। तिन सुभटनकी रक्षा कारण तीन युद्ध
ठेराई, तिन तीनमें एक युद्धको सुन वर्णन महाराई ॥७५॥
दोनोंमें जिस पलक न झपके उसकी जीत सु होवे, सरवर
में जल क्षेपन करते। व्याकुलताको खोवे, मल्लयुद्धमें दूजे
नृपको पृथ्वी माह गिरावे, तिसकी जीत तनो जस सुरनर
विद्याधर मिल गावें ॥७६॥ इम मंत्रिनके कहने सेती दोनों
नृपने मानों, प्रथम ही दृष्टि सु युद्ध करनको बैठे युग मुद
ठानो। भुजबलिको तन पणशतपच्चिस धनुष सु ऊंचौ जानौ,

भरतचक्रिको तन पण शत धनु ऊंच कह्यो भगवानौ ॥७७॥ ताते दिष्टि मिलावन मांही जोर पड़ो अति भारी, भरतेश्वर तब दृष्टि युद्धमें हार गये ततकारी। तबही सब नृपगणने मिलकर बाहुबली जय भाषी, फुनि दोनौं सरवरमें पहुंचे जल युद्धके अभिलाषी ॥७८॥ चक्रवर्त जो जल को क्षेपे उस वक्षस्थल जाई, बाहुबल जो छोटे देवे भर्त तने मुख आई। तातें चक्री यहाँ भी हारे जीते बाहुबली हैं, सब नृपने इम घोषण कीनौं पुनते होत भली है ॥७६॥ मल्लयुद्ध फुन युग आरंभो बाहू स्फोटन कीनो, बाहुबलने भरतेश्वरकौं तुरत उठाय सु लीनौं। सिरसे ऊंचो करसू फिरके थाप दियो भुव मांही, सब नृप भट मिल जय कोलाहल करत भये तिह ठाही ॥८०॥ तब चक्री लज्जाको पाकर क्रोधानल उपजाई, लघुभ्राता विश चक्र सुदर्शन तबही बेग चलाई। सो बाहु-बलको परवक्षणा देकर उलटो आयो, तब भुजबल नृपकौ जस सब मिल सुर मनुषनने गायो ॥८१॥ तब चक्री अति लज्जित हुवो मानभंग बहु थाई, ऐसी लख बाहूबल राजा चित वैराग सु आई। काललब्धि बस इम चितत नृप राजही को धिक्कारा, जगत दुःखको कारण येही यह निश्चै मन धारा ॥८२॥ बंधुजनके अर्थ करत अब सो कछु काम न आवै, कोटक भार जु इंधन करके अगिन उपसम थावै। तैसे निध रत्नादिकसे नहि आशा गर्त भरावै, जो जो इसको त्याग करे मनु त्यौं त्यौं सुख लहावै ॥८३॥ जैसे तेल जुडालन-सेती दावानल प्रजलाई, तैसे अक्ष विषय सुख भोगत तृष्ण

कमू न लहाई, यवदिशसे जिम पक्षी निशमें एक वृक्ष पर ठाई। तिस परिजन सब लोग मिलत है फुन सबही नस जाई ॥८४॥ परमारथ करके जो देखो अपनौ कोई न थाई, जैसे कर्म उपार्जन कीने निज-२ सो भुगताई। जिस कुटंब के पोषन कारन पाप बहुत जिय करिहैं, सो सब जिय यहां रह जावे आप नरक दुख भरहैं ॥८५॥ जे शठ मेरी मेरी करि हैं तिय सुत लक्षि सबं ही, गृह आदिक सब यहां हो रहै है मरकर दुरगत लंहो। ये ममत्व वपु आदिकको है पाप बृक्षको मूला, निर्ममत्व वृष युत जो प्राणी पावे शिव सुख झूला ॥८६॥ ज्ञानवान जो निर्मोही है सो बहु सुखिया थाई, अज्ञानी जो मुझ सम हो है पावं दुख अधिकाई। जहां यह देही अपनी नाही तहांसु अपना को है, सुत परियन सब जुदे जुदे हैं कोई नाह सगो है ॥८७॥

नाराच छन्द

विचार एम ठनके संवेगको बढाइया, तबं मुनीश होनको सुचित मैं उमाहिया। सु वीर्य भ्राततैं तबै सुबोलियो विचार के, जु तास क्लेश हान काज चित क्रोध टारके ॥८८॥ सुनौ सुभ्रात भरत वेग राजको संभारियो, मैं लक्ष तप धार हूं सु चित्त स्वस्थ कारियो। प्रशाद ये तुमारी है जुलोक अग्र जाय हूं, लहू सु राज मोक्ष अष्टकर्मको नसाय हूं ॥८९॥ जु गर्भ धार मैं कियो तथा अज्ञान होयकै, अनिष्ट काज मैं कियो क्षमा करो सुनीयकं। इसी अलाप ठानके निशल्य होयके जबं, सुराज पुत्रको दियो वैराग होयके तबं ॥९०॥

तोटक छन्द

तब ही चलियो वह धीर सही, तप संजमकी सिद्ध चित्त सही।
अष्टापद पर्वतपे जु गयौ रिषभेश्वरको तबही नमियो ॥६१॥
मनवचकाया त्रय शुद्ध कियो, परिग्रह बाह्यांतर त्याग दियो।
उत्तम दीक्षा ततकाल लई, जो मुक्तितनी माता सु कही ॥६२॥
तपद्वादश विधको सर्व गहे, फुन द्वादशांगको पार लहै।
नाना गुणकर परपूर्ण सही, हो इकल विहारी वीर्ज मही ॥६३
इक वर्ष पर्यंत सुयोग धरो, शुभ ध्यान विषै ज्यूं लीन करो।
निज काय ममत्व सबै तजियो, बनमें निज आतमको भजियो
॥६४॥ तनमें जु बबे सर्पा जु करी, शीतोष्ण थकी सब
काय जरी। बाईस परीषह सर्व सही, दव दग्ध वृक्षवत्
काय वही ॥६५॥ चरणनसे मस्तक तक जानौं वेलोने आच्छा-
दन ठानौ, विद्याधर तिय जुत बहु आवें। इन ऊर्द्ध विमान
सु ठहरावे ॥६६॥

चौपाई रूपक मात्रा १६

बाहन अटको लखकर जबही, नीचे आ मुनि पूजे तबही।
बाहूबलको योग प्रभावा, इन्द्रासन तुरंत ही कंपावा ॥६७॥
अचरज लहि हरि पूजन आयो, मनमाही धर हर्ष सवायौ।
व्याघ्र सिंह जिय क्रूर सुभावे, मृग आदिकको नाहि हतावें ॥६८
सब रितुके फल फूल फलाई, मानौ षट रितु पूजन आई।
तपके योगसु रिद्ध लहाई, कोष्ट वृद्धि आदिक सुखदाई ॥६९॥
सर्वावधि लह अवधि सुज्ञान, मनः पर्यय फुन वेग लहान।
विपुलमती जिस भेद बखानौं, उग्र उग्र तप बहु विध ठानौ ।१००
दीप्ततप्त ये रिद्ध उपाई, औषध उग्र सु रिद्ध गहाई।

विक्रियरिद्ध सु अष्ट प्रकारा, रस रिद्धके षट्भेद सुधारा।१०१
अक्षीण जु महालय जानौ, महानसी अक्षीण गहानौ।
इत्यादिक तपके परभावा, बहु विधकी मुन रिद्ध लहावा॥१०२
नि:प्रमाद अति निर्भय थाई, महामेरु सम तन जु उचाई।
निश्चल खड़े क्रांति फैलाई, मानौ रवि पृथ्वीपै आई ॥१०३॥
धर्मशुक्ल ये ध्यान सुध्यावै, यों बाहूबल तप सु धरावै।
अब चक्री अयोध्यापुर आए, साठ सहस्र वर्ष पीछाए॥१०४॥
सर्व दिशाको जीत जबै ही, षटविध बल सुविभूति सबै ही।
पुरजन नगरी शोभा कीनी, तोरण ध्वज पंकति सुख भीनी।१०५
चक्री पुर परवेश कराई, बाजे बहुत प्रकार बजाई।
बहु नृप मिल अभिषेकसु ठानौ, गंगा सिंधु सुरी जुग आनौ।१०६
बहु तीर्थनको जल मंगवायो, तिनने भी अभिषेक करायो।
भूषण नानाविध पहरायो, सभा सिंघासन पर बैठायो॥१०७
गणबध जात अमर जो थाये, ते भक्ति धर नमन कराये।
हिमवन विजयारधके ईसा, मागधादि सुर नमि सब सीसा। १०८
उभय श्रेणिके विद्याधर ही, मुकट नमाय सेव सब करही।
निष्कंटक यह राज कराई, भरतेश्वर विभूत बहु पाई॥१०९
धर्म कर्म अग्रेश्वर होई, आचरणादि करे शुभ जोई।
भोग महान सकल भोगाई, नानाविधके सुक्ख लहाई॥११०
इम सुखमें इक वर्ष बिताई, फुन आदीश्वर वंदन जाई।
चक्रनाथने तबही लखाई, बनके मध्य खड़े निज भाई॥१११
मेरु समान ह्वै ध्यान धरो है, भरत जाय परणाम करो है।
वहांसे चल प्रभु पास सुजाई, नमस्कार इम पूछाई॥११२॥

बहुत घोर तपको सुत पायो, बाहूबल नहीं केवल पायो ।
दुर्बल जास शरीर भयो है, इस मध कारण केम ठयो है ॥११३
तब सर्वज्ञ सु एम कहाई, अहो विचक्षण सुन मन लाई ।
ताके मनमें एम सुभावा, मैं भ्राता अपमान करावा ॥११४॥
यह पृथ्वी सुभरतकी जानौं, जाके ऊपर मैं तिष्टानो ।
यथाख्यात चारित न गहायो, तातैं केवल ज्ञान न पायो ॥११५
यथाख्यात चारित न लायो, तातैं कारज सिद्ध नहि थायो।
यथा अग्नि कणिका अलपायो, रत्नरासको देय जरायो ॥११६
तिम कषाय अग्नि तुछ थावे, चारित्रादिक रत्न जलावे ।
इम सुनकर चक्रेश्वर तबै ही, पहुंचे मुनवर पास जबै ही ॥११७
मुनपद सेती सीस लगायौ, अष्ट द्रव्यसे पूज करायौ ।
जग अनित्यता बहुत दिखाई, अन्य-२ सुत माता भाई ॥११८॥
अन्तस्करण शुद्धि जु करायो, जातैं शिव तिय वेगहि पायो ।
तत्क्षण मोह शत्रु जीताई, सब कषाय जीती मुनराई ॥११६
बारम गुणस्थानकौ लहके, शुक्लध्यानपद दूजो गहके ।
तीन घात यों तबही नासै, केवल दर्शन ज्ञान प्रकाशे ॥१२०
लोकालोक पदार्थ जु सारे, देखे एकहि काल मंझारे ।
महिमा गुण अनंतके थानी, तिन जिनको हम सीस नमानी ।२१
निज आसनके कंपित थाई, जानो केवल श्रीमुनि पाई ।
चतुरन काय देव सब आये, निज परवार सबै संग लाये ॥१२२
सबही आय सु कर परणामा, केवलिको पूजन कर तामा ।
द्रव्य सुर्गमें जो उपजाये, ताकर वसुविध पूज रचाये ॥१२३

गंधकुटी तब देव रचाई, तापर सिंघासन सुखदाई ।
श्वेत छत्र अर चामर ढर है, पूजा चक्रवर्त शुभकर हैं ।।१२४
निधि आदिकसे उपजाई, ऐसे पूजन द्रव्य सु लाई ।
अन्तःपुरको राणी संगा, बंधुवर्ग सब साथ अभंगा ।।१२५।।
बाहुबलिके निकट सु आये, नमकर सभा माह बैठाये ।
फुनि केवलिने कियो विहारा, बहु देशनमें चव संघ लारा ।।१२६
तत्त्व धर्म उपदेश कराई, सत्पथमें बहु भव्य थपाई ।
कैलाशाचल ये पहुंचे जाई, निज पद योग विभूत लहाई ।।१२७

गीता छंद

त्रय युद्धमें चक्रेशको ये धर्मसे जीतत भए, फुन शुक्लध्यान सु खड्ग करले घातिया छिनमें जये ।।१२८।। नव लब्धि केवल पायके फुन मोक्षपुर माही गए । जगजीत बाहुबल जु स्वामी तास पद हम बंदिए ।।१२९।। वृष थकी पाप निकंद होवे पुण्य निध वृष जानिए । सब सुक्ख होवे धर्मसे तातें नमूं हित ठानिए ।।१३०।। त्रैजगतमें हितकरन दूजो धर्मसे सब गुण लहे । वो धर्म मुझको प्राप्त हो मम यही वांछा उर रहे ।।१३१।। 'तुलसी' सियापत आद पदवी नाह चाहत हूं कदा । तुम भक्ति मो उर रहो निस दिन यही वर मांगूं सदा ।।१३२।। जब तक न मोक्ष सु पद लहूं तब तक यही अरदास है । तुम चरण मुझ मनमें रहो यह पूरबो मम आस है ।।१३३।।

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारकसकलकीर्तिविरचिते भरततनुज दीक्षा-ग्रहण बाहुबल विजयकेवलोत्पत्तिवर्णनो नाम षोडशदशमः सर्गः ।।१६।।

—:•:—

अथ सत्रहवाँ सर्गः

दोहरा—ध्यान रूप गजपर सवार ह्वैं, दसलाक्षण वृष टोप सुधार। रत्नत्रय मय धारोवक्तर, संवर असिको तीक्षण धार ॥१॥ अनुभव भाला कर ग्रह लीनौ कर्म अरि लीने ललकार, ऐसे वृषभनाथको वंदू ध्याऊं तिन गुण बारंबार ॥२॥

चाल गज सुकुमारकी

भरत सु चक्री हो महलन मांही श्राय धर्म सदाजी उर धारते सम्यग्दृष्टि हो। शुभ आचरण धराय, विधकर नित बृत पालते ॥३॥ पंच अनुबृत हो गुणव्रत तीन सुजान शिक्षाव्रत चारों कहें इम बारह व्रत हो ॥४॥ पालत बिन अतिचार। ग्रह व्रतके सिव कारणे ॥५॥ अष्टमी चौदस ही राज्यारंभ जु त्याग करत भयेजी उपवासको ॥६॥ मुनव्रत हो केजी, तीनौ संध्या मांह। सामायक करते भये। ७॥ रात्रि दिनामें जो, आरंभ कर ह्वैं पाप। सामायक कर नासिये ॥८॥ जिनवर स्वामीजी, अरु मुनवर समुदाय। तिनकी नित पूजा करें ॥९॥ श्री गुरु मुखसेजी, नितप्रत धर्म सुनाय। ज्ञान बढ़ावन कारण ॥१०॥ सू निर्वाणजी प्रतमा जिनवर थान। तिनको ध्यावें प्रीतसौ ॥११॥ निज महलन में जी, जिन मन्दिर सुखदाय। तहां अर्चाकर भावसौं ॥१२॥ द्वारा क्षेपनजी नितकर हैं मन लाय, दान देय अति भक्तिं ॥१३॥ जिन गृह रचियोजी, परतिष्टा करवाय। रत्नादिकसे पूजियो ॥१४॥ धर्म प्रभावन हो, पूजा उत्सव ठान।

जिन वृषको प्रकाशियो ॥१५॥ बैठ सभामें हो, दैत धर्म उपदेश। मंत्री बंधू सब सुने ॥१६॥

चाल लावनी—भजो जिन दाव भला पाय। औसर मिले नहि ऐसा सतगुरु गाया॥ इस चाल में :

धर्महो से हो राज्य विभूति सुख अनेक पावै। अर्थ काम सब वृषसे होवे मुक्तिमें जावे ॥१७॥ धर्म प्रसाद थकी भव देखो चक्री विभूति लही। ताकौ वरनन सब जन सुनियौ मन वच काय गही ॥१८॥ लखौ यह वृष फल उरमाही, बहु सुर आकर नमन सु कीनो। चक्र सु उपजाही ॥टेक॥ चौरासी लख हस्ती कहिए रथ इतने जानो। कोट अठारह घोड़े कहिए पवन पुत्र मानो॥ लखौ यह वृषफल उरमाही, बहु सुर आकर नमन सु कीनो ॥१६॥ कोड चौरासी जान पयादे सुर खग बहुत सही, वज्र अस्थि अरु बज्र लपेटी बज्र नाराच गही। लखो यह वृष फल उर माही, बहु सुर० ॥२०॥ संस्थानहि समचतुर सु कहिए चौसठ लक्षन हैं, व्यंजन बहु विधके शुभ जानौ कनक छबी तन है। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥२१॥ बटखंडके जो राजा सबही तिनकौ बल जितनौ, तातैं बहुगुणो विचारो चक्री बल इतनौ। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर आकर नमन सुकीनो चक्र सु उपजाही ॥२२॥ सहस बतीस मुकट-बंध राजा सबही सेव करैं, तिनकौ बहुविध भेट जु आवं तिनपै दृष्ट धरैं। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥२३॥ क्षणवे" सहस तिया सब पाई रूप सु गुणधामा, जाति सु कुल वय सर्व मनोहर तिनके सुन ठामा। लखो यह

वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥२४॥ द्वात्रिंशत हजार जो पुत्री आरज नृप केरी, म्लेच्छनकी को कन्या सहस बत्तीसु ह्वै चेरी। लखो यह वृषफल उरमाही, बहु सुर० ॥२५॥ विद्याधरनतनी नु दुहिता सहस बत्तीस कही, ये सब चक्रवर्त ने पर्णी पुन्य संजोग सही। लखो यह वृषफल उरमाही, बहु सुर० ॥२६॥ नाटक गण बहु नृत्य करते बत्तीस सहस कहे, पुर जु बहत्तर सहस सु जाने जहां वृषवंत रहे। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥२७॥ कोड छाणवे ग्राम सु जानो कंटक वाड़ जहां। द्रोणी मुख सहस्र निन्याणवे सिंधु सु पास लहा, लखो यह वृषफल उरमाही। बहु सुर० ॥२८॥ अड़तालीस सहस पत्तन है रत्न सु उपजाई, समुद मध्य जो अन्तर द्वीप छप्पनसो थाई। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥२९॥ एक दिशामें नदी जाके इक दिश पर्वत है, ऐसे खेट मनोहर जानो सालह सहस कहे। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥३०॥ जो पर्वतके ऊपर कहिए संवाहन सोई, सौ चौवह हजार सु जानो चक्रीके होई। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥३१॥

सुन्दरी छन्द

थाल हेममई सो जानिए, गिनती एक सु कोट प्रमाणिए।
कोट लक्ष सु हलधरके कहे, तिस प्रमाण सुहाली सरबहे॥३२
तीन कोट सु गांव सुहावनी, सहस अट्ठाइस अटवी भनी।
कुक्षवास जु सात शतक कही, नमत मलेक्ष अठारह सहसही।३३
नवनिध अति पुन्य उदै लही, तास वर्ण सुनो भविजन सही।

काल अरु महाकाल विचारिए, नैसरप पांडक चित धारिए।३४
पद्म माणव पिंगल जानिए, संख सर्व रतन मन मानिए।
काल नाम प्रथम निध जो कही, सर्व पुस्तक दे सुखकी मही।३५
पंच इन्द्रियनके जु विषय कहे, शुभ मनोग्य सबैं हो देत है।
बीण वांसरी आदि बखानिए, पुन्यकर सब देत प्रमाणिए ॥३६

अडिल्ल छन्द

असिमस्यादिक कर्म सुघट साधन सबै, महाकाल निध देत सु पुण्य उदै जबै। शय्या आसन आदि निसर्प सु दे सही, षटरस अरु सब धान्य सु पांडुकतैं लही ॥३७॥ पद्मनाभ निध सुंदर वस्त्र जु देत है, पिंगल निध शुभ सब आभर्ण खिकेत है। नीत शास्त्र अरु शस्त्र सु माणव देत हैं, संख बुक्षणावर्त संख निध तैं लहे ॥३८॥ सर्वरत्न निध सकल रतनदायक भनी, गाडेके आकार नवों निध जानवी। वसु योजन सु उतंग आठ पहिये कहे, नभ मंडलमें रहे देव सेवा वहैं ॥३९॥ चक्र छत्र असि दंड काकणी जानिये, मणि अरु चर्म अजीव सात ये ठानिये सेनापत ग्रहपत गज अश्व लहात हैं, तिया पिरोहित स्थपित सजीव जु सात हैं ॥४०॥

चाल जोगीरासाकी

इम यह चौदह रत्न सु जानो जिस थानक उपजाही।
चक्र छत्र असिदंड सु चारों आयुधशाला थाहो ॥
मणिकामणि अरु चर्म रत्नत्रय श्रीग्रहमें उपजावैं।
तिय गज अश्व रतन ये तीनों रूपाचलते आवे ॥४१॥

शेष रत्न चत्वार उपजहै साकेतामांहो, नारी रत्न सुभद्रा जानो ता संग सुख भुगताही। षट ऋतुके सब भोग मनोहर भोगत अंतर रहिता। हस्त थकी जो वज्र ही चूरे ऐसी बलकर सहिता ॥४२॥ रत्न सुनिध अरु नारी जानो सेना शय्या आसन, भोजन और रसभाजन कहिये नृत्य लखे अरु वाहन। ये दस बिधके भोग सुजानो पुन्य उदै सुलहाई, इकछत राज्य सु पालत मुद ह्वै सब जीवन सुखदाई ॥४३॥ सुरगण बन्ध सु जात बखाने षोडस सहस प्रमाणे, नाम जास क्षितसार उतंगही ऐसो महल रचानो। भद्र सर्वतो गोपुर जानो मणी तोरण जहां राजै, निद्यावर्त सु बैठन कारण सब शोभा जुत छाजै ॥४४॥ वैजयंत प्रासाद मनोहर सबही सो सुखदानो, दिक स्वस्तिक जु सभाग्रह जानो रत्न लगे जिस थानो, चक्रमणी जिस नाम छड़ी है माणि चित्रत बहु भांता, सोध एक गिरकूट तहांते दिस अवलोक कराता ॥४५॥ वर्धमान जिस नाम मनोहर पेक्षा-ग्रह सुखदाता, धर्मातक धाराग्रह जानो, जहां जियको ह्वै साता। ग्रहकूटकनामा मंदिर है वर्षा रितुके ताई, नाम पुष्करावर्त महल है देखत चित लुभाई ॥४६॥

पायता छंद

सु कुबेर कांत जिस नामा, अक्षय भंडार ललामा।
जिस नाम सु अव्यय धारा, सो ही है कोष्टागारा ॥४७॥
जीमूत नाम सुखदाई, मज्जन आगार बताई।
रतननकी माला सोहै, सेहरा सबके मन मोहै ॥४८॥
जिस पाए सिध विराजै, ऐसी सेज्या छबिछाजे।
जिस नाम अनुत्तर जानो, सिंघासन दिव्य प्रमानो ॥४९॥

जिस नाम अनूपम कहिए, ऐसे शुभ चवर जु लहिये ।
सूर्यप्रभ छत्र गहाई, जो रत्न रश्मि अधिकाई ॥५०॥
विद्युतप्रभ है जिस नामा, सो कुन्डल क्रांत सु धामा ।
वक्कर अभेद्य है सोई, रिपुबाण लगे नहिं कोई ॥५१॥
रत्नोंकर जड़ित अनूपा, पावुक विष मोचक भूपा
जाकौ सपरस हो जाई, ताहीको विष उतराई ॥५२॥

पद्धड़ी छंद

रथ अजित जयनाम बखान, फुन धनुष वज्रकांड कल-खान ।
जिस नाम अमोघ इसो सुबाण, शक्ति सु वज्रकांड पिछान ॥५३॥ सिंघाटक जो बरछी महान, जो रत्नदंडमें लगो जान । फुन छुरी लोह वाहनिक हाय, अरु कणय नाम इक शस्त्र थाय ॥५४॥ असि नाम सुनंद कहै रवन्न, जा देखत अरि हो खेद खिन्न । फुन ढाल भूत मुख नाम जोय, फुन चक्र सुदर्शन जान लोय ॥५५॥ फुन चंड बेग दंड हि धराय, जो गुफा द्वार भेदन कराय । जो चर्मरत्न जलकर अभेद, सुदर सो वज्रमई अछेद ॥५६॥ चूड़ामणि रत्नतनोपहार, चिंतामणि नाम सुदीप्त धार । फुन रत्न काकणी सुक्खकार, सेन्यापत नाम अयोध्यसार ॥५७॥ बुध सागर है जाको सु नाम, सो रत्न सु प्रोहत गुणन धाम । फुन स्थापित भद्र मुख जो गहाय, शुभ काम वृष्ट ग्रहपति लहाय ॥५८॥

गीता छन्द

हस्ती विजय पर्वत सुनाम, अश्व पवनञ्जय भनौ । प्रमदा सुभद्रा नाम जानौ रहित उपमा सु गिनौ ॥ ये दिव्यरत्न सुदेव रक्षित चतुर्दिश शुभ जानिये । फुनि विजय घोष सु

आदि नामहि पट हि सुंदर ठानिये ॥५९॥ आनंदनी द्वादस जु भेरी अब्धि निर्घोषा कही। बारह सुयोजन शब्द जाको सर्व दिशमें फैल ही। शुभ संख है चौबीस गंभीरावरत जिस नाम है, वीरागंद हि जिस नाम भूषण कड़े हस्त ललाम है ॥६०॥ शुभ कोट अड़तालिस ध्वजा है अर सिंघासन सोहनौ, जिस नाम महा कल्याण कहिये। सर्वजन मन मोहनौ, अर और रत्न जु रासि तिनकी सर्व गिनतको कहै, अमृत जु गर्भहि नाम जाकौ स्वाद भोजनसो गहे ॥६१॥ फुन स्वाद्य अमृत कल्प जानौ रस रसायन नाम है. फुन पान अमृत जास संज्ञा सकल गुणकौ धाम है। यह पुन्यनामा कल्पद्रुमके फल लखौ सुखमें सदा, इम जान सुख वांछक पुरष नहि धर्मकौ भूलौ कदा। ६२॥

लावनीकी चालमें

लखो यह चक्री मनमाही, आयुधन आदिक विनसाही।
कष्ट कर पैदा लछ होवे, दुख करके रक्षण जोवे ॥६३॥
नाश जब होवे लक्ष्मीको दुःख तब व्यापे है जीको।
पात्रदानादिक जो कीजे, तथा जिन मूरत पूजीजे ॥६४॥
प्रभूकी मूरत बनवावे, तथा चैतालय करवावे।
प्रतिष्ठा दोनोंको कर ही, सोई धन उत्तम गत धरही ॥६५
दान पूजाको कांम आवै, वही धन अपनो मन भावै।
ब्याह भोगनमैं खरचाई, मनो वह चौरन लूटा ही ॥६६॥
लक्ष्मी चार पुत्र जानौ, सु धर्म चौराग्नि भूप मानौ।
बड़े वृषको जो नहिं सेवे, तबै तीनों धन हर लेवे।६७।
पात्रको दीजै जो दाना, सुविध संयुक्त हर्ष ठाना।

वही फैले है सुखदाई, जेम वट बीज सुफैलाई ।।६८।।
दान जु पात्रनके द्याई, भोग भू कुत्सित उपजेई ।
दान जु अपात्रनको धाई, बीज कल्लरभू बोवाई ।।६९।।
जानकर ऐसे बुधवाना, देहु शुभ पात्राहिको दाना ।
महाफलकारक सोई है, और अघ कारण जोई है ।।७०।।
मुनोंने लक्ष्मी तज सब ही, सर्पणी सम जानी जब ही ।
होय कर निस्प्रह नाह गही, सर्व वृत नासनहार कही ।।७१।।

पायता छन्द

निर्ग्रन्थ गुरुको द्याई, तिन योग मिलन कठिनाई ।
आहारौषध जो द्यावै, तामैं धन केम लगावै ।।७२।।
जो मुनवर को धन देई, सो श्रावक दुर्गत लेई ।
सो साधु नर्क ही जावे, दीक्षा भंग पाप लहावे ।७३।।
तातें यह निश्चै कीजै, शुभ श्रावकको धन दीजै ।
तिनकी परीक्षा काजे, मारगमें पुष्प बिछाजे ।७४।।
त्रयवर्ण सबै बुलवाई, परिवार जु संजुत आई ।
अंकुरे हरित दिखाई, सब व्रती तहां ठहराई ।।७५।।
जो व्रत कर रहिता प्राणी, सो राजमहल पहुंचानी ।
नृपने जब विरती देखे, तिन पायो हर्ष विशेषे ।।७६।।
तिन शुद्ध मारग बुलवाये, निज पास तबै बिठलाये ।
तिनको सन्मान जु कीनौ, बहु आदरसे पूछीनौ ।।७७।।
तुम पहले क्यों ठहराये, पीछे इनको क्यों आये ।
तिन लोकन एम कहाई, अब सुनो राज महारायी ।।७८।।
हम प्रोषध व्रत सुधरो है, हम आरंभ सर्व तजो है ।
अणुव्रत हम धर्म गहो है, शुभ धर्मध्यान भजो है ।।७९।।

अहो जगत गुरुकी चाल

साधारण प्रत्येक जो बहु जीव विराजें, तिनकी रक्षा ठान हम कीनी यह काजें । व्रत भंगको भय ठान हम इस राह न आये, इम बच सुन चक्रेश तुष्ट हुए अधिकाये ।।८०।। जाने दृढ़ व्रत धार, तिन सन्मान सु कीनो । प्रशंसा तिन ठान मुद ह्वं तिन पूजीनो, संपत बहुविध देय तिन सन्मान करायो, जो थे व्रत कर हीन तिन सबको कढ़वायो ।।८१।। पुन्यवान जे जीव तिनकी पूजा होयो, अघतें निंद्या पाय बहुविधके दुख जोयो । कंठ विषें यज्ञोपवीत तिनको पहरायो, प्रतमा व्रतको चिह्न सब जनके मन भायो ।।८२।। प्रतमा ग्यारह जान तिनको भेद बतायो, जिसकी जैसी शक्ति तैसो कार्य करायो । सब जन इनकी पूजा भक्ती बहुत करायो, नृप माननते मान्य सब जो करें कधिकायो ।।८३।। आदिनाथ भगवान सोही ब्रह्मा कहिये, तिसहीको ये ध्याय तातें ब्राह्मण कहिये । चौथो बर्ण सु थाप चक्रीने हितकारी, धर्मवृद्धिके काज तिन षटकर्म सु धारी ।।८४।। श्री जिनपूजन ठान गुरुको ध्यान करायो, कर स्वाध्याय महान संजम तप सु धरायो । दान सुपात्रहि देय पूजा भेद कहोजें प्रथम नित्य-मह जान कल्पद्रुम गिन लीजें ।।८५।। और चतुरमुख ठान अष्टाह्निक सुखदायो, इस विध भेद सुचार पूजाके सुगहायो । प्रतिमा मंदिर आदि निर्मापन सु करायो, जलसे फल पर्यंत ले जिनालय जायो ।।८६।। जिनवर मूरत पूज नित्यमह जाको नामा, मुकटबंध जो राय करत चतुर्मुख तामा । कल्पद्रुम जौं पूज सो चक्री करवायो, सब जग आशा पूर्ण

कल्पद्रुम सम थायी ॥८७॥ इन्द्र सुअर्चा ठान नाम महामह जाकौ, अष्टाह्निक फुन जान इन्द्रध्वध शुभ ताकौं। करत सुहरि अभिषेक उच्छव बहुविध करही सबही इसके भेद कर पुन्यबंध सुवरही ॥८८॥ पूजा करके होय संपद विश्वतनी है, पूजा बहु सुखरास, इम जिनराज भनी है। तिन पूजासे सर्व विघ्न नाश लहायी, जैसे वज्र पड़त पर्वत तुरत फटायी ॥८६॥ ऐसो भविजन जान जिनपूजा नित कीजै, जब ग्रह होय विवाह पुत्रादिक जन्मीजै। नित्य करो वृष अर्थ अघकी हान करायी, व्याधि दुःख भय क्लेश तुम ढिग एक न आयी ॥६०॥ द्रव्य उपार्जन होय ताको जो चौथायी, सो वृतियन को देय सो पुन कीर्ति लहायी। दीन अनाथ सुजीव तिनको देय सुदाना, दया चित्तमें ठान इम भावो भगवाना ॥६१॥ जो निर्ग्रन्थ मुनिवर रत्नत्रय सुधरायी, तिनको देवे दान पात्र-दानसो गायी। मध्यम पात्र गृहस्थ जो समानकौ दीजै, सोंहै दान समान श्रावककौ लख लीजै ॥६२॥ जो नर दीक्षाधार सबही धन तज देवे, सो है अन्य पदान निज आतम लख लेवे। दान सुपात्र ही जोग जो देवे नर ज्ञानी, ताको तिहु जग भोग संपत सर्व मिलानी ॥६३॥

कामनी मोहन छन्द

यश जो होवे सदा पुन्य बहु थाय है, दानसे लक्ष्मी बहु उप-जाय है। ग्रहपती दान कर अधिक सोभाय है, तास बिन नाव पाषाण सम थाय है ॥६४॥ ज्ञान इम पात्र उतकृष्ट को दीजिए, दानतें ऋद्धिगुण श्रेयसु लहीजिए। धर्मशास्त्रहि तनौ पठन पाठन करो, ज्ञानके अर्थ स्वाध्याय नित विस्तरो ॥६५

मन जु इन्द्रिय तनौ रोकनो इष्ट है, व्रत शीलादि पालन सदा श्रेष्ठ है। याहिको नाम संजम सदा ख्यात है, स्वर्ग अरु मोक्षदायक सु अवदात है ॥६६॥ पर्वके बीच उपवास शुभ धारिये, तपसु प्रायश्चितादिक सकल कारिये। एम षटकर्म ग्रहबीच नित धार हो, जास बिन कर्मको बंध विस्तारहो ॥६७॥

चौपाई

षट पुन्यकर्म जु नित्य कराय, सो ही ग्रहस्थ ब्राह्मण कहाय।
इम जान ग्रही षटकर्म धार, सो स्वर्ग मोक्ष देनहार ॥६८॥
इम चक्री द्विजवर्णहि थपाय, ते धर्म कर्म नित प्रति कराय।
तिनकौ सुदान नितप्रत दिवाय, इक दिनकौ अब वर्णन सुनाय॥६६
निसमैं सोवत महलन सुमांह, तहां षोडसस्वप्न सु इम लखाह।
तेईस सिंह देखे महान, ते बनमांही सु विहार ठान ॥१००॥
एक तरुण सिंघ मृगलार जाय, हस्तीसु भार अश्वहि लदाय।
सूके त्रण पत्र जु छाग खाय, गजपर देखो बंदर चढ़ाय ॥१०१
काकन कर बाधित उलू देख, पेखे नृत्यत भूत हि विशेष।
इक मध्य शुष्क सरवर निहार, कोनो माही जल भरो सार ॥१०२
धूली आच्छादित रत्न थाय, बालक जु वृषभ रथ ले चलाय।
चंद्रमा ग्रहणयुत नृप लखाय, मेघाच्छादित सूरज दिखाय ॥१०३
पूजा नैवेद्य जु स्वान खाय, बहु देख वृषभ जु साथ जाय।
गोबरपर पटबीजन रमात, हस्ती ह्वै जुधकरते लखात ॥१०४
इम सोलह सुपनकौ निहार, जाग्रत ह्वै मनमाही विचार।
मतिश्रुत बलतैं किंचित सुजान, तौ पण निश्चै नाही जु ठान ॥१०५

पुन प्रात भये तज सेज सोय, सामायक आदिक कर बहोय। बहु मुकट बन्ध नृप साथ लीन, सेना संजुत नृप गमन कीन ॥१०६॥ त्रिजगद्गुरु जिनवर पास जाय, परिणाम भक्ति पूजा कराय। मन वचन काय त्रय शुद्ध थाय, सब भूपत संग चक्री नमाय ॥१०७॥ बहुविध द्रव्यनसे पूज ठान, गुण वर्णन कर पुन पुन नमान। ग्यानावर्णी जु अवधि कहाय, ताकी उपसम तब कराय ॥१०८॥ तबही शुभ पायो अवधि-ज्ञान, परणाम विशुद्ध सेती लहान। तीर्थंकर भक्ति तने पसाय, इस लोकमांह इम फल गहाय ॥१०९। परलोकतनी को कहे बात, क्या क्या सुखको सो नर गहात। तब धर्म श्रवण कारण महान, नर कोठेमें बैठो सुजान ॥११०॥

गीता छंद

स्वर मोक्षकी दायक सु द्वै विध वृष सुनौ जिनवर कहो।
जग उदयकर्ता दयापूर्वक, तत्व गर्भित सरदहो।
तब अवधिज्ञान थकी सुचक्री स्वप्न फल सब देखियो।
उपकार सबको जान मनमें प्रभू सेती पूछियो ॥१११॥
भगवान मैं ब्राह्मण सुकीजे धर्म हेत विचारके।
ये योग्य है जु अयोग्य कहिये कृपा द्रिष्टि निहारके।
जो स्वप्न सोलहमें जु देखे शुभ अशुभ तिन फल भनौ।
यह ध्वांत संशय हृदय माही ताहि प्रभु तत्क्षण हनौ ॥११२
इम प्रश्न सुन भगवान वाणी, खिरी सब सुखदायजी।
हे भव्यतैं ब्राह्मण करे इस काल धर्म धरायजी।
तीर्थेश शीतलनाथ तीरथ मार्ग शुद्धि तजायजी।

शुभ धर्म छोड़ कुपथ मिथ्या धर्म ताह चलायजी ॥११३॥
यह जैन धर्मरु मुनि श्रावक तास द्वेषी थाय है ।
खोटे जु शास्त्रनको रचे तब बहुत लोग ठगाय हैं ।
बिन शील निर्दय धूर्त कुटिल जु लोभमें तत्पर सही ।
पुण्य कर्म करके रहत जानो नित्य अघ पंडित वही ॥११४॥
जे विषय ग्रन्थ अतृप्त हो हैं खाद्य स्वादन तत्परा ।
सब जगत दूषन खान जानो इम क्रम हि बुठता धरा ।
स्वप्नन तनो फल सुनो किंचित जो अशुभ बहु थाय हैं ।
आगै सुपंचम काल होवे, तासमें बरताय है ॥११५॥

चौपाई

तेइस सिंघजु तुमहि दिखाय, पर्वतकूटहि माह चढ़ाय । ताकौ फल इम जाननरिंद, महावीर बिन और जिनिंद ॥११६॥ सब आरजखंडमें विहराय, सकल कर्मको नास कराय। सास्वत मोक्ष सुथान लहाहि, तिनके तीर्थ कुलिंगी नाहि ॥११७॥ मृग वेष्टित इक सिंघ लखाय, ताकौ फल सन्मत जिनराय । ताके तीर्थ कुलिंगी होय, बहुते पाखंडी अबलोय ॥११८॥ गजको भार अश्व ले जाय, ताफल इम जानो नर राय । बल कर रहित मुनीश्वर होय, पूरण कार्य करै नहि सोय ॥११९॥ सूके द्रुमको अजा सुखात, यह सुपनो देखो तुम रात । निरमल आचारी नर जात, ते खोटे आचरण करात ॥१२०॥ गज आरूढ़ सुमरकट देख, ताकौं फल इम जान विशेष । अकुलीनो बहु राजा जोय, उत्तम वंश नृपति नहि होय ॥१२१॥ कानन कर उलूक बाधाय, तिस स्वप्ने को

फल इम थाय। जैन मुनीकौ बहु नर त्याग, सेय कुलिंगी धर अनुराग ।।१२२।। नृत्तत भूत जु तुमहि लखाय, ताकौ फल इम हुं दुखदाय। जन्म विवाहादिकके माह, व्यंतर देवनकौ पूजाह ।।१२३।। मध्य शुष्क देखौ सर एक, ताकौ फल सुन धरौ विवेक। तिया पुरुष बहुते गिन लेह, होय कुशीली अघकर तेह ।।१२४।। गौमय पर पटजीवन थाय, ताकौ फल प्रभु एम बताय। नीच सुघरमें लक्ष्मी होय, और रूप धारे बहु सोय ।।१२५।। हस्ती जुध करते जो देख, ता-फल राजा लडे विशेष। सोलह सुपननकौ फल एम, दुखदाई विष तरुवर जेम ।।१२६।। कोड़ाकोड़ी सागर जाय, तब इन स्वप्ननकौ फल थाय। इम फल सुनकर भरत नरेश, नम कर आयो अपने देश ।।१२७।। दुःस्वप्नकी शांति निमित, जिनग्रह बनवायो शुभ चित। पूजा बहुविध सेती करी, प्रभु अभिषेक कियौ शुभ घड़ी ।।१२८।। शांत कर्म जो अति ही कियौ, पात्रनकौ बहु दानजु दियौ। रत्नमई जिनबिंब बनाय, तिनकी प्रतिष्ठा करवाय ।।१२९।। चौबिस घंटा तहां बजाय, हेम संकलन माह बंधाय। पुर गौपुर तें बंदनमाल, निज द्वारे बांधी तत्काल। द्वार मांह घंटा लगवाय, आते जाते मुकट लगाय। तबही जिनवर सुमरण होय, ऐसो कार्य कियौ नृप सोय ।।१३१।। भक्ति राग उरमें अति धरौ, अष्ट द्रव्य ले पूजन करौ। नुत थुत करत निरन्तर राय, स्वर्ग मोक्ष फल जासे थाय ।।१३२।। तिसी रीतकौ पुरजन देख, द्वारे घटा बांध विशेष। जिन मूरत द्वारे पधराय, आते जाते नमन

कराय ॥१३३॥ सोई बंदनमाल कहाय, अबलो ताकी रीत चलाय। मंदिर बाहर सिखर महान, प्रतिमा थापी सुख दातार ॥१३४॥ बाहरसे तिन दर्शन होय, लो अस्पर्श लखत मुद होय। फुन घोटकपर ह्वं असवार, करत प्रदक्षणा चक्री सार ॥१३५॥ जय अरहंत सुमुखसे भने, पुष्पांजलि क्षेपन बहु ठने। इनको देख प्रजाजन सबै, ताही विध करते भये सबै ॥१३६॥ अबै नगर परकम्मा करे, लोकमूढ़ चितमाही धरे। चौबीस तीर्थंकर गुण खान, जो इसकाल होय सुख दान ॥१३७॥ होय गये अरु हो है सही, सबकी गिनति बहत्तर कही। पर्वत श्री कैलाश महान, तापर शुभ चैत्यालय ठान ॥१३८॥ हेमरत्नमय तुंग अनूप, बनवाये सुबहत्तर सूप। तीर्थंकरकौं जितौ शरीर, तितनी बनवाई नृप धीर ॥१३६ जैसो प्रभुकौ वर्ण जु थाय, तैसी ही मूरत सुरचाय। सब लक्षण बनवाये खरे, रत्नमई सबके मन हरे ॥१४०॥ तिन की प्रतिष्ठा करवाय, विध संयुक्त सब ही पूजाय। चव विध संघ तहां सब आय, परमोच्छव तबही बर्ताय ॥१४१॥ सो अब भी जिन मूर्ति महान, गिर कैलाश विषै शुभ जान। देव विद्याधर अब भी जाय, पूजन करके हर्ष लहाहि ॥१४२ कोड़ाकोड़ी सागर तास, बनवाये हुवे शुभ जास। बिच्च में तास मरम्मत भई, सगर चक्रधर ने निर्मई ॥१४३॥ चार तरफ खाई बनवाय। तामें गङ्गा डारी लाय। भूम गौचरी सके न जाय, यहां से बन्दन कर शुध भाय ॥१४४॥

गीता छन्द

ग्रहपतकौं यह चाहिये जो चैत्य चैत्यालय करें ।
या सम सुपुन्य न और कोई काल बहुजस विस्तरे ।
इम वृष करत शुभ आध संघाधिप पदी चक्री गही ।
त्रय ज्ञान धर गुणगण जलधि दर्शन विशुद्ध धरे सही ।।१४५
जिन पूज कर मुनि दान देवे पर्व उपवासहि धरे ।
यम नियम पाले भावसेती सर्व दोषहि परहरे ।
चितमाह एम विचार है यह धर्म तरुवर फूल है ।
सब ही जु सुखकौ भोग है नहीं धर्म उरसें भूल हैं ।।१४६।।
इस धर्मतें धन ईश होवे ग्रौर जिनपत होय हैं ।
'तुलसी' सुपति ग्ररु चक्र पदवो वृष थकी सब जोय हैं ।
तातें सु वृष ग्रर्थी भविकजन धर्म उर धारो सदा ।
सो धर्म मुझ भव भव मिलो ताकूं नमूं चित ह्वै मुदा ।।१४७

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे श्रीसकलकीर्तिविरचिते भरतचक्रिणा द्विज स्थापन स्वप्नवर्णनोनाम सप्तदशम् सर्ग: ।।१७।।

अथ अठारहवाँ सर्ग

गीता छंद

श्रीयुक्त वृषभ जिनेश बंदूं वृषभ चिह्न सु पग विषैं ।
वृष तीर्थंकरतां जिन प्रथम उत्तम सुवृष नायक लखे ।
वसु कर्म जीतन हार जय सुकुमार गणनायक कहै ।
योगींद्रदेव व ऋद्धिसागर नमन कर हम सिध चहे ।।१।।

चौपाई

भरतनतनों सेनापत मान, चौदह रत्ननके मध जान ।
वृषभ जिनेश्वरको गणधार, इकहत्तर वो जानो सार ।।२।।
जयकुमार नृप सील सुवान, नार सु लोचन सती महान ।
तिनकौं चरित सु पावन जान, मैं संक्षेप करूं बखान ।।३।।
शील दानकौ फल सुखकार, जासौं परघट होवे सार ।
भरतक्षेत्र कुरजांगल देश, हस्तनागपुर तहां सुवेश ।।४।।
राज करे सोमप्रभ सार, राणी लक्ष्मीवती निहार ।
तिनके जयकुमार सुत जान, जग बिजई परतापी मान ।।५।।
जैकुमार के चौवह भ्रात, विजयादिक जानौ विख्यात ।
ते कुमार गुण धरे अनेक, रूपकला लावन्य विवेक ।।६।।
पंद्रह सुत युत सोम सुराय, भ्रात श्रेयांस सहित सोभाय ।
तैसे ताराग्रह युत सार, सौभं चन्द्रसु तम हर्तार ।।७।।

जोगीरासा

एक दिवस नृपकाल लब्ध वस भव भोगन वैरागे । निज पद में सुत जयकौ थापौ मुन पदसे अनुरागे ।धनधानादिक अथिर चितते तीर्थंकरके पासे । जाय ऋषभ जिनकौ बंदन कर परिग्रह तज दुखरासे ।।८।। मन वच काय त्रिशुद्ध सुकरके दीक्षा ली हितकारी । शुक्लध्यान असिते कर्मनकी सेना सबै

विदारी । केवलज्ञान उपाय सुरनते बहु विध पूज लहाई ।
फुन अघाति हति शिवमें पहुंचे सब बंदे तिह ठाई ॥६॥

चौपाई

जय राजा पितु पद को पाय, बंधुजन पोषे हरषाय ।
पाले प्रजा रहित जंजाल, सुखमें जात न जाने काल ॥१०॥
एक दिवस नृप जय सुकुमार, धर्म श्रवणकी इच्छा धार
नगर बाह्य उद्यान मझार, पहुंचे निज इच्छा अनुसार ॥११॥
तहां बैठे थे इक श्री मुनी, शीलगुप्त धारक बहु गुणी ।
मन वच काय त्रिशुद्धप्रणाम, कर नृपपूछो वृषअभिराम ॥१२

अडिल्ल छन्द

मुन बोले सुन भव्य धर्म द्वै भेद है, पंच अणुव्रत सप्तशील श्रावक गहै । दश लक्षण मुन-धर्म सु उत्तम जानिये, इस प्रकार सुन धर्म सु श्रावक व्रत लिये ॥१३॥

दोहा—नृप संग तिस बनके विषें, नाग नागनी आय ।
सुन वृष अति हर्षित भये, शील व्रत सुधराय ॥१४॥

चौपाई

नृप जयधर्मामृत कर पान, जन्म जरा मृत नाशक जान ।
ह्वै संतुष्ट नमन कर राय, निजपुरमें आये विहसाय ॥१५॥
इक दिन वर्षा ऋतुके मांह, नभतें विद्यु र पात लखाय ।
तासे एक नाग मर गयौ, नागकुमार देवसो भयो ॥१६॥
अन्य दिवस गजपै असवार, ह्वै तिर बनमें गये कुमार ।
उस नागनको देखो तहां, रमे विजाती सर्प जु सहा ॥१७॥
तास जात काकोदर जान, इम लख जय नृप लीला ठान ।
नील कमल मारो एक सही, नृत्य लोग कोपि अति वही ॥१८

लाठी ईंट काठ पाषाण, तिनकर मारो सर्प अज्ञान ।
सील भंग ते बहु दुख होय, ताकी दया करे नहिं कोय ॥१६
तब काकोदर लहके मीच, जलदेवी गङ्गाके बीच ।
काली नाम बड़ी विकराल, रौद्ररूप अति मानौ काल ॥२०
नागन दुराचारनी सोय, शुभ लेश्यापर भाव सुजोय ।
सो मरकर निजपियके पास, देवी भई रूपगुणरास ॥२१॥
नागकुमारीदेवी भई पतिकी प्राण बल्लभा थई ।
जयकुमारसे रोषित होय, पतिको सिखलाईयो जो बहोय ॥२२
सुनके सुर क्रोधित अति भयो, रात्र समै जयके ग्रह गयौ ।
सोवै थे तहां जय सुकुमार, श्रीमति तियसो वचन उचार ॥२३
नागन बात कहूं सुन नार, आज लखो हम अचरजकार ।
नागिनी एकदिन बनके माह, शीलव्रत धारौ मुन ठाय ॥२४॥
आज कुकर्म विषै सोरती, काकोदरके संग दुमती ।
ताकौं लख हम कंकर जोय, मारो भो अति रोषित होय ॥२५
दोहा—नागदेव इम वचन सुन, तिय निंद्या बहु कीन ।
अहो कुटिलताई विषै, ये है बड़ी प्रवीन ॥२६॥
कहा क्रूर मैं सर्प थो, कहा दयामय धर्म ।
मैंने इस संसर्गतें पायो थो जो पर्म ॥२७॥
ये मेरो वर मित्र यो, मैं कियो बुरो विचार ।
यो निज निंद्या बहु करी, देव सु नागकुमार ॥२८॥

चौपाई

नमस्कार करि नागकुमार, वस्त्राभूषण दिये अपार ।
याद करो जब ह्वै काज, आऊंगो ततक्षिण महाराज ॥२६॥
यह कह निज स्थानक सुर गयो, देख पुन्य महातम नयो ।

हननहार होवे सुखकार, यह वृष महिमा अगम अपार ॥३०॥
चक्री संग नृप जय सुकुमार, खेचर भूचर सुरगण सार।
तिनको जीत प्रतापसु जान, प्रगटायो सुख करे महान ॥३१
और देस काशी शुभ लसे, बाणारस नामा पुर बसे।
राय अकंपन राजे जहां, ईत भीत नहि व्यापै तहां ॥३२॥
गृहस्थ तनो आचार्य अनूप, माने चक्री आदिक भूप।
नार सुप्रभा ताके ग्रहे, धर्म कर्ममें तत्पर रहे ॥३३॥
नाथ वंशमें अग्रज जान, सुत उत्तम उपजे सुख दान।
हेमांगद सुकेट श्रीकांत, इक सहस्र उपजे इस भांत। ३४॥
सती सुलोचन उपजी एक, धरे रूप लावन्य विवेक।
दिव्यरूप लक्ष्मी सम जान, महासती शुभ आकृतवान ॥३५॥
शुभ लक्षण कर भूषित देह, जिन पूजा ठाने धरनेह।
स्वर्ण तने उपकर्ण मगाय, तिनसो श्रीजिन पूज रचाय ॥३६
श्री जिनको अभिषेक सु करे, उत्तम पात्रदान अनुसरे।
जिन आज्ञा पाले सुमहान, शुभ भावन सो सुनो पुराण ।३७
सुता सुलोचन मानो नेह, पुन्य मूर्त है निसंदेह।
एक दिन फाल्गुणमास मझार, नंदीश्वर को पर्व विचार ॥३८
अष्टाह्निक पूजा शुभ करी, फुन गंधोदक ले तिस घरी।
पितुको जाय दई हरषाय, पिता लेय मस्तकमें लाय ॥३९॥
जाय सुता अब करो अहार, भाखो यूं नृपने हित धार।
कन्या योवनवान निहार, मंत्रिनसें पूछो नृप सार ॥४०॥
कन्या रत्न किसे दीजिये, जाचक भूप बहुत पेखिये।
काके योग्य सुकन्या सार, सो अब भाखो कर सुविचार ॥४१
इम वच सुन श्रुतार्थ परधान, बोलो हे राजन गुणवान।

अर्ककीर्त्त चक्री सुत जान, वरगुण पूरित लक्ष्मीवान ॥४२॥
ताको कन्या दीजे सार, लक्ष्मी कीरत बढ़े अपार ।
सुन मंत्री सिद्धारथ जोय, बचन निषेधत बोलो सोय ॥४३॥
दोहा—बुधजन निज समसे करै, सोई उचित संबध ।
होय बड़ा जो आपसे, तासो किसो प्रबंध ॥४४॥

अडिल्ल

भूप प्रभंजन वज्रायुधबलि भीम है, भुजरथ मेघेश्वर आदिक गुण सीम है । इनमें काहू नृपको कन्या दीजिये, तब बोलो सरवारथ इम नहि कीजिये ॥४५॥ भूमगौचरित तैं प्रथम संबंध है, बंध अपूरव लाभ अर्थ परबंध है । खेचर नृपके मध्य किसी नृपको सही, कन्या निज परणाय देहु सुन्दर यही ॥४६॥ बोलो सुमत प्रधान ठीक यह नहीं कहो, जे भूचर नृप बैर बंधे तिनतैं सही । तातैं याको भूप स्वयंबर कीजिये, जाको कन्या बरैं तासको दीजिये ॥४७॥ यह विधान शुभ जान पुराणन उच्चरो, रीत पुरातन ताह अबै परघट करो । इस प्रकार तिस बचन सबने मानिया, राजा राणी बंधु सबै चित आनिया ॥४८॥

रूपक चौपाई

भेट पत्र-युत दूत मिजाये, भूचर खेचर नृप बुलवाये ।
जान विचित्रांगद सुर आये, पूरव भव संबध बताये ॥४६॥

गीता छन्द

मिल नृप अकंपन सो नगरकी दिशा उत्तरमें रचौ ।
प्राग मुख सरवतोभद्र मंडप शुभ बिवाह तनौ खचौ ।
कोट पौली युक्त महल सुवर्ण रत्नमई महा ।

रत्न तोरण युक्त कूट सुकुंभसे सोभा लहा ।।५०।।
चौकोर चार सुद्वार युक्त सु कोट अति सोभै तहां ।
वर द्रव्य मंगल युक्त इत्यादिक बहुत शोभा वहां ।
स्वयंवर मंडप अनुपम प्रीतसेती सुर करो ।
प्रीत कर्ता नृप अकंपन गये, सो तहां गुण भरो ।।५१।।
भूचर खेचर तहां नृपत आये, तिन्हें नृप लेने गये ।
प्रीतयुक्त विभूतसै तिन सबनको लावत भये ।
उचित दानरु मानसे तो सबकी पाहुनगत करी ।
मंगल सु दायक जिन तनी कर भक्ति पूजा आदरी ।।५२।।

चौपाई

नगर उछालो नृप हरषात, गीत नृत्य वादित्र बजात ।
हेम पीठ पै कन्या सोय, बिठलाई पूरब मुख होय। ५३।।
शुद्ध सलिल सो कर अभिषेक, श्रेष्ठ नार चित धार विवेक ।
फुन कन्या ने मंडप कीन, वस्त्राभूषण पहर नवीन । ५४।।
पूजा श्री जिनकी कर सार, गन्धोदक मस्तकपे धार ।
राय अकंपन बैठे जाय, नार सुप्रभायुत हर्षाय ।।५५।।
बड़ो महेंद्रदत शुभ जान, दूजो देवदत पहचान ।
दोनों कन्याके रथ मांह, ढारे चंवर सुधर उत्साह ।।५६।।
गीत वादित्रनको ध्वन सार, होय रहो आनंद कर्तार ।
भ्राता हेमांगद चहु ओर, ठाडे सारी सेन्या जोर ।।५७।।
खगाधीश जो आये तहां, भूम गोचरी नृप अरु जहां ।
नाम ठाम तिनके विख्यात, अलग २ खोजो बतलात ।।५८।।

सवैया २३

दक्षिण श्रेणीको अधिपति यह, नमिको पुत्र सुने महान ।

अधिपति उत्तर श्रेणीको, यह विनमतनौ सुत सुविनम जान।
बतलाये खगपति बहुतेरे रूपवान अरु विक्रमवान ।
अर्ककीर्ति चक्रीको सुत यह लक्ष्मीवान सुबुद्ध निधान ॥५६॥
इनमें कोई नृप नहि ऐसो कन्या चित चुरावनहार ।
आगे जय नृपने कन्याको रतलख खोजो वचन उचार ।
राजा सोमप्रभुको सुत यह भूप अमरगण जीतनहार ।
लक्ष्मीवान प्रतापो जगमें जयकुमार यह अनुपम सार ॥६०॥
खोजेके बच सुनके कन्या पूरव भवसे नेह पसाय ।
रतनमाल निज करमें लोनी, कन्या निज चितमें हरषाय ।
कामदेवके जीतनहारे जयकुमारके कंठ मंझार ।
कन्याने वरमाला डाली तबही उत्सव भये अपार ॥६१॥

चौपाई

राय अकंपन चले सोय, जय नृप पुत्री आगे होय ।
स्वजन विभूत लेय अधिकाय, निजपुरमें परवेश कराय ॥६२॥

गीता छन्द

अतिषेण दुर्मुख दुष्ट सेवक अर्क कीरत सो कहौ ।
जय नृप अकपनतनी निद्या कूट बहु कहतौ भयौ ।
स्वामी अकंपन दुष्टने कन्या प्रथम देनी करी ।
जयकुंवरको फुन दुष्ट चित ह्वं कुटल ताई आदरी ॥६३॥

चौपाई

मायाचारी मन धर लेत, निज सुभाग प्रगटनके हेत ।
स्वामी तुम्हें निरादर काज, बुलवाये थे सहित समाज ॥६४॥
मान भंग तुमरो इन करो, दुष्ट अकंपन चित नहो डरो ।
यो दुर्वचन सुनत सुकुमार, बाढो हिरदे क्रोध अपार ॥६५
हृदय अग्नि सम जरतो भयो, ततछिण रणको उद्यत ठयो ।

कव अनवद्यमती परधान, अर्ककीर्तिसेती बुधवान ॥६६॥
बोलो वच हितमित सुखदान, भोकुमार सुनिये मम वाण ।
रीत स्वयंवरकी है यही, कन्या वरे सुवर है वही ॥६७॥
भूपत मंडप माह अनेक, आये तामै से कोई एक ।
अशुभ होय या लक्ष्मीवान, हो कुरूप या रूप निधान ॥६८
फोड़े फुनसी युत तन होय, अथवा स्वेच्छाचारी कोय ।
कन्या वरे सुवर है सोय, मान भंग यामें नहीं जोय ॥६९॥
यातें कोप करो मति स्वाम, न्यायवंत वर गुणगणधाम ।
कोप अग्नि यह है दुखदान, चव पुरषारथकी ह्वै हान ॥७०
सुखके कारण ह्वै दुखरूप, ये सब समझ लेहु तुम भूप ।
ऋषभदेवने जगके मांह, पूजनीक पद दीनौ याह ॥७१॥
सो यह राय अकंपन जान, माननीक है बुध निधान ।
जयकुमार दिग्विजय मझार, अद्वितिय संशय नहि धार ॥७२
यातें युद्ध न कीज कोय, युद्ध करे ते नाश जु होय ।
इस प्रकार मनमें कर ठीक, हे कुमार हठ तजो अलीक ॥७३
इस प्रकार वच सुने कुमार, बोलत भयो तबै रिसधार ।
तुमरी बूढ़ी वय तो सही, पण अब रंचक हू बुध नही ॥७४॥
पहले कन्या देनी करी, जयकुमारको गुण गण भरी ।
माया कर फुन हमें बुलाय, जयके कंठमाल डलवाय ॥७५॥
मायाचारी इसने करी, ताको दंड देहूं इस घरी ।
तब मेरे उर साता होय, यामें संसय नाही कोय ॥७६॥
इत्यादिक वच कहे कुमार, मंत्रिनके वच लंघे सार ।
तब कुमार सब दलकों साज, रणभेरी दीनी रण काज ॥७७
विजयघोष गजपै असवार, ह्वै रणभूमि विषै पगधार ।
राय अकंपन जानो एम, विन कारण रण उद्धत केम ॥७८॥

आकुल ह्वैके दूत बुलाय, बंधन युत सब बच समझाय।
भेजो दूत शांतता अर्थ, निपुण दूत कारज समरथ ॥७६॥
दूत अर्ककीरत ढिग जाय, नमस्कार कर बचन कहाय।
विनती एक सुनो महाराज, सीम उलंघन योगन काज ॥८०
होऊं प्रसन्न अबं गुण रास, करो न रणमें निज कुल नाश।
यह कह दूत चुप्प हो रहो, रण निश्चय तब सब नृप कहो ॥८१
दूत अकंपनसो सब कहो, सुनत विषाद चित्तमें लहो।
जयकुमार भी बैठे आय, क्रोधयुक्त बच कहे सुनाय ॥८२॥
दोहा—अन्यायी दुर आतमा, ताकूं अब हो जाय।
बांधूगा मैं संखलन, यह कह रणको धाय ॥८३॥

कड़खा छन्द

विजयकर युक्त नव मेघ ईश्वर बई, भेरिका रणतनी विजयघोषा। गज सुविजयार्द्धपं होय असवार, वर भ्रात युत चले जय सुगुण कोषा॥ सुतसे इम कहो रहो जिनधाममें शांति पूजा करो सु गुण गावो। यो अकंपन कहो पुत्र बसु संग ले सैन्ययुत शत्रु ऊपर सुधावो ॥८४॥ जयवर्मा सुकेता सिरीधर नृपत देव, कीरत सुर विमित्र जानो। नृपत यह पंच शुभ मुकुट बंध और मो नाथ अरु चंद्रवंशी महानो। प्रचंड अरु मेघ प्रभु महाविद्याधरे बड़ो उद्धतता लिए मानो। इनहीको आदि दे नृपत जय संगह्वं अद्ध विद्याधरन युत पयानों ॥८५॥ अर्क कीरतके संग मुनन आदिक सुखग और वसुचंद्र खग वीर्य वानो, भरतके पुत्रके अंग रक्षक भये और नृपत संग ले अयानो। सूरमा भटन अंतूनके हतनको घोर

अरु वीर संग्राम कीनौ, सरनतै सैन्या निज लखो छाई तबै जय सुभ्राता न युत क्रोध लीनौ ॥८६॥ गहो तब हाथमें वज्रकांडहि धनुष करो रण घोर कायर डराई बाण जय कुंवरते सैन्य हटती लखी तबै चक्री तनुज रण कराई । अर्क कीरततने हुकमतें सुन भिषग चढ़े आकाशमें बाण मारे, जयकुंवर हुकमतें मेघ प्रभु नभ चढ़ें बाण बर्षाय पर दल संगारे ॥८७॥ तम अगन मेघ गज आदि विद्यामई बाण बहु सुन भिषग तजे मारे, जयकुंवर पुन्यतें मेघ प्रभुने तबै बाण अरिके सबै काट डारे, मेघ प्रभु भास्करादिक खगिनने लई जीत तब पुन्यसे सुक्खकारी, रण विषैं भटकेई छिन्न भिन्नांग ह्वै पड़े सो आयके भूमभारी ॥८८॥

चौपाई

मर्ण समैं कीनौ शुभ ध्यान, राग द्वेष तज समता आन ।
उरमें स्मर्ण कियौ नवकार, चयकर पहुंचे स्वर्ग मझार ॥८६
केई भटनकी रणके मांह, भई सरनतै जर्जर काय ।
दिक्षा धरन भाव शुभ कीन, चयके पहुंचे स्वर्ग प्रवीन ॥६०॥
बहुत कहनतें काज न जान, मरन समैं जैसो ह्वै ध्यान ।
अशुभ होय अथवा शुभ जोय, जैसी मति तैसी गति होय ॥६१
रणमें गज भट मरे अपार, देख तिने जय किरपा धार ।
विजयारध गजपें असवार, ह्वै के अर्क कीर्त्त सो सार ॥६२॥
वचन कहे हितमित विख्यात, हे कुमार सुन मेरी बात ।
चक्रवर्तिने बहु जस लयो, न्यायमार्ग पर वर्तत भयो ॥६३॥
अर तुम दुराचार यह करौ, कुपथ जगतमें प्रगटो बुरो ।
पर वामा इच्छक बहु जीव, दुखको संतति लहे सदीव ॥६४

अपकीरति सब जगमें होय, निंदनीक भावे सब कोय ।
दोष पाप अरु क्रोध विशेष, होवे धर्मतनौ नहि लेश ॥९५॥
धर्मीजन तिस नरकौ पास, नाहीं बैठन दे गुणरास ।
इस भवमाही बहु दुख लहै, परभव नर्क विषै दुख सहै ॥९६
रणमें बंधुजनकौ नाश, होवे निश्चयसे दुख रास ।
कुपथ चलनतें ह्वै अपमान, प्रभुत जाय होय बहु हान ॥९७
यह विचार करके सुकुमार, मद आग्रह तज ये इस बार ।
युद्ध छांड़ प्रीतकर लोय, नातर मानभंग तुम होय ॥९८॥
इस प्रकार जय नृप बच चेये, अर्ककीर्ति सुन क्रोधित भये ।
अपनौ गज पेलो जय और, घातकरन लागे तिस ठौर ॥९९॥
जयकुमार धर क्रोध प्रचंड, गजके युद्ध विषय बलवंड ।
विजयारध गजको तिसवार, पेलो ततक्षिण नव सर मार ॥१००
अष्ट चन्द्र रवि कीरति जबै, बाण खेंच मारे नव तबै ।
सूर्य अस्त इतनेमें भयो, विघन सुजयको जय मेटियो ॥१०१
दशो दिशामें भ्रमर समान, फैलो अंधकार जु महान ।
निशा विषै रण अधरम जान, करो निषेध तबै बुधवान ।१०२
सुनके रण निषेधके बैन, ठैर गई तब सारी सैन ।
पृथ्वीमें कीनो विश्राम, मृतक समूह भरी अघ धाम ॥१०३
बीती निशा उगौ दिनराज, प्रात उठौ जय नृप जयकाज ।
रिपु कर्मनके जीतनहार, जिन तिनको स्तुत करके सार ॥१०४
रथ सु अरि जयमें असवार, घोटक खेत जुते ह्वै सार ।
वज्रकांड धनु करमें धरे, गजकी ध्वजा तुंग फरहरे ॥१०५॥
ठाड़े तहां जाय खम ठोक, सैन्य समूह विषै बेरोक ।

खेचर भूचर सब नृप खड़े, मद उद्धतरण भूमे अड़े ॥१०६॥
अर्ककीर्त्त रथमें असवार, अष्ट चन्द्रको ले निज लार ।
चक्र चिह्न है ध्वजा मझार, रण सन्मुख धाये ततकार ११०७

कडखा छन्द

लगो तब होन रण देख कायर डरे खेंचके बाण जयकुंवर मारे। तासतें छत्र अरु ध्वजा आयुध सबै अर्क कीरततने छेद डारे॥ तबै वसुचंद्र खग स्वामि रक्षा निमित जयकुंवर थकी रण आप कीनो। पृषत बाण दुहु ओरते चलें विद्यामई छांड़ियो गगन चित क्रोध लीनो ॥१०८॥ तबही जय ओरते सुभट भये भुजबली आदि योधा प्रधानौ। उठौ भ्रातानयुत सुभट हेमांगद और भ्रातानयुत जय कुधानौ॥ स्वामि हितकार दोहु ओर बहु भट उठे लिए कर शस्त्र रण करे घोरा। बजे मारू जबै सुभट घूनने लगे रुधिर परवाह अति चलो जोरा ॥१०६॥ केई सुभटन तने सीस कट गिर पड़े लड़े नेक बंध ही रण मंझारी। मांस अरु लौहू थको कीच जहां हो रही बृन्द भूतन तने नृत्यकारी॥ घोर संगर विषै जयकुंवर पुन्य ते मित्र सुरनाग आसन कंपायो। जान वृतांत सब आन वृत अर्ध शशि बाण अरु नागपासी सु लायो ॥११०॥ देयके सुर तबै गयो निज धाममें पुन्यसे होय क्या-२ न प्यारे। वज्र-कांडक धनुषमें चढ़ाके तजो बाण जय सूर्य सम तेज धारे॥ तबै वसुचन्द्र खग सारथो रथ सहित भस्म होय जेम तृण अग्न जारे। और रविकीति शस्त्र रथ सारथी अर्ध शशि सर थकी जार डारे॥१११॥ दीर्घ आयु थको बचो रविकीर्त अरु

स्वामी सुत जानके नाह मारो । अर्क कीरतको जयकुमरिने तबै बांधके निज सुरथ माह डारो । रिपुकी सैन्यके खगन को तत्क्षण नाग पासी विषैं बांध दीना जयकुंवरने तबै । पूर्व शुभके उदय जगत विख्यात जस आप लीना ॥११२॥

चौपाई

अर्ककीर्तको तब जनराय, नृप अकंपनको सौंपाय ।
सौंपे विद्याधर जु अपार, विजयारध गज हो असवार ॥११३
रण भू निरखत चले कुमार, मृतकनको कीनो संस्कार ।
जीवत जनकी पालन करी, आजोविका बढ़ाई जु खरी ॥११४

पद्धड़ी छन्द

निज पक्षी राजनयुत उदार, कीनौ तब नगर प्रवेश सार ।
ले बहु विभूत संग हर्ष धार, बंदी जन गावें जश अपार ॥११५
पुरमें बैठे सब नृप तजाय, निज निज स्थानक बहु हर्ष पाय ।
तब नृपत अकंपन कह्यौ एम, जिनपूजा कीजे धार प्रेम ॥११६
जातें सब विघ्न विनाश होय, सुख संपत बाढ़े कष्ट खोय ।
यह लख सब जिन मंदिर मंझार, पहुंचे नृपउरमैं हर्ष धार॥ ११७
जहां जयकुमार जिन पूज कीन, निर्मल वसुद्रव्य लिये नवीन ।
शुभस्तोत्र पढ़ो अतिभक्ति धार, मुखसे जिनवरके गुण उचार ॥११८
अपनी निंद्या कीनी अपार, संग्राम तनौ पातग निवार ।
अरुपुन्य प्रबल उपजायधीर, निजस्थान गए जयनृप गहीर ॥११९
अब नृपत अकंपन भक्ति धार' निज पूजे स्तुत मुख उचार ।
पुत्री ठाडी देखी उदार, जिन आगे कायोत्सर्ग धार ॥१२०॥
रण अंत जु लौ त्यागे अहार, अरु ध्यान धरे सब शांतकार ।
यह लखके तब नृप बच सुनाय, भोपुत्री तेरेशुभ बसाय ॥१२१

सब भये मनोरथ सफल आय, सब विघन समूह गये पलाय।
हे पुत्री अब व्युत्सर्ग छांड, चित्तमाहो अब आनंद मांड।।१२२
इम कहकर पुत्री संग लीन, बंधुजन युत चाले प्रवीन।
तिस साथसु निजआवास जाय, हर्षित मनमें होतअघाय।।१२३

चौपाई

नागपासमें नृप खग जेह, बांधे थे छाडे सब तेह।
तिनको स्नानसु भोजन दीन, प्रिय बचसेसंतोषित कीन।।१२४
अर्ककीर्त संतोषित भयो, अपनो आपो बहु निंदयो।
तिनके गुणको स्तवन कराय, निज अपराध क्षमा करवाय।।१२५
फुन गजपें करके असवार, भूचर खेचर बहु नृप लार।
सहित विभूत गये जिन धाम, प्रोतयुक्त कीनो परिणाम।।१२६
महाभिषेक कियो सुखदाय, शांति होत श्री जिनगुण गाय।
भक्ति थकी पूजा अर्हंत, कीनी अष्ट दिना पर्यंत।।१२७।।
तहां सुजय कुमारको लाय, विधिपूर्वक मिलाय करवाय।
आपसमें बहु प्रीत उपाय, एकीभाव अखंड कराय।।१२८।।
लक्ष्मीवती नाम जसु जान, बहन सुलोचनको गुण खान।
सहित विभूतिसे परणाय, दोन्ही अर्ककीर्तको राय।।१२६।।
भेट करी संपत बहु तदा, बहुत विनययुत कीने विदा।
पहुचावनको केतो दूर, गये अकंपन अरु जयसूर।।१३०।।
नृप विद्याधर और पुमान, तिनसों मोठे वचन बखान।
वाहन वस्त्राभूषण दिये, प्रीत सहित सु विसर्जन किये।।१३१
प्रथम स्वयंवरमें जो पाय, सोई चित्रांगद सुर आय।
जय सुलोचनाको शुभ ब्याह,कीनो तानें सहित उछाह।।१३२

मेघ प्रभु सुकेत नृप जान, निज आश्रित भ्रातादि प्रधान।
दान मानसे तोषित किये, ब्याहपीछे सुविसर्जन किये ॥१३३

छंद चाल

तब नाथबंसको स्वामी, शुभ नृपत अकम्पन नामी।
जयनिजया मात्र बुलायो, तासो शुभ मंत्र करायो ॥१३४॥

पद्धड़ी छंद

जिम चक्रवर्ति परसन्न होय, अब हो शुभ कारज करो सोय।
इम कहकर दूत सुमुष पठाय, सौंपी रत्नको भेट तांय ॥१३५
तब शीघ्र चतुर सो दूत जाय, भरतेश्वर के दर्शन कराय।
बर भेट तबै शुभनजर कीन, नमकरके बचभाखे प्रवीन ॥१३६

चौपाई

भो देव अकम्पनने ग्रह माह, करो स्वयंवर को उत्साह।
बहुते नृप खग आये जहां, कन्याने वरमाला तहां ॥१३७॥
डाली जयकुमार उर सार, प्रीत सहित धर हर्ष अपार।
विद्याधरको तप वसु कीन, अर्ककीर्त तिनको संग लीन ॥१३८
जयकुमारसेती संग्राम, कीनो तुम जानत गुण धाम।
अवधिज्ञानसे सब जानंत, तुम आगेमैं केम भनंत ॥१३९॥
तिन दोनोंको भयो विवाह, सो तुम जानत हो नरनाह।
प्रभुताने कीनो अपराध, ताको दंड देहु अब साध ॥१४०॥
जयकुमार सुअकम्पन जान, दोनों तुम चाकर गुण खान।
यह सुन चक्रवर्त गुण रास, दूत बुलायो विष्टर पास ॥१४१

सवैया ३१

कहो दूतने सु एम राजा सु अकम्पनने ऐसे बच कहकर तोह

कही भेजा है, वो तो सब माह बड़े गुणकर पूलनोक ग्रहाश्रम बीच शुभ न्याई धरे तेजा है। केवल विजय मेरी जं कुमार होतं भई शेष रत्न निंद्य सुत मेरो कहा साज है, अर्ककीर्ति सुत मोह अपकीर्ति दायक है रण माह तुम कैरो बमो शुभ काज है ॥१४२॥

चौपाई

ऐसे अन्याईको दीन, लक्ष्मीवती सुता परवीन ।
काज अयोग कियौ उन येह, नातरमें आवन नहि देह ॥१४३
इम बचननतें तोषित होय, मंत्री नम चक्री पद दोय ।
आज्ञा लेय चलो सो तहां, जय सु अकम्पनराजे जहां ॥१४४
तिनकौं आय कियौ परणाम, चक्रीके वच कहे ललाम ।
तिन सुन नृप परसन्न होय, दान मानसे तोषो मोय ॥१४५॥
जब जय नृप सुलौचना नार, भोगे भोग विविध परकार ।
स्वसुर गृह सुखमें चिरकाल, बीतौ जात न जानौ काल ॥१४६
स्वसुर गेहमें बहु दिन भये, हस्तनागपुर तें तब अये ।
गूढ़पत्र मन्त्रिनके सार, लख जय निजपुरको मन धार ॥१४७
आज्ञा सुसरतनो शुभ लेय, निजपुरकौं चाले उमगेय ।
नृपत अकम्पनने तब दीन, संपतसार रत्न परवीन ॥१४८
केती दूर पुचावन गयो, नोठ नोठ बाहुड आइयौ ।
विजयारध गजपे असवार, चाले जय सुलोचना लार ॥१४९
विजय आदि लघु चौदह भ्रात, ते गजपे चाले हर्षात ।
और सुलोचको सुभ भ्रात, हेमांगद चालो विख्यात ॥१५०
सहस्र भ्रातयुत अति छवि देत, ठेठ तलक पहुंचावन हेत ।
सहित विभूति चले हर्षाय, क्रमसो गङ्गाके तट आय ॥१५१

देखो तहां रमणीक सुथान, डेरे तहां किये बुधवान ।
अपने अपने डेरे माहू, विदा किये नृप सब हर्षाय ॥१५२॥
सुखसो बीती सारी रात, उठे तबं हुवो परभात ।
सामायक आदिक हर्षाय, कीनो धर्मध्यान सुखदाय ॥१५३

पद्धड़ी छन्द

भ्रातनको बल रक्षा सुहेत, थापे फुन तिनसो वचन कहेत ।
स्वामी ढिग ह्वै अब वेग आय, निजपुर चालेंगे हर्षलाय ॥१५४
तब अयोध्याको गमन कीन, रविकीर्त्ति आदिक आये प्रवीन ।
नृप ले वनको अति हर्ष धार, पहुंचेसु सभाग्रहके मंझार ॥१५५

चौपाई

मणी सिंघासनपे राजंत, चक्री बहु नृप वेष्टित संत ।
निरख दूरसे जय नृप ताम, हाथ जोड़ कीना परणाम ॥१५६
चक्री याको पास बुलाय, आज्ञा दी तहां बैठो जाय ।
चक्रवर्तिको किरपा दृष्टि, लखके जय हर्षो उतकृष्ट ॥१५७
चक्रवर्ति बहु स्नेह जताय, जय प्रति इम आज्ञा सुकराय ।
वधू सहित क्यों नहि आइयो, देखनको थो हमरो हियो ॥१५८
अरु तेरे विवाह मंझार, हमको क्यों न बुलायो सार ।
करो अकम्पनने जु अयुक्त, क्या हम मित्रवर्गतें मुक्त ॥१५९॥
अरु मैं तेरो पिता समान, मोको आगे कर गुणखान ।
परणनिबो जोग थो सार, सो तुम भूल गयो सुकुमार ॥१६०
दोहा—यो अकृतम स्नेह वच, सुन हर्षो जय सार ।
हाथ जोड़ विनती करी, सुनो नाथ सुखकार ॥१६१

चौपाई

देव अकम्पन नामा भूप, तुम आज्ञाकारी सुख रूप ।

ताने रचो स्वयंवर सार, निज पुत्रीको आनंदकार ॥१६२॥
सो यह भेद बियाहन माह, बिध अनादिकाल की ताह ।
सचिव सास्त्रके जाननहार, तिनसे पूछ अरंभी सार ॥१६३
तहां दैवने औरहि ठनी, मम जड़ नाशक कारण बनी ।
आप प्रशाद शांति सब भई, तुम चरणनकी सर्णजु गही ॥१६४
तातैं रणमें बचे पिराण, तुम षटखंड पती सुमहान ।
सुर खग नृप सेवे हर्षात, मुझसे किंकरकी कहा बात ॥१६५
स्वामी तुम ही हो गुणखान, मेरो इतनो राखो मान ।
चक्रबर्त इस बिनय सु देख, मनमें हर्षित भये बिशेष ॥१६६
वस्त्राभूषण वाहन दीन, वधु सुलोचन योग्य नवीन ।
आदरयुत जयनृप को तदा, चक्रेश्वरने कीनो बिदा ॥१६७
चक्रवर्तिको बारंबार, कर प्रणाम चालो सुकुमार ।
क्रमसो गङ्गाके तट आय, वायस रुदन करंत लखाय ॥१६८
सूखे तरुकी डालो जान, तापं रवि सन्मुख पहचान ।
यह अपसकुन लखो सुकुमार, चितमें व्याकुल भयो अपार ॥१६६
मति कहूं तियको होवे पीर, मूर्छा खाय पडो तब धीर ।
सब चेष्टाको जाननहार, तब सुरदेव जोतषी सार ॥१७०
बोला तियतो सुखसो जोय, तुमको जल भय किंचित होय ।
तिस वच सुनके जयनृप सार, कुछ हिरदेमें धीरज धार ॥१७१
त्रिया मोहतैं तभी तमी कुमार, प्रेरो हाथी गंग मंझार ।
ओडे दहमें जल बहु सिरे, तहां मगर सम हाथी तिरे ॥१७२

सवैया ३१ सा

तिरत सुगजराज गयो जहां गङ्गा बिषै सरजु नदीका तहां

समागम भयो है। वहां द्रहके मझार सर्पणीको जीव दुष्ट कालीदेवी ताने रूप जलचर कियो है॥ गजके चरण गहे दूखत लखो सुगज तबै हेम अंगदादि आप कूद पड़े हैं। सतीसु सुलोचनाहु यह उपद्रव देख मंत्रराजको तबै सुमरन करे है॥१७३॥

चौपाई

पण परमेष्टी उरमें थाप, तनकी ममता छांड़ी आप।
विघ्न अंतलो तजा अहार, सखियन युत गंगा सुमझार॥१७४
कियो प्रवेश जो गङ्गा सुरी, करे प्रवेश तहां द्युत भरी।
तब कृतज्ञ जो गङ्गा सुरो, ता आसन कंपा तिस घरी॥१७५
जान वृत्तांत सबै इत आय, कालो कोतर्जो बहु भाय।
सबको लाई गंगा तीर, पुन्यथको सब ह्वै सुख धीर॥१७६॥
तहां गङ्गा तट गंगा सुरी, रचौ भवन शुभ हर्षित खरी।
मणिमय सिंहासनपे थाप, सती सुलोचन पूजी आप॥१७७
भेट किये भूषण पट सार, फुन मुखसे इम गिरा उचार।
देवीने दीनो नवकार, सो सांचौ ताफल अवधार॥१७८॥
यह संपत पाई मैं सार, मगन रहूं मुख उदधि मझार।
यह लख जय नृप सारी कथा, पूछे तब सुलोचना यथा॥१७९

पद्धड़ी छन्द

भाषो विंध्याचलके समीप, शुभ विंध पुरी जिम रतन दीप।
तहां राजा बंधु सुकेतु मान, राणी प्रयंगुना सुता जान॥१८०
विघश्री ताके मात तात, ढिग राखी मेरे सो विख्यात।
इक दिन बसंत तिलका उद्यान, क्रीडंत डसी तहां सर्प आन॥१८१
तब मंत्र दियो मैं नमस्कार, ता फलसे गंगा सुरी सार।

चयके उपजी सुनिये सुनाथ, यह सुन हर्षे जयनृप विख्यात ॥१८२

चौपाई

मंत्रराजके स्मर्ण मझार, चित दीनौ तब बहु नर नार ।
आदरसो नृप राणी तदा, गंगादेवी कीनी विदा ॥१८३॥
फुन अपने डेरेमें आय, चक्रवर्तिके वचन कहाय ।
चक्रवर्तिने दीनो जोय, भूषण दिये प्रियाको सोय ॥१८४॥
सुखसौ रात्र व्यतीत कराय, प्रात चलो जय नृप हर्षाय ।
ध्वजा समूह बहुत लहकन्त, केई प्रयाण करके विहसंत ॥१८५
निजपुरमें कीनौं परवेश, प्रिया सहित ज्यों सची सुरेश ।
इने देख सब अचरज धार, भाषें पुन्य तनौं फल सार ॥१८६
निज भ्राता और राजा लार, महासैन्य युत लसे कुमार ।
तुगराज मंदिर सुखकार, तामें कियौ प्रवेश कुमार ॥१८७॥
तहाँ स्नेह सो नृपने सार, पूजे श्री जिन भक्त सुधार ।
जासे संपत मंगल होय, फुन सिंहासन बैठो सोय ॥१८८॥
हेमांगदके निकट बिठाय, उन्नित सिंहासनपे हर्षाय ।
प्रिया सुलौचनको सुखकार, दीनौ पटराणी पद सार ॥१८६
हेमांगद सन्तोषित कीन, पाहुनगत करके परबीन ।
केतेयक दिन राखो ताहि, प्रीत सहित जय नृप हर्षाय ॥१६०
पट भूषण बहु देके तदा, हेमांगदको कीनौ बिदा ।
जिन पूजा कर हर्षित होय, चाल निजपुरको तब सोय ॥१६१
केइ प्रयाण करके पितु गेह, पहुंचे जाके नमन करेय ।
वार्ता जय सुलोचना तनी, सुख संपत सब तिनकी भनी ॥१६२
सुन राजा राणी हर्षाय, आनंदयुत नृपराज कराय ।
ईतनीत व्यापे नहीं कदा, सुख सू रहे तहाँ जन मुदा ॥१६३॥

जोगीरासा

राय अकम्पन काललब्धिसु इकदिन चित वैरागे। भव भिरमनके दुखसों कम्पित ह्वै आतममें पागे॥ अहो काल बहु बिन संजमके मैंने विरथा खोयो। पूज्यपनेसे कारज क्या जो निज आतम नहि जोयो॥१६४॥ विषम अनंत डरावन खारी, सागर यह संसारो। रोग क्लेश दुख घोर तरंगन सेती अति भयकारो॥ काल अनाद थकी यह प्राणी मोह कर्मवश धायो विनवृत पोत तिरत नहीं डूबत चिरकाल वृथा ही गमायो॥१६५॥ मोह रिपुकों जौंलग चारित खड्ग थकी न संघारे। तौंलग कहां सुख कहां स्वस्थता कहां मोक्ष प्रचकारे। शुच द्रव्यनको अशुच करे वपु जगत अशुचता गेहो। दुखको भाजन सप्त धातुमय युत गंधयुत देहा॥१६६॥ रोग उरग बिल निंद्य जहां पण इंद्रिय चोर बसाने। क्षुधा तृषा कोपाग्नि बहे तित सज्जनको रति ठाने॥ दुख पूर्वक महा दुखको कारण दुखदायक पहचाने। विषयनकों सुख भास है जो निंद्य सुधी जन मानें॥१६७॥ सर्प-समान भोग ततक्षिण ही प्राण हरे दुख रासा। दु:प्राप्य दु:त्याग भोग बुध तिनसे क्या सुख आसा॥ जो कुछ तीन जगतमें सुंदर वस्तु दृष्ट-गोचर है। तन धन परवारादि विभव जो सो सब क्षणभंगुर है।१६८॥ जरा मरण जौलो नहि आवें तौलों निज हित करिये। इत्यादिक चिंतवन करत वैराग्य द्विगुण नृप धरये॥ जीरण तृण जो राजलक्ष्मी त्यागनको उमगायो। हेमांगद निज पुत्र बड़ेको राजभार सोंपायो॥१६९॥ रत्नत्रयकी प्रापत कारण आदीश्वर जिन बंदे। प्रभुके चरणकमलको निरखत लोचन

अति आनंदे ॥ बाह्याभ्यंतर परिग्रह तजकर बहुत नृपनके संगा । मन वच तन त्रय शुद्ध होय जिनमुद्रा धार अभंगा ॥२००॥ ध्यान अगनकर घातिकरमचव इंधन ताकौ जारौ । केवलज्ञान उपायौ ततक्षिण लोकालोक निहारौ ॥ इंद्रादिक सुर पूजन कीनो चार अघातीय नाशे । शिवथानकमें वास सुकीनो सुख अनंत परकाशे ॥२०१॥

चौपाई

अबसौ जयकुमार हर्षाय, पूरब भवके स्नेह पसाय ।
भोगे भोग जगत्रय सार, पूरब पुन्यथकी अब धार ॥२०२॥
निज कांता संग नृप हर्षाय, ग्रहो धर्म धारे सुखदाय ।
व्रत शील उपवास सु धरे, जिन अरु गुरुकी पूजा करे ॥२०३
दान सुपात्रनकौ शुभ देय, धर्म प्रभावन अधिक करेय ।
जात न जाने काल अघाय, सुखसागरमें मगन रहाय ॥२०४॥

गीता

इस पुन्य फलतें जय विजय लही सर्वतें अजयी भये।
खगपत नृपसे जय लही सुखसार जगमें भोगये ॥
कांता सु आदि विभूत पाई धवल अस अति विस्तरो ।
अब विजय सुख वांछत पुरुष जिन धर्मको नित आचरो ॥२०५
ये धर्म जगमें विजयदाता सुधीजन सेवे सदा ।
इस वृषथकी नर अजय होवे, दुख नहीं पावे कदा ॥
जिनधर्म गुण कर्ता विमल वृष काज किरया आचरो ।
वृषमें सुचित दे सुतपमें धर्मात्मा धीरज धरो ॥२०६॥
दोहा—'तुलसी' पति कर कथित वृष, सो कुधर्म पहचान ।
बुधसागरको चंद्र सम, जिनवृष भवि चित आन ॥२०७

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते सुलोचना जयविवाहवर्णनो नामा अष्टादशम् सर्गः ॥१८॥

अथ उन्नीसवाँ सर्गः

दोहा—वृषभ आदि अरहंत महंत, भय वरजित सतगुरु निर्ग्रंथ।
जिनवर भाषित वाणी सार, बंदूं कार्य सिद्धि कर्तार ॥१
इक दिन जय सुमहल ऊपरे, दस दिस निरखे आनंद भरे।
दंपत विद्याधरको देख, जातिस्मरणाथको भव पेख ॥२॥
हा प्रभावती यूं बच चयो, कहकर जय नृप मूर्छित भयो।
युगल कपोत निरखके जबै, हा! रतवर इम कहकर तबै ॥३॥
सुलोचनाने मूर्छा लही, परभव प्रीत याद आ गई।
तब सीतोपचार बहु कीन, तातैं चेतन भये प्रवीन ॥४॥
आपसमें मुख निरखे सबै, ज्ञान स्वर्गकौं प्रगटो तबै।
अवधि होत ही सर्व लखाय, तिष्टे दंपत नेह बढ़ाय ॥५॥
इन दोनोंको चरित निहार, श्रीमति आदिक सौकन नार।
भाव अदेखसकेसे सही, आपसमें बतरावत भई ॥६॥
शीलवती पति याको कहे, याके चितमें रतिवर रहे।
पत मूर्छित लख मूर्छा खाय, पड़ो कुटीलता चित्त धराय ॥७॥
इत्यादिक जो इनकी बात, जानी जयकुमार विख्यात।
अवधिज्ञानके बलतैं राय, कहो सुलोचन सो हर्षाय ॥८॥
हेकांते अपने भव कहो, ताकर इनको संशय दहै।
प्रभावती रतवरके नाम, इनको कौतुक भयो ललाम ॥९॥
पति प्रेरी सुलोचना जबै, कहत भई तब निजभव सबै।
जंबूदीप सुपूर्व विदेह, पुष्कलावती देश गिनेय ॥१०॥
तामध पुंडरीकनोपुरी, ताने स्वर्गलोक छबिहरी।
प्रजापाल तहां राज सुकरे, सेठ कुबेर मित्र विस्तरे ॥११॥

तिसके धनवत आदिक नार, अति सरूप शील भंडार ।
तिस श्रेष्टीको महल उतंग, तहाँ कपोत इक बसे सुरंग ॥१२
सेठ तिसे रतवर उच्चरे, तातिय रतवेगा अनुसरे ।
ये कपोतजुग सुखसों रहे, सेठ प्रीत इनसौं बहु गहे ॥१३॥

पायता छन्द

मुन दानदेय हर्षावे, तातें बहु आदर पावें ।
धनवति पुन्योदय आयो, सुकुबेर कांत सुत जायो ॥१४॥
सब लक्षण युत बुध धारी, जय सेना मित्र सुखकारी ।
सुत पुण्योदयतें आई, गोकाम धेनु सुखदाई ॥१५॥
सो दुग्धादिक रसदाई, भोगोपभोग सब थाई ।
शुभ कल्पवृक्ष तिसधामा, उपजो सो अति अभिरामा ॥१६॥
सो भोजन घट नित देवे, ये आनंदसों नित लेवे ।
बालक वय तज सुखकारा, हूं योवनवान कुमारा ॥१७॥

गीता छन्द चाल बंदो दिगंबरकोमें

इक बिना इस पितुने लखो, इसको सु योवनवान ।
चितयो बहु तिरया बरे, या एक रूप निधान ॥
यों चितते व्याकुल भये, जंसेन मित्र महान ।
कहतो भयो सुकुमारके, इक नारको परमान ॥१८॥

अडिल्ल

श्रेष्टी एक समुद्रदत्त पहचानये, मित्र कुमारतनो बहनेउ मानये । ताके प्रिया कुबेर सुमित्रा सार है, प्रियदत्ता तिस सुता रूप गुण धार है ॥१९॥ तिसके रत कारण नामा सु सखी सही, बड़े बड़े घरकी बतिस कन्या कही । काहू दिन सो कन्या मिल आई सबै, लैन परीक्षा काज यक्षमंदिर तबै ॥२०

चौपाई

भेजी श्रेष्टी ने हर्षाय, बत्तीस भोजन किए बनाय ।
खीर खांड रस कर सब भरो, एक पात्रमें रत्न सु धरो ॥२१
कन्या यक्ष धाम मंझार, भोजन कर आई सब सार ।
सेठ सबनसे पूछन करी, किसने रत्न गहो उच्चरो ॥२२॥
तब प्रियदत्ताने इम कहो, रत्न अमोलक मैंने गहो ।
जानी श्रेष्टी चित मंझार, होसी मम सुतकी यह नार ॥२३
लगन महूरत शुभ दिखलाय, महा विभूत सहित हर्षाय ।
कर विवाह परणाई सार, प्रियदत्ता निज सुतके लार ॥२४
राजा प्रजापालकी सुता, यशस्याति गुणवति गुणयुता ।
इन आदिक कन्या तिसवार, लज्जित ह्वै वैरागी सार ॥२५
प्रथम अनंतमती हितकार, आर्या अमितमती फुन सार ।
तिनके ढिग सब कन्या जाय, दीक्षा धारी चित हरषाय ॥२६
इक दिन काललब्धि बसराय, प्रजापाल वैराग्य लहाय ।
लोकपाल सुतको दे राज, आप चले शिव साधन काज ॥२७
शीलगुप्त गुरुके ढिंग सार, बनो शिवं करमें तप धार ।
राणी कनक सुमाला आद, बनी आर्यका धर आह्लाद ॥२८
और बहुतसे नृप वैराग, लहकर निज आतममें पाग ।
बाह्याभ्यंतर परिग्रह तजो, तप धरके परमातम भजो ॥२६
अबसो लोकपाल नर राय, पुन्योदयतैं राज कराय ।
सेठ कुवेरमित्रकी बुद्ध, लेके परजा पाले शुद्ध ॥३०॥
फल्गुमती झूठो परधान, चपल चित्त वय नृप सम जान।
श्रेष्टीसे सो संकित रहे, चिते बहुत उपाय सु वहे ॥३१॥
सेठ न आवे सभा मंझार, तो सब कारज सिद्ध ह्वैं सार।

सिज्या अधिकारी जो थाय, मोजन दरब दियौ कछु ताय ।।३२
रात्र विषं तु कहियों एम, संस्कृतमें सुर भाषे जेम ।
मो नृपश्रेष्टो सुसर महान, तुमरो है सो पिता समान ।।३३।।
नित प्रत आवे सभा मझार, तातें विनय सधे न लगार ।
तुम सिंहासनपं तिष्टंत, तब श्रेष्ठी नीचे बैठंत ।।३४।।
तातें जब कोई कारज होय, तबें बुलाय लेउ मद खोय ।
मंत्री वच शय्याध्यक्ष, ऐसे ही वच कहे प्रत्यक्ष ।।३५।।
ये वच सुनके नृप चितई, जानौ ये सुर आज्ञा भई ।
उठ प्रभात श्रेष्ठी बुलवाय, तिनसेती इम वचन कहाय ।।३६
तुम नितप्रत मति आवो जाव, हम बुलवाये तब तुम आव ।
इह बच सुनके सेठ ललाम, चितातुर पहुंचे निज धाम ।।३७
इक दिन लोकपाल नृप सार, लीनो घटा गजनकी लार ।
गये सुवनमें करत विहार, तहाँ वापी लख विस्मय धार ।।३८
तहाँ तरवरकी डारीमांह, बैठो काक लखो कोउ नाह ।
पद्मरागमणी मुखमें धरें, तिसकी महाप्रभा अनुसरे ।।३९।।
वापी जल ह्वै रक्त सरूप, जानौ मणि वापीमें भूप ।
सेवक बहु दीने पैसाय, वापीमैं मणि ढूंढो जाय ।।४०।।
चिरलौं ढूंढो रत्नान पाय, खेद खिन्न होय घरको आय ।
और दिवस श्रेष्टोकी सुता, वसुमति राणी क्रीडा युता ।।४१
कुंभ आद्रिक पावाकर जाय, ताडो नृप मस्तक तिस मांह ।
अनुरागी जनके संग नार, कहां कहां न करे अविचार ।।४२
उठ प्रभात नृप सभा मंझार, मंत्रिनतें पूछो इम सार ।
पादाकर नृप ताड़े जोय, दंडितसे कैसो यक होय ।।४३।।

यह सुनके बोलो परधान, छेदो तिसके पग अरु पाण ।
ये वच सुन राजा मुसकाय, जानो मंत्री सठ अधिकाय ।।४४
तब ही श्रेष्टीको बुलवाय, तिनसो प्रश्न कियो सब राय ।
बुधवान श्रेष्टी तिसवार, इम उत्तर दीनों तत्कार ।।४५।।

अडिल्ल

गुर जनको पद होय तो पूजन कीजिए, सिसुको पग होय तो शुभ भोजन दीजिए । नारी पग हो तो भूषण पहराइये, राजा सुन परसन्न भये अचकाइये ।।४६।। फिर नृपने मणी की वार्ता सबही कही, सुनके श्रेष्टीने उत्तर दीनो सही । सो मणी जलमें नाह वृक्षके उपरे, तिस आभाससे रक्त भयो जल भूपरे ।।४७।। श्रेष्टीके वच सुन बुधवानोके सबै, जाने मंत्री दुष्टचित नृपने तबै । निज निंद्या अरु पश्चाताप सु आवरो, कहो सेठतै नितप्रत अब आया करो ।।४८।।

चौपाई

एक दिवस श्रेष्टी की नार, सेठ सीस सित केश निहार ।
दिखलायो पतिको तिस वार, लख श्रेष्टी वैरागे सार ।।४९
भव भोगनतै विरकत होय, छांड़ो सब उपाध मद खोय ।
श्रीवर धर्म गुरु ढिग जाय, दीक्षा लीनी शिव सुखदाय ।।५०।।
समुद्रदत्त आदिकके लार, लेके तप धारो हितकार ।
तब नारीकी ममता छार, अनशन आदि बहु तप धार ।।५१।।
मित्र कुबेर समुददत मुनि, प्राण समाध थकी तब गुनी ।
ब्रह्म कल्पके अन्त मंझार, उपजे लोकांतिक सुर सार ।।५२।।
ज्ञानवान इंद्रादिक नमे, एक जन्म ले शिवपुर गमे ।

रत्नत्रय फलतें तिस ठाय, सुख सागरमें मगन रहाय ।५३॥
एक दिवस प्रियदत्ता नार, विपुलमती चारण ऋद्ध धार।
मुनि तिने दीनौं आहार, उपजायो तब पुन्य अपार ॥५४॥
नमस्कार कर बारंबार, प्रियदत्ता पूछो तिस वार ।
स्वामी आर्याके व्रत सार, अब ह्वं या लागे बहु बार ॥५५
अवधज्ञानतें श्री मुनराय, सुत अभिलाषा जानी याह।
पांच अंगुली दृक्षण करे, बामे करकी इक अनुसरे ॥५६॥
छड़ी करी इम श्रीमुनराय, ताकौ भाव सु इम समुझाय।
पांच पुत्र इक पुत्री होय, अनुक्रमसे उपजाये सोय ॥५७॥
इक दिन आर्यागुण कर युता, जगत्पाल चक्रीकी सुता ।
अमितमति सु अनंतहिमती. सब संघ मध्य गुराणी सती ॥५८
अरु नृप प्रजापालकी सुता, गुणपति यशस्वती व्रत युता।
तेहु आई संघ मंझार, व्रत अरु शील धरे हितकार ॥५९॥
सुन नृप श्रेष्टी वंदन काज, चाले पुरजन सहित समाज।
अमितमती अनंतमति पास, सुनौ गृहस्थ धर्म सुखरास ॥६०
दानादिकके देन मंझार, तत्पर भये बहुत नर नार ।
इक दिन सेठ गेह सुखकार, जंघा चारण युग मुनसार ।.६१
आयो तिनको भक्ति धार, स्थापन किये निमित्त आहार।
दंपत चित्तमें हर्षाइयो, विधयुत मुनको पड़गाइयो ।.६२॥
युग-कपोत मुन दर्शन पाय, ततक्षिण जातीस्मर्ण लहाय।
मुनिके चरण कमलको नये, बारंबार स्पर्शते भये । ६३॥
दोहा–पूरव भव स्मर्ण ते, बढ़ो परस्पर नेह ।
इनको पूरब भव तनो, लख बृतांत मुन एह ॥६४॥

अंतराय आहारको, होत भयो तिस ठांह ।
श्रेष्टीके घरते निकस, गये मुनी बनमांह ।।६५।।

रूपक चौपाई

इनकी चेष्टा लख सेठानी, जानौ पूरबभव सुमरानी ।
तब कबूतरी सों इम भाखौ, पूरबभवको नाम सुग्राखौ ।।६६।।
सुनके चोंच थकी निज नामा, पूर्व लिखौ रत वेगा तामा ।
निरख कपोत बात यह सारी, पूरबभव हू की लख नारी ।।६७
कबूतरी सो प्रीत बढ़ाई, फुन प्रियदत्ताने हर्षाई ।
नाम कबूतरसे पूछीनौ, बाहूने सुकांत लिख दीनौ ।।६८।।
यूं निरखत कबूतरी नामी, लख पूरब भव हू को स्वामी ।
प्रीत कबूतरसौं अधिकाई, कीनो बरनी नहीं जाई ।।६९।।

सवैया ३१

चारण मुनीश तज सेठ गेहते अहार मारग आकाशसौं बिहारकर गये हैं, यह विरतांत नृप सुनके अमितमती अर्जिका सौं ततक्षण पूछत सो भये हैं । अमितमतीने मुन मुखतें सुनौ थो जेम सो नृप आगे वृतांत सब भने हैं, याही देश विर्षे विजयारद्ध नामा गिर पास धान्यक सुमाला नाम एक शुभ बन है ।।७०।।

चौपाई

सोभा नगर तासके पास, राजा प्रजापाल गुणरास ।
राणीदेवीश्री सुखकार, तिनके एक सावंत निहार ।।७१।।
शक्तसेन बर भट परधान, ताके अटवीश्री स्त्री जान ।
सत्यदेव तिनके सुत भये, सब ही निकट भव्य बरनये ।।७२
राजायुत तिन सब मम पास, सुनौं गृहस्थधर्म सुखरास ।
चव पर्वोपवास आदरे, अभख जु बाईस त्यागन करे ।।७३।।

उक्तं च बाईस अभक्ष सवैया २३

ओला घोर बड़ा निस भोजन, बहुबीज बैंगन संधान ।
बड़ पीपल ऊमर कठूमर पाकर फल अरु होत अजान ।
कंदमूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदरापान ।
फल अति तुच्छ तुषार चलतरस जिननत यह बाईस बखान ॥ ७४

चौपाई

शक्तसेन नामा भट सार, अतिथसंविभाग व्रत धार ।
इत्यादिक व्रत सबने गहे। व्रत भूषण कर भूषित भये ॥७५
बिन सम्यक्त सब व्रत लीना, अटवीश्री नारी इक दीना ।
निज पीहर मृनालवतिपुरी, गई हुती तहां आनंद भरी ॥७६
ताकौ शक्तसेन गयो लेन, लेकर आवे थो युतसेन ।
धान्यकमाला बनसर नाग, डेरे किये तहां बड भाग ॥७७॥
आगे कथा सुनौ अब और, पुरी मृनालवती सरमौर ।
धरनीपति नृप राज कराय, रतवर्म्मा इक सेठ रहाय ॥७८
ताके ग्रह कनकश्री नार, सुत भवदेव भयो सुखकार ।
पुन्य हीन पापी अधिकाय, दुराचारमें तत्पर थाय ॥७९॥
और सेठ श्रीदत्त तिस पुरी, नारी विमलश्री द्युत भरी ।
तिनके रतवेगा शुभ सुता, रूपकला लावण्य सुयुता ॥८०॥
और सेठ इकदेव अशोक, नारी जिनदत्ता गुण थोक ।
तिनके सुत सुकांत उपजयौ, सुंदर शुभ आशयसो भयो ॥८१
अंत कुरूप भवदेव विद्वान, दुराचारी याकौ मान ।
इसको दुर्मुख नाम जु धरो, केईक उष्ट्रग्रीव उच्चरो ॥८२॥
दुर्मुख श्रीदत्त मामा पास, जाची रतवेगा गुणरास ।
श्रीदत्तने तब उत्तर दियौ, तू जु कमाऊ नाही भयो ॥८३॥

तब दुर्मुख इम वचन कहाय, दीपांतरसे द्रव्य कमाय।
मैं लाऊंगा तबलौ माम, कन्या मत ब्याहौ गुणधाम ॥८४
दुर्मुख दीपांतर को जात, लख श्रीदत्त इम बचन कहात।
काल तनो मर्यादा करौ, वर्ष सु बारह तब उच्चरौ ॥८५॥
बारह वर्ष बीती तब जाय, दुर्मुख तौलौ नाहो आय।
तब सुकांतको कन्या दई, कर विवाह श्रीदत्त हर्षई ॥८६॥
फुन देशांतर सेति आय, दुर्मुख सारी बात सुनाय।
कोपित ह्वं वरबधू नवीन, तिन मारन को उद्यम कीन ॥८७
दुर्मुख दुठको कोपित जान, दंपत चितमें अति भय मान।
शक्तसेनके सरणे गये, तिस डर भवदत्त कछु नहि कहे ॥८८॥
एकदिन महाभक्ति उर धार, शक्तसेन सुभटे तब सार।
युग चारण मुनको आहार, दान दियो शुभ सुख कर्तार ॥८९
और तिस सर्प सरोवर तनी, दूजी और वणिकपति धनी।
मेर कदंब वणिक संग लिये, आनंद सो तहां डेरे किये ॥९०॥
प्रियधारणी नामा सार, श्रेष्ठीके अर मत्री चार।
भूतारथ शकुनी वृहस्पति, धन्वंतर बुध धारे अति ॥९१॥
इन युत श्रेष्ठी बंठो सार, हीन अंग इक पुरष निहार।
श्रेष्टी मंत्रिनतें पूछयो, किस कारण यह ऐसो भयो ॥९२॥

अडिल्ल

तब शकुनीने कहो जु खोटे शकुनतें, और बृहस्पत कहो जु खोटे ग्रहनतें। अरु ध्वनंतर कही त्रिदोष थकी यहे, तब श्रेष्टी भूतारथ मंत्रीने कहे ॥९३॥ यह क्या कारण तब वो उत्तर देत है, यह सब हिंसा आदि पाप फल लेत है। इक दिन भटकी तारीने शुभ व्रत करो, ता युत भटने मुनको दान दियो खरो ॥९४॥

चौपाई

दान पुन्यतें तिस ही काल, पंचाश्चर्य भये सु विशाल ।
निरख रत्न वृष्टादिक सार, श्रेष्टी और धारणी नार ॥९५
निंद्य निदान कियो भवकार, जो हमरे पर जन्म मझार ।
शक्तसेन वर मम सुत होय, ये बांछा वर्ते उर मोय ॥९६॥
याको वधू सु हैं सुखकार, सो मम पुत्र वधू ह्वं सार ।
अब श्रेष्टोके मंत्री चार, बिरकत ह्वै के दोक्षा धार ॥९७॥
द्वादश विध तप किये महान, मरण समाध थको तज प्राण ।
ता फल स्वर्ग माह ऋद्धधार, लोकपाल सुर उपजे सार ॥९८
ऐसे वचन सुनत नृप नार, रानी बसुमती तिस ही बार ।
पूरब भव निज याद सुकीन, मूर्छा खाय पड़ो दुख लोन ॥९९॥
ह्वं सचेत फुन तिम ही बार, आर्यासे भाषी इम सार ।
हे माता पूरब भव मांह, देवश्री मैं राणी थाह ॥१००॥
सो तुमरे प्रसादतें महां, उपजी वसुमती राणी यहां ।
पूरब भवको पति मोतनो, उपजो किस स्थानक सोमनो ॥१०१
तब आर्याने उत्तर दियो, प्रजापाल नृप जो बरनयो ।
सोई लोकपाल नृप आय, तेरो पति उपजो सुखदाय ॥१०२
प्रियदत्ता सुनके ये कथा, जाति सुमरण पायौ तथा ।
आर्यासे पूछो इम सार, मात पूरब जन्म मझार ॥१०३॥
मैं अटवश्री नामा नार, शक्तिषेण थो मम भरतार ।
सो उपजो किस थानक आय, सो मोकूं दोजे बतलाय ॥१०४
यह सुनि आर्या बोली सार, शक्तिसेन जो तुझ भर्तार ।
कान्त कुबेर सोई उपजयो, तेरो पति सुखदायक भयो ॥१०५
मुख बोलो सुत जो सतदेव, तेरी सुत सौ उपजो एव ।

नाम कुबेरदत्त जिस सार, सुंदर मनमोहन सुखकार ॥१०६
पूर्व सेठके मंत्री चार, तपकर लोकपाल सुरसार ।
भये हुते तिन तुम पति तनी, जन्म थकी सेवा बहु ठनी ॥१०७
शक्रसेन जब मरण लहाय, तब भवदेव दुष्ट तहां आय ।
रतवेगा सुकांत दंपती, तिनको वध कियो दुर्मती ॥१०८॥
रतवेगा सुकांत तज प्राण, युगल कपोत भयो यहां आन ।
नाथ सहित वारण जो नार, पुन्य विपाकथकी अवधार ॥१०९
तेरे पतिके माता पिता, श्रेष्टी भये महोदय युता ।
रूपाचलके निकटसु सार, कांचन मलय सुगिर सुखकार ॥११०
चारण मुनि तहां तिष्ठे सार, आये तुम ग्रह लेन अहार ।
युगल कपोत तने भव देख, चित्तमें करुणा धार विशेष ॥१११
अन्तराय कर बनमें गये, अमितमती आर्या यूं कहे ।
सुन राजा आदिक नरनार, भव तन भोग स्वरूप विचार ॥११२
सुखसो काल व्यतीत कराय, एक दिन कछु प्रसंग शुभ पाय ।
आर्या यशस्वी गुणवती, तिनको नाम प्रियदत्ता सती ॥११३
पूछो नवयोवन वध सार, किस कारण तुम दीक्षा धार ।
वह सुनके आर्या तत्कार, सब वृतांत कहो तिस बार ॥११४
बत्तीस कन्या हम तुम सार, तुझ पति निमित्त आई तिस बार ।
तामेंसे तोको परणई, बाकी हम सब आर्या भई ॥११५॥
ये कथा सुनके धनवती, माता कुबेर कांतकी सती ।
और कुबेर सु सेना नार, जगतपाल चक्रीकी नार ॥११६॥
अमितमती आर्याके पास, भई अर्जका तज ग्रहवास ।
इक दिन युग कपोत हर्षाय, जम्बू ग्राम पहुंचे जाय ॥११७॥

तंदुल चुगने कर्म पसाय, गये काल प्रेरे अधिकाय ।
तहां भवदेव तनो चर आय, भयो विलाव महा दुखदाय ।।११८
पूर्व वैरसेतो तत्कार, मारे युगल कपोत निरधार ।
युगकपोत मर जहां उपजाय, तिन वर्नन सुनये चितलाय ।।११६
पुष्कलावती देश मझार, विजयारध गिर सोम अपार ।
दक्षण श्रेणीमें गांधार, देश तहां उसीरपुर सार ।।१२०।।
आवित गत खगराज सु करे, शशिप्रभा राणी तिस घरे ।
सो रत कर कपोत वर आन, इनके सुत उपजो गुणखान ।।१२१
नाम हिरन्यवर्म है जास, चातुर सुंदर रूप निवास ।
तिस ही रूपाचलकी जान, उत्तर श्रेणी शोभावान ।।१२२।।
गौरी देश प्रसिद्ध सु लसे, भोगपुरी नगरी तहां बसे ।
वायु सु रथ खगराज सु करे, स्वयंप्रभाराणी तिस घरे ।।१२३
रतवेगा कबूतरी आय, तिनके सुता भई सुखदाय ।
प्रभावती जाकों शुभ नाम, रूपकला चातुर गुणधाम ।।१२४
रतवेगा सुकांत भव मांह, मातपिता थे जे सुखदाय ।
तिनहोके घर इस भवबीच, भये मातपित सहित मरीच ।।१२५
क्रमसो कन्या योवनवान, भई निरख नृप चिंता ठान ।
मंत्रिनतें कर मंत्र प्रवीन, तबै स्वयंवर मंडप कीन ।।१२६।।
आये तहां बहु राजकुमार, तिनमें प्रीत सहित तिसवार ।
माला काहू कंठ मंझार, डाली नहीं कन्याने सार ।।१२७।।
प्रिय कारण तिस सखी बुलाय, ब्यौरा मातपिता पूछाय ।
भाखे सखी सुनौ नरराय, सुता तुम्हारीने सुखदाय ।।१२८।।
करो प्रतिज्ञा यो इकबार, जीते जो गतियुद्ध मझार ।

ताके कंठ विषै सु विशाल, डालूंगो निश्चय वरमाल ॥१२९
यह सुन खग सुनृपनकौ तदा, तिन डेरा प्रत कीने विदा।
और दिवस सब नृप बुलवाय, सिद्धकूट जिन ग्रहमें जाय ॥१३०
तहां प्रभावती बैठी आय, मुखसे ऐसे वचन कहाय।
मेरी फेंकी माला जोय, पृथ्वीको स्पर्शै नहि सोय ॥१३१॥
तीन प्रदक्षण सुरगिर तनी, देके झेले सो ममधनी।
यह कह सिद्धकूट जिन धाम, तहांतै डाली माल ललाम ॥१३२
इम विध वे विद्याधर सार, जीतें एक प्रभावत नार।
मानजु भंग खगनके किये, लज्जित ह्वै ते घरको गये ॥१३३
फुन हिरन्यवर्मा गुण लीन, आया गत युद्धमें परवीन।
निज विद्यातैं जीत तुरन्त, प्रभावती परणो हर्षंत ॥१३४॥
जन्मातरके स्नेह पसाय, प्रभावतीके संग हर्षाय।
पुन्योदयतैं भोग विशाल, भोगे जात न जानो काल ॥१३५
कबहूंक नार सहित हर्षाय, सिद्धकूट जिन मंदिर जाय।
जिनको पूजा कर आनंद, फुन ज्ञानी चारण मुनिबंद ॥१३६॥
तिनसे निज भव पूछन करे, वैश्य कुलो माता पितृ भने।
तिन रतवेग गुरुके पास, लीने व्रत कीने उपवास ॥१३७॥
फुन भाषे पूरब भव तने, अवध ज्ञानते मुन उच्चरे।
रतवेगा सुकांत भव आद, किये निरूपण चारण साध ॥१३८

पद्धड़ी छन्द

जिन भवन माह पूजन चाय, धर्मोपकरण नाना चढ़ाय।
तिसही पुण्योदयके वसाय, दंपत विद्याधर भये आय ॥१३९॥
सो तुमरे हैं अब मात तात, अर पर भव हूं के पिता मात।

भवदेव तनो पितु मोह जान, उपजे रतवर्मा खग सुजान ॥१४०
संजम गह चारण ऋद्ध धार, लह ज्ञान अवध विचरू अवार।
मुन मुखतें सुन भव इस प्रकार, आपसमें प्रीत भई अपार
॥१४१॥ श्री मुनवरको करि नमस्कार, खग दंपत आये
निजागार। इक दिन प्रभावती तनो तात, वायूरथ खगपति
जग विख्यात ॥१४२॥

जोगीरासा

मेघ पटलको बिलय होत लख चित्तमें एम विचारा।
थिर नहि जगमें कोई वस्तु क्षणभंगुर संसारा।
लह वैराग मनोरथ सुतको राज दियो तिस बार।
बंधुजन युत आदि तगतपे जाके वचन उचार ॥१४३॥

चौपाई

प्रभावतीकी कन्या जान, रतनप्रभा अति रूप निधान।
चित्र सु रथको देना सोय, पुत्र मनोरथको है जोय ॥१४४॥
वायु रथकी बात प्रमाण, करी सु आदि जगतने जान।
बंधु वायु रथ संग तदा, आये ये सो कीने विदा ॥१४५॥
वैरागे आवितगतराय, पुत्र हिरण्यवर्म बुलवाय।
ताको दोनो राज समाज, आप चले शिव साधन काज ॥१४६
वायुरथ आदिक खग लार, लेय गुरु ढिग दीक्षा धार।
अब हिरन्यवर्मा नृप सार, राज करे अरिगण भयकार ॥१४७
कबहूंक खगपत युत निज नार, इच्छापूर्वक करत विहार।
लख धान्यकमाला उद्यान, सर्व सरोवर तिस ही थान ॥१४८
काललब्धिवस नृप तत् क्षणे, जाने पूरव भव आपने।
ह्वै विरक्त संवेग सु धार, क्षणभंगुर संसार निहार॥१४९॥

सुत सुवर्णबर्माको राज, देय कियौ निज आतम काज।
विजयारधसे भूपे आय, नगर सिरीपुरके ढिग जाय ॥१५०॥
श्रीपाल नामा गुरु सार, तिनके ढिग सब परिग्रह छार।
मन और वचनकाय शुद्ध करी, निर्विकल्प जिन दीक्षा धारी॥१५१
हिरन्यवर्मकी मात अरु नार, ससिप्रभा परभावति सार।
गुणवति आर्या ढिग तज राग, भईं आर्यका परग्रह त्याग ॥१५२
अब हिरन्यवर्मा सुन सार, पढे अंग पूरब हितकार।
गुरु की आज्ञा सेती भये, इकलबिहारी इंद्रिय जये ॥१५३॥
तप कर दिये मुनि सर्वंग, व्योमगामनी ऋद्ध अभंग।
प्राप्त भई नभ करत विहार, पुडरीकणी पुरी मझार॥१५४
आये कबहुक दयानिधान, दैवयोगतै तिस ही थान।
आई गणनी गुणवति सार, प्रभावती आर्या जिस लार ॥१५५
कीनौ शास्त्रनकौ अभ्यास, क्षीण करो तन कर उपवास।
प्रियदत्ता बंदनकौ गई, गणनीकोनम हर्षित भई ॥१५६॥
प्रभावतीको लख तिसवार, उपजी उरमें प्रीत अपार।
तब सेठानीने सिर नयो, प्रीततनौ कारण पूछयो ॥१५७।

रूपक चौपाई

प्रभावतीने उत्तर दीनौं, तुमने मोको नाही चीनौ।
हे प्रियदत्ता तुम ग्रह मांही, युग कपोत थे हम सुखदाई ॥१५८
रतषेणा कबूतरी जानौ, ताको चरमें अब इत आनौ।
नाम प्रभावति मैने पायो, सुन सेठानी अचरज थायो ॥१५६॥

चौपाई

अर पूछो रत्नबर किस थान, उपजो है सो करो बखान।

तब आर्यानि उत्तर दियौ, हिरनवर्म सो खगपत भयौ ॥१६०॥
दीक्षा धार करत तप घोर, जीते पांचो इंद्री चोर ।
यह सुन सेठानी सुखरास, पहुंची हिरनवर्म मुन पास ॥१६१
नमस्कार कर पूछी आय, फुन आर्या बंदी बिहसाय ।
तब प्रभावती पूछन कौन, तेरो पत कहां है परवीन ॥१६२
तब प्रियदत्ता निज पत तनौ, सब वृतांत हित दायक भनौ ।
विजयारध नामा गिर लसे, नगर गंधार तहां शुभ बसे । १६३
खग रतषेण सु राज कराय, राणी गांधारी सुखदाय ।
इकदिन खग दंपत यहां आय, क्रीड़ा करीसु चित हर्षाय ॥१६४
गंधारी तब झूठ कहाय, मोकौ सर्प डसो अब आय ।
मंत्र औषध बहु करे उपाय, बोली मोकौ शांती नाय ॥१६५॥

उक्तंक श्लोक

अनृतं साहसं माया, मूर्खत्वमति लोभता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषा स्वभावजा ॥१६६॥
सेठ कुबेरकांत खगपती, दोनौ खेद खिन्न भये अती ।
मेल त्रिया श्रेष्टी ढिग जान, विजयारध गिर शक्तिवान ॥१६७
औषध लेन गयो तत्कार, तब बोली गंधारी नार ।
सेठ मोह नागन नहीं डसी, तुमरी प्रीत हृदयमें बसी ॥१६८
तातै मै यह रचौ उपाय, तुमसे जो गहते सुखदाय ।
करो कृपा अब राखो प्राण, मोकौ दो रतदान सुजान ॥१६९
बाले श्रेष्टी सील सुवंत, तू क्या नहि जानत बिरतंत ।
मोही नपुंसक जानौ सही, संसय यामें रंचन नहीं ॥१७०॥

रूपक चौपाई

सीलभंग है पाप महानौ, होवे यातें दुर्गत थानौ ।

सप्तम नर्क मांह दुख पावे, इस प्रकार चितवन करावे ॥१७१
एते मैं पत औषध लायो, लख गंधारी वचन सुनायौ ।
पहली औषधसे सुख साता, तनमें होय गई है नाथा ॥१७२
यह कहके निज पतके लारा, पहुंची निजपुरमें सुखकारा ।
प्रभावती सेती गुण खानी, भाषे प्रियदत्ता सेठानी ॥१७३॥
प्रथम कुबेरदत्त गुण धामा, और कुबेर मित्र शुभ नामा ।
दत्त कुबेर तीसरो जानो, देव कुबेर सु चौथो मानौ ॥१७४॥
पुत्र कुबेर प्रिय सुखकारा, पंच सुतनको लेके लारा ।
कबहुंक शिवकामें सुखदाई, चढ़के बनमांही विचराई ॥१७५
तब मौको लखके गंधारी, मुखसेती इम वचन उचारी ।
तेरी भर्ता पुरुष सु नाही, ऐसी कहवत लोक कहाई ॥१७६
सुन तब मैंने उत्तर दीनो, ममपति इक नारी व्रत लीनौं ।
खोजा और त्रियनके हेता, है प्रवीन सब विधको वेता ॥१७७
यह सुनके गंधारी नारी, चित मांही बैराग सु धारी ।
तब अपनी निंद्या बहु कीनो, पतयुत बैरागी परबीनो ॥१७८

चौपाई

भवतन भोग स्वरूप विचार, जिनभाषित शुभ संजम धार ।
आर्या ह्वै विहरत इस थान, आई तब सो नमन करान ॥१७९
पूछौ किस कारण तप धरौ, सब वृत्तांत आर्या उच्चरौ ।
मम वैराग कारण तुझ पती, यामें संशय नाहीं रती ॥१८०
गौप्य वचन यह श्रेष्ठी सुने, प्रगट होय आर्या सो भने ।
जो रतषेण मित्र मम थाय, सो अब किस थानक बरताय ॥१८१
तब आर्याने उत्तर दियौ, मो कारण सो भी मुन भयौ ।

अोर तुमे तप करत विहार, आयो है इस स्थान मझार ॥१८२
यह वच सुनके सेठ उदार, भूपतको लेके निज लार।
श्री रतषेरण मुनीश्वर बंद, धर्म श्रवण करके आनंद ॥१८३।
राजा तब संवेग उपाय, विरकत भव भोगनसे थाय।
सुत गुणपालहिको दे राज, संजम धारो मुक्ति काज ॥१८४॥
पंचम सुत कुबेर प्रिय थाय, निज पदमें फुन श्रेष्टी थाय।
चारो सुतको लेके लार, तिन ही मुन ढिग दीक्षा धार ॥१८५
यह कथा अपने पत तनी, आर्या से प्रियदत्ता भनी।
सुता कुबेर श्री सुखकार, दी गुणपाल भूपको सार ॥१८६॥
प्रभावती उपदेश पसाय, प्रियदत्ता निज सीस नमाय।
गुणवती नामा गणनी पास, भई अर्जका तज गृहवास ॥१८७
अब हिरन्यवर्म मुन सार, धारो भूम मसाण मंझार।
प्रतमा योग सप्त दिन तनौ, ध्यानारूढ़ भये शुभ मुनो ॥१८८
कबहुक पुरजन वंदन आय, धर्महेत चित में हर्षाय।
वंदन कर निज पुरको गये, मुनकी कथा सु करते भये ॥१८९
चरभव देवतनो मार्जार, सो मरके इस थान मंझार।
अति दुष्टातम विद्युत चौर, भयौ जु पापिनमें सिर मौर ॥१९०

जोगीरासा

प्रियदत्ताकी दासीके मुख मुन वृतांत सुन सारो।
पाय विभंगा अबध जु पूरब भवको वैर चितारो।
विद्युत चौर तबै क्रोधित ह्वै जाय मसाण मझारे।
हिरन बर्म मुन प्रभावती युत अग्न विषै धर जारे ॥१९१।
रात्रि विषै शुभ रहित दुष्ट सो मर्कयामि अघकारी।

घोर वीर उपसर्ग सहो मुन समता उरमें धारी ।
प्राण समाध थकी तजके शुभ धर्म ध्यान फल पायो ।
विर्शय ऋद्ध सुख पूरण सुंदर स्वर्ग विषै उपजायो ।।१९२।।

चौपाई

अब तिन मुनको पुत्र सुजान, सुन पितुको उपसर्ग महान ।
विद्युत चोर दुष्ट पहचान, निग्रह करने को उमगान ।।१९३
पिता वैरतै क्रोधित राय, इस अंतरे तिस पुन्य बसाय ।
वह सुर सर्व वृतांत सुजान, स्वर्ग थकी आयो इस थान ।।१९४
मुनको रूप सुधारण कियौ, सुतको शुभ संशोधन दियौ ।
हे सुत कोपकरन नहि जोग, दुर्जन नर्क लहे अमनोग ।।१९५।।
कर्म शुभाशुभको फल जीव, संसारी भोगवे सदीव ।
यह लखकोप न कीजे कदा, उत्तम क्षमा गहो सर्वदा ।।१९६
तत्वादिक श्रद्धाकर सार, वृत सम्यक्त गहो सुखकार ।
ताकर स्वर्ग मोक्ष लच्छ होय, सोई काम करो तुम जोय ।।१९७
इत्यादिक संबोधन दियौ, नृपने दर्शन ग्रहण सु कियौ ।
दिव्यरूप अपनौ दिखलाय, पुन सब निज विरतांत कहाय ।।१९८
नृपको कोप जु सर्व मिटाय, वस्त्राभरण दिये बहु भाय ।
सर्व संपदा सब दरसाय, वृषफल कह निज थान सिधाय ।।१९९
अब आगे सुन और कथान, वत्सदेश इक सुंदर जान ।
तहां सुसीमा नगरी कही, पुन्यात्मा नर उपजन मही ।।२००
तहाँ शिवघोष मुनी सु महान, ध्यायो निर्मल शुक्ल जु ध्यान ।
चार घातिया कर्म विनास, केवलज्ञान कियो परकास ।।२०१
तहाँ इन्द्रादिक सब सुर आय, नमस्कार कर पूजे राय ।

इन्द्र वल्लभा दोउ जहां, सची मेनका आई तहां ॥२०२।

तोटक छन्द

नमकर निज थानक बैठ सही, तब हरि केवलिसू पूछतही । इन पूरब भव वृष कौन करौ, तब दिव्यध्वन मध एम खिरो ॥२०३॥ दुहिता द्वय मालनकी सुभनी, नित बेचत पुष्प जु मोद ठनी । तहां नाम एककौ पुष्पवती, अरु पुष्पालिता दुतिय हुती ॥२०४॥ दिन सात भये वृष धार जबै, बन-पुष्प करण्य सुमध्य तबै । दोनौ तहां पुष्प सुबीन रही, तहां एक सर्पने आन गही ॥२०५॥ सो काटत ही तत्काल मरी, जिनदर्शनमें अभिलाख धरी । पुन्योंदयते ये देवी भई, इम सुन सब वृष परशंसा ठई ॥२०६॥ यह प्रभावतीके जीव सुनौ, जिस नाम कनकमाला जु भनो । अरु हिरनवर्मको जीव तहां, तिस देव कनकप्रभ नाम लहा ॥२०७॥

गीता छंद

इन देव देवी केवली मुख पूर्व भव अपने सुने । अपनो जन्म-स्थान लखकर बहुत हर्ष हृदय ठने । फुन साथ सरवरके निकट तहां भीम मुनको देखियो । सब संघ संजुत तिष्ठते तिन देव देवी बंदियो ॥२०८॥ मुनसे जुधर्म स्वरूप पूछो भीम रिष कहते भये । उपदेशको हम ज्ञान नहि तुछ दिन हुवे संजम लिये । यह ज्ञानियों के कार्य हैं मोह ज्ञान एतो है नही । तुमरे जु आग्रहते कहत हूं तुम सुनौ रुचकर सही ॥२०९॥ सम्यक्त पूजा दान आदिक ग्रहीके आचार जो । तप संजमादिक भेद बहु यति धर्मको बिस्तारजो । चारों

गतिनको भेद कहियो और तिन कारण कहे। पुन्य पाप फल सुख दुःख भनियो रत्नत्रयते शिव लहे ॥२१०॥ अरु तप वृतादिक स्वर्ग कारण सकल भेद निरूपिये। फुन जीव आदिक द्रव्य षट वर्णन यथार्थ प्ररूपिये। सुन सुर सुरी पूछत भये तुम केम दीक्षा आचरी। तब भीम मुन कहते भये तुम सुनो कारण रुच धरी ॥२११॥ शुभ क्षेत्र जान विदेह तामध पुष्कलावति देश है। पुंडरीकणी नगरी जहां तहां धर्म रीति विशेष है। मुझ नाम भीम दरिद्र पोड़ित पुन उदै मुझ आइयो। मुझ काल लब्धि सुयोगतैं बन बीच मुन दर्शन भयो ॥२१२। तिन पास धर्म श्रवण कियो वसु मूलगुण शुभ आदरे। फुन पंच पाप जु त्याग कीने हर्ष लहि घर संचरे। अपने पिताके निकटि आयो तासे व्यौरो कहो। निर्ग्रंथ मुनको नाम सुनके क्रोध अति ही तिन गहो ॥२१३॥

अहो जगतगुरुकी चाल

ये वृत दुद्धर जान धनपंतनके कामा, हम दारिद्र धराय तातैं फेर सु तामा। जो परभव फल चाहतौ इन वृतको धारे। हम अजीवका होय सोई काम संभारे ॥२१४॥ तातैं मुनि ढिग जाय फेर देय वृत सब ही, तब मैं पितु ले संग चालौ गुर ढिग जबही। मारगमें विरतांत देखौ बहु गुणधामा। नगर चौहटे माह वज्रकेत इक नामा ॥२१५॥ पुरष तहां मारंत सो मैं तिन पुछायौ, तिनने इम भाषंत इनने नाज सुकायौ। तहां इक कुर्कट आय नाज चुगत इन मारौ, तातैं इसको मारये हम चरित निहारो ॥२१६॥ फुन आगे धन-देव इक बुरबुद्धी जानो, इस पासे जिनदेव निज धन सर्व

रखानौ। सो यह लोभ पसाय तिस धनकौ मुकराई, ताकी खंडत जीभ करते मैं जुलखाई ॥२१७॥ इक रतिपिंगल सेठ ताकौ हार चुरायो, ता तस्करको बेग सूली राय चढ़ायो। इक पापी कामांध पर तियके घर जाई। ताको अंग छिदंत सौ मैं सर्व लखाई ॥२१८॥ लोल नाम इक जान लोभ धरे अधिकाई, क्षेत्र तनो कर लोभ निज सुतकौ जुहनाई। राय हुकमते सोय सूली दियो चढ़ाई, ये सब कारण देख वृतमें हूँ दृढ़ताई ॥२१९॥ सागरदत इक जान जो नित द्यूत खिलाई, समुद्रदत्ताको वेग बहुतो धन जीताई। समुद्रदत्ता असमर्थ देने माह जु थाई, सागरदत्ता कर क्रोध निग्रह तास कराई ॥२२०॥ राज सु किंकर आन ताकौ बहु दुख दीनौ, दुर्गंध धुवा देय कोठेमें रो कीनौ। राजा आनंद नाम तिन हम फेर दुहाई, कोई न मारे जीव इम सबकौं सुखदाई ॥२२१ इक नर अंगक नाम ताने बकरौ मारो, नृप इम आज्ञा ठान हाथ काट इन डारौ। राय सु पोतो जान मांस भक्ष तिम कीना, भिष्टा तास खुवात मैंने सर्व लखीना ॥२२२॥ एक कलाली आन कोई बालक मारे, तसु आभरण सुलेय पृथ्वीमें वह गाढे। सो ताकौ वृत्तांत तिन सुतकूं कहवाई, नृप किंकर सुन वेग तातियको पकड़ाई ॥२२३॥ ताकौ निग्रह ठान सोउ में देखाई, हिंसादिक जो पाप तिनको फल जु लखाई। इस भव खोटो जान परभव नरक सुआई, मैं यह बात ठान वृतको नाह तजाई ॥२२४॥ वृत धारण मोही श्रेष्ठ लागौ मनके मांही, या परभव भय धार सब तमको कंपाहीं।

हिंसा मृषा अदत्त और कुशील गिनाई, बहुत परिग्रह जान पंच पाप दुखदाई ॥२२५॥ पाप दुखनको मूल बंध बंधन कर्तारो, मैं इम चितमें ठान पितुसे बचन उचारो। हम घर है जु दरिद्र पूरब कर्म फलाई. अब शुभ करनों काम तातैं नित सुख थाई ॥२२६॥

पायता छन्द

इम बचन पितासे भाषो, शिवपुर सुखकों अभिलाषो।
ममता ग्रहसे निर्वारी, तुरत ही जिन दीक्षा धारी ॥२२७॥
गुरुके प्रसाद तत्कारी, बहु शास्त्र पढ़े हितकारी।
अरु बुद्धि सु निर्मल थाई, इक दिन केवलि ढिग जाई ॥२२८
निज भव सुन दुष्ट स्वरूपा, तुम सुनौं कहूं सु अनूपा।
यह पुषकलावती देशा, पुंडरीकणी नगर महेशा ॥२२९॥
तहां राजा है वसुपाला, सब परजाकों प्रतिपाला।
तहां विद्युत्वेग सुनामा, है चोर अधनको धामा ॥२३०॥
तिन मुख आर्या सु जलाई, नृप किंकर तह पकड़ाई।
ताको सब धन सुछिनाई, फुन तस्कर प्रत पूछाई ॥२३१॥
धन और कहां सु रखाई, तब चोरन सर्व बताई।
इक विमती नाम जु नर है, मोधन सब बाके घर है ॥२३२
तब विमतीकू पकड़ाई, सब धन ताके निकलाई।
तब रायसु एम कहाई, अपदंड जोग्य ये थाई ॥२३३॥
त्रय थाल जु गोबर खाई, यों सब धन देय अन्याई।
मल्ल मुक्की तीस जु खावे, इन त्रयमें एक गहावे ॥२३४।
सो तीनों भोग जु मूवो, अधयोग नारकी हुवो।
विद्युत्सुचोर अघकारी, नृप हुकम दियो तिसे मारो ॥२३५॥

कुतवाल चंडाल बुलायौ, नृप हुकम सु ताहि सुनायौ ।
तब ही चांडाल कहाई, गुरु ढिग मैं बरत गहाई ॥२३६॥
कोई जीव मात्र नहि मारूं, मानुषको केम संघारूं ।
तब राजा इम मन लाई, चांडाल जु रिस बतलाई ॥२३७॥
तातैं नहि सूली द्यावे, चांडाल बरत कहां पावै ।
नृपने अति क्रोध कराई, जुमकौं संकल बंधवाई ॥२३८॥
फुन मौंरेमें डलवाये, निस चौर चंडाल बताये ।
तब चौर कहे इम बैना, तू मुझको काह हतेना ॥२३९॥
मुझ कारण तू क्यौं मरई, तब वह चांडाल उचरई ।
मैं दुर्लभ जिनवृष पायौ, सब जीव हतन सुजायौ ।२४०॥
मुझ मारे तो कोई मारो, ये द्रिढ़ निज मनमें धारौ ।
मैं धर्मसु कह बिध पायो, तसु कथा सुनो मन लायौ ॥२४१

गीता छन्द

यह राय जो वसुपाल सुंदर या पिता गुणपाल थो ।
इस ही नगर को राज करता सकल गुण गण मालथौ ।
श्रेष्टी कुबेर प्रिय जु नामा तासमय होतो भयो ।
इक नाटयमाला नृत्यकारनि नृत्य नृप आगे कियो ॥२४२॥
रति हास्य शोक जु क्रोध भय, उत्साह विस्मय जुग्पसा ।
ये भाव सब दिखलाइये सो नृत्य नृपके मन बसा ।
आश्चर्य नृप अति ही कियो । इक और गनिका इमचयो ।
उत्पल सुमाला नाम जाको रायसे इम वीनयो ।२४३॥
नृत्य कारिणी नृत्य हो करै इस बातकौं अचरज कहा ।
मैं एक अति आश्चर्य लखियो तास बरनन सुन महा ।
श्रेष्टी कुबेर प्रियतनौ सु कुबेर कांत तनुज कहो ।

सो शांत परिणामी सु इक दिन, ध्यान धर पोसो गह्यो ॥२४४
मैं जाय करता चित चलावनको जु समरथ ना भई ।
सो बड़ौ अचरज जानिये उत्पल सुमाला इम चई ।
नृपने कही उनके जु कुलको रीत ऐसी जानिये ।
परसन्न होकर कही नृप कर प्रार्थना मन मानिये ॥२४५॥
गनिका कहि मुझ भाव अब तौ शील पालनकौ सदा ।
तब राय इम आज्ञा करी तुम शील धारौ ह्वं मुदा ।
तिन ब्रह्मचर्य सुधारियौ इक दिनतनी सु कथा सुनौ ।
ता घर विषं वह आइयो जो कोटपाल नगरतनौ ॥२४६॥
जिस नाम सर्व जुरक्ष जानौ खबर नहिं इस व्रत लियौं ।
तादेख वेश्याने कही मासिक धरम मुझको भयो ।
इस भांति उच्चारन करत मंत्रतनौं सुत आइयो ।
जिस नाम प्रथुमति है मनोहर रायको सालो कहो ॥२४७॥
ता देखकर कुतवालकौ मंजूसमें घालो सही ।
मंत्री जु सुत सेये कही मुझ आभरण दे क्यों नहीं ।
सत सेवती नामा बहन तेरी राय संग ब्याही गही ।
जब तुम जु मुझसे ले गये थे अबहि लादो बेगही । २४८॥

अडिल्ल छन्द

मंत्री सुत इम कही बेग लाऊ सही, पुन गणिकाने कही ल्याव तुम शीघ्र ही । इन बातनकौ कोटवाल साक्षी भयौ, जो पहले मंजूष बंद वेश्या कियौ ॥२४९॥ मंत्री सुत घर जाय सुनो इक बात है, उत्पलमाला शील गहो अबदात है । तब वह इर्षा ठान आभरण मुकरियो, गनिका नृपकीसमाबीच इम भाखियो ॥२५०॥ मंत्री सुतसे गहनो मांगो वेग ही, वह बोलो तत्काल

सु मैं लायो नहीं। तब नृपने राणीसे इम पूछाइयो, तो आतो वेश्याको गहनो लाइयो ॥२५१ तब राणी इम कहीसु ल्यायौ थो जबै, अब है मेरे पास सु ले हो तुम अबै। राजा गहना लेब क्रोधमें भर गये, मंत्री सुत मारनआज्ञा देते भये ॥२५२॥ यहाँ इक और कथा सुचले है सुहावनी, मुनि जिनवाणी पढ़त सुपट हस्ती सुनी। भय सुमरण भयो तास अणुव्रत धारियो, वस्तु अयोग्य अहार सबै तिन छाड़ियो ॥२५३॥ तिस हस्तीको देख कुबेर प्रिय तबै, गुड़ घी चावल चून अबोध दियो सबै। तब हाथीने खाय राय आनंद हो, सेठ थकी इम भाव मनेच्छा माँग हो ॥२५४॥ सेठ कही यह वचन रहे भंडारमें, जब मुझ हो है काज लेहू महाराज मैं। सो वह बचकर याद सेठने इम कही, हे महाराज दयाल बचन पाऊं सही ॥२५५॥ राय कही हे सेठ बचन लो आपनो, सेठ कही तुम मंत्री सुतको मत हनो। नृपने मंत्री सुतको तब छोड़ियो, श्रेष्टीने उपगार बड़ो तासंग कियो ॥२५६॥

सवैया २३

मंत्री दुष्ट जु उलटो औगुन मानो तब मनमें बहु भाय, वेश्या को समझाय सेठने मुझ सुतकी निंदा करवाय। आप बचावन की जस लीनो इम उलटो सु विचार कराय। पापिनको उपकार करन जेम सर्पको दूध पिवाय ॥२५७॥ मंत्री सुत निज इच्छा पूरब कईक दिन बनमें पहुंचो जाय, काम मुद्रिका मनवंछितके रूपकरन हारी तहाँ पाय। विद्याधरसे लीनी इसनैं ताहि पहर ऊंगली घरआय, वही अंगूठी पिता कहते लघु भाई वसुको पहराय ॥२५८॥ और कही तू सेठ रूपधर आवो

सत्यवतीके पास, सो कुबेर मित्रतनो रूपकर पहुंचो सत्यवतीके आवास। मंत्रीको जो बड़ो पुत्र थो राजाके ढिग पहुंचो सोय, बिन औसर जु सेठको लखके राय कही यह बिरिया कोय ॥२५९॥ तब मंत्रीको पुत्र जु बोलो इसी समैं नित आवत येह, पापीको तुम आज जु लखियो काम अग्नि करत प्रित देह। तब राजाने बिना बिचारे हुकम दियौ इम निःसंदेह, मंत्री सुत से कहा जाहु तुम वेग सेठके प्राण हरेह ॥२६०॥ ता दिन सेठ आपने घरमें पोसा कायोत्सर्ग सुधार, तब मंत्री सुतने निज भ्राताको घर पहुंचायो तत्कार। और सेठको घरसे पकड़ो मारन ले चालो रिस होय, और नगरमें कहते जावे सेठ कियो अपराध बहोय ॥२६१॥ काहूके मनमें नहि आई लोक कहे यह है वृषवान, मंत्री पुत्र सेठको लेकर पहुंचे मारनके अस्थान। चांडालनकौं सोपो जब ही तबै उनोने खड्ग चलाय, सोई शस्त्र भयो उरमाला सब जन देखौ सील प्रभाय ॥२६२॥ और जो मुखतैं कहत भये इम सीलवान यह सेठ जु थाय, श्री अरिहन्त भक्तिकौ राजा बिन परखे यह दंड दिवाय। सो ही आज नगर में हुवे बहु उत्पात महा दुखदाय, निरपराधको दंड जु देवे तो सबहीका क्षय हो जाय ॥२६३॥ तबही नृपअरु नगरलोगबहु सेठ सरन आये तत्कालि, सेठतनौ उपसर्ग मिटो जब बहु सुर मिल कीनौं जयकार। सील प्रभाव थकी सुर पूजौ श्रेष्टीकौ नम बारंबार, राय सेठसूं बिनती कीनी मैं अपराध क्षमो मुदधार ॥२६४॥ तबै सेठ इम कहत भये मो पूरब पाप उदय यह आय, तुमरो कछु अपराध

नही है तुम विषाद मत करो सुभाय। इम बच नृपको प्रसन्न कर सबकी चिंता वेग मिटाय, बड़ी विभूति सहित तब श्रेष्टी नगरीमें परवेश कराय ॥२६५॥ सेठतनी पुत्री जो कहिये जास बारषेणा है नाम, नृप गुणपाल तनो सुत जो वसुपाल है गुण को धाम। तिन दोनोंको भयौ ब्याह जो अति विभूति संयुक्त ललाम, पुन्यबंतको सब सुख होवे ये प्रसिद्ध वार्ता सब ठाम ॥२६६॥ इक दिन राय सभामें बैठे श्रेष्ठी से पूछो हित धार, धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष ये चार पदारथ जो हैं सार। सो किसके अनुकूल जु होवे अर किसके प्रतिकूल विचार, सम्यग्-वृष्टिके अनुकूलहि मिथ्याती प्रतकूल निहार ॥२६७॥

जोगीरासा

धर्मतत्वके वेता श्रेष्टी इम कहिये तत्कारा, श्रेष्ठी बच सुनकर तब राजा आनंद लहो अपारा। और कही मनवांछित मांगो तब श्रेष्ठी इम भाषौ, जन्म मरण को क्षय हम माँगे और नहि अभिलाषौ ॥२६८॥ राय कही मैं दे न सकत हूं ये मेरे बस नाही, सेठ कही मैं सिद्ध करूंगो भासूं मोह तजाही। सेठ तने बच सुनकर राजा कहियो मैं तुम सङ्गा, अब ही घरको त्यागन करहूं धारूं बरत अभङ्गा ॥२६९॥ पर मेरे हैं पुत्र जु बालक नृपसो एम कहाई, तास समय मध एक छिपकली अंडे सु निकलाई। निकसत ही तत्काल मक्षिका ग्रहत भई नृपदेखी, मनही विचारी सर्व जीव निज खान उपाय सु पेखी ॥२७०॥ बालककी चिंता क्या कीजे यातैं कछु नाही काजा, निज अजीबकाकौ यह बालक कर उद्यम

सुख राजा। इम विचार गुणपाल सु राजा सुत वसुपाल बुलायो, ताह राज विध पूर्वक देकर लघुको कर जुगरायो ॥२७१॥ बहुत राय अरु सेठ संग ले नृपने मुनि पद धारौ, यतिवर नामा मुनि ढिग जाकरि सब ही अघको छारौ। यही कथा चांडाल चोरसो भाखी है हितकारी, देखो श्रेष्टी मंत्रीको सत छुड़वायो वृषधारी ॥२७२॥ यह वृतांतमें देख दयावृत कीनौं अङ्गीकारा, तातें तोह न मारो यह सुन तस्कर स्तुति विस्तारा। भीम नाम मुनकौ केवलिने भाखी इम सुखदाई; विद्युत तस्कर जीवनरकसे निकस भीम तुम थाई।२७३। प्रथम मृनालवती नगरी बिच पुरुषहु तौ भव देखा, तिन सुकांत रतिवेगा दीने अग्निजला यह देखा। वह पारापत अरु कबूतरी भये सुनौ चितलाई, तू जो बिलाव भयो उस भवमें तैं उनको जुहताई ॥२७४॥ पारापत जुग शुभ भावन तैं मर्ण कियो तत्कारी, विजयारधपे खेचर खेचरी उपजे बहु सुखधारी। तू विलाव मर चौर जुविद्युत मुन आर्या तिन जारे, पाप बंध कर नर्क भुगत दुख भीम भयो मति धारे ॥२७५॥ एम कथा केवलि मुखसेती सब ही भीम सुनाई, सो कनकप्रभ देवसुरी सुन कहत भयो हर्षाई। हिरन्यवर्म अरु प्रभावती हम तीन बार तुम मारे, हमरी तुमसू क्षिमा एम कह नम निज थान सिधारे ॥२७६॥ एम कथा सुलोचना कह फुन भनत भई सुखदाई, भीम मुनि तब घात कर्म हन केवल ग्यान उपाई। तिन दर्शन आई चवदेवी नमकर इम पूछाई, हमरे पतको मर्ण हुवोसो कौन जीवपत थाई ॥२७७॥ तब केवलि

दिव्यध्वन मघखिरयो इस पुंडरीकनि पुरमें, इक सुरदेव मनुष्य तासके चार नार है घरमें। चारों वृष ग्रह स्वर्ग सोलहमें तुम उपजी जाई, तुम पतिमर पिंगल नर उपजौ तहां संयास धराई ॥२७८॥ मरकर अच्युत स्वर्ग विषें तुम पति होवे सुखधारा, तिसी समय वह सुर मुनिके ढिग प्राय कियौ जयकारा। तब वह देवी और सभाजन मुनकी थुत बहु कीनी, इम सुलोचना भरताके ढिग कथा कही रस भीनी ॥२७९॥ पुन सुलोचना कहि संक्षेपहि मैं पर भवकी नारी, पहले भव तुम नाम सुकांतहि मैं रतिवेगा प्यारी। दूजे भव रतिवर जू कबूतर रतिसे संग तुम लारो, श्रेष्टी मित्र कुबेर सु घरमें होत भये हितकारी ॥२८०॥ भव हिरन्यवर्मा तीजौ तुम मुझ प्रभावती जानो, कनकप्रभसुर कनकप्रभादेवी चौथो भव ठानो। या भवमें राणी सुलोचना तुम सम पति सुखदाई, मुझ कर सेवन योग्य सदा यह सुन जय बहु हर्षाई ॥२८१॥

दोहा—इम तिन मुख शशितें झरो, अमृत पान कराय।
सकल सभा तिरपत भई, उर संवेग बढ़ाय ॥२८२॥

इम धर्म फलसे मनुष देव सु उच्च पदवीको लहे।
फुन पाप सेती नीच गतमें नरकके दुखकौ सहे॥
इम जान धर्म करो सकल जन त्रय जगत सुखकार है।
सो धर्म मुझ भव भव मिलो उर यही वांछा सार है॥२८३॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते जयकुमार सुलोचना भववर्णनोनामा एकोनविंशतिमो सर्गः ॥१९॥

अथ बीसवाँ सर्ग

दोहा—जगत पितामह जानिये, आदि सुब्रह्मा थाय।
त्रिजगतपति पूजत चरण तिने नमूं शुध भाय ॥१॥
ते गुरु मेरे उर बसो, इस चालमें

शील प्रभाव सबै सुनौ यह आंवली, पुन्य उदय तिनको बढ़ौ। ताको सुन सुकथान पूरव भवकी साधिता, विद्यासिद्ध लहान ॥ शील प्रभाव सबै सुनो ॥२॥ विजय पुत्रको राज दे, जय सुलोचना सग। देश सुउपवन विहरते भोगे सुक्ख अभंग ॥ शील प्रभाव० ॥३॥ दिव्य विमान विषैं चढ़े, विद्याबल कर सोय। मेरु आदि तीर्थनविषै, यात्रा करे बहोय ॥ शील प्रभाव० ॥४॥ एक दिना कैलाश गिर, जय सुलोचना जाय। बहुतो क्रीड़ा कर तहां, किंचित न्यारे थाय ॥ शील प्रभाव०॥५॥ इस अंतर सौधर्म हरि, बैठो सभा मंझार। शील महातम बरनियौ, जय नृपको अधिकार ॥ शील प्रभाव० ॥६॥ राणी सुलोचनाकी करी, इंद्र प्रशंसा सार। पुरुष तिया ऐसे अलप, शीलवान संसार ॥ शील प्रभाव० ॥७॥ यह सुनकर तब स्वर्गसे, देव रविप्रभ नाम। जयकुमारके शीलको, करन परीक्षा ताम ॥ शील प्रभाव० ॥८॥ अपनी देवी कांचना, भेजी जयके पास। सो आकर कहती भाई सुनौ सुधी गुण रास ॥ शील प्रभाव० ॥९॥ भरतक्षेत्र विच सोहनो, विजयारथ गिर जान। उत्तर श्रेणी विषै कह्यो, देश मनोहर थान ॥ शील प्रभाव० ॥१०॥ तहां रतनपुर जानिये, नृप पिंगल गंधार। ताके रानी सुप्रभा,

सुखको कारण सार ॥ शील प्रभाव० ॥११॥ ताके मैं पुत्री भई, विद्युत्प्रभा सुनाम। मेरु सुनंदन बन विषें, तुपको लख गुणधाम॥ शील प्रभाव० ॥१२॥ मैं अभिलाषवती भई, संगम बांछा ठान। तुमरो ध्यान करत रही, आज भयो सुमिलान॥ शील प्रभाव० ॥१३॥ इम कह अपने साथके, सब जन न्यारे ठान। निज अनुराग प्रगट कियो, तब जय एम बखान॥ शील प्रभाव० ॥१४॥ ऐसे अधम बच मत कहे, मेरे बहन समान। तब वह राक्षसि रूप कर जय ले चली उठान॥ शील प्रभाव० ॥१५॥ तब सुलोचना निरखियो, ताको बहु धमकाय। तब वह शील प्रभावतें, भागी अति भय खाय॥ शील प्रभाव० ॥१६॥ तब वह देबी कांचना, निज पति पासे जाय। इन प्रभाव कहती भई, सुन सुर इन ढिग आय॥ शील प्रभाव० ॥१७॥ अपनो सब विरतांत कह, दोनौ क्षिमा कराय। बहु रत्ननिसे पूजियौ, नमकर निज थल जाय॥ शील प्रभाव० ॥१८॥ एकै दिन मेघेश नृप, रिषभदेव ढिग जाय। तिनको बंदन कर तहां, धर्म सुनौ सुखदाय॥ शील प्रभाव० ॥१९॥ यतोधर्म जग सार है, शीघ्र मुक्त दातार। यह सुन नृप बिरकत भयो, छांड सकल अघ भार॥ शील प्रभाव० ॥२०॥ सुभट पनाकर फल कहा, कामेंद्रिय जु कषाय। जो इनकौ नहि जीतिया, तौ जोधा नहि थाय॥ शील प्रभाव० ॥२१॥ तीन जगतकी लक्ष्मी, इस जियको मिल जाय। तौभी तृप्ति सु हुवै नहीं, त्याग किसे तृप्ताय॥ शील प्रभाव० ॥२२॥ अय

जगश्री वस करनको, लूं दीक्षा सुखकार। मोह कामको जीतके, यही काज हितकार ।। शील प्रभाव० ।।२३।। इम चितवन करके तबै, निज सुतको बुलवाय। वीर्य अनंत जु नाम तसु, भव विभूति सौपाय ।। शील प्रभाव० ।।२४।। विजय जयन्त सुजानिये, संजयंत गुणधाम। इन भ्रातनको संग ले, दीक्षा धर अभिराम ।। शील प्रभाव० ।।२५।। रवि कीरत अरु रवि जयौ, अरिदम अरिजय जान। अजित रवि वीर्य नृप, इत्यादिक गुणखान ।। शील प्रभाव० ।।२६। बाह्यांतर परिग्रह तजो, सब ही नृप समुदाय। मुक्ति तिया दूतो समा, दीक्षा ग्रहण कराय ।। शील प्रभाव० ।।२७।।

वंदो दिगम्बर गुरु चरण, इस चालमें

मन वचन काय त्रय शुद्ध सेती ज्ञान चौथौ पाय। तप घोर संजम धारियो सर्वार्थ वेग लहाय। फुन वृषभदेव तने कहे तब वे सुगणधर होय, तिन सोच चक्री भरत कीनो जाय गजपुर सोय ।।२८।। राणी सुभद्रा साथ ले जु सुलोचना समझाय, तिन अर्जिका पद धारियो ब्राह्मी समीपहि जाय। इक श्वेत साड़ो धार तनमें सब परिग्रह त्याग, हत मोह इंद्री काम अरिको जीतियो बड़ भाग ।।२९।। सो महातप तपती भई सन्यास की विध ठान, फुन काय तज द्रगबल थकी अच्युत जु स्वर्ग लहान। तिय लिंगको जु विनाश कर वरदेव पदवी पाय, उत्तर सु नाम विमान मध उपजो महर्धिक जाय ।।३०।। बाईस सागर आयु जाको ज्ञान तीन निधान, विक्रिया रिध धारे जु सुखसागर मगन अधिकान।

अब आदि तीर्थंकर तने गणधर चौरासी जान, तिनके जु नाम सकल कहूं सब भव्य सुन हित ठान ।।३१।। सबमें प्रथम जो वृषभसेनहि और कुंभ बखान, द्रिढरथ जु सत धनु जानिये फुन देव सर्मा ठान। भवदेव नंदन सोमदत्त जु सूरदत्त कहाय, फुन वायुसर्मा दशम जानौ यशोबाहु गहाय ।।३२।। देवाग्नि अग्नि सुदेव जाने गुप्तवाक महान, फुन अग्निमित्र सुचंद्रमो हलधर महोधर जान। अट्ठारमो जु महेन्द्रवाक वसुदेव हैं गुणधाम, बीसम गणेस बसंधरो बलनाम है अभिराम ।।३३ फुन मेरु मेरु सुधन बखानो मेरुभूति गनाय, अर सर्वयस फुन सर्वयज्ञ जु सर्व गुप्त कहाय। जो सर्व प्रिय अर सर्व देव सु गणाधीस गहाय, अरु सर्व विजयो विजय गुप्त सुविजय मित्र मनाय ।।३४।। अपराजित हो सुगुणाधिपौ अरु विजय लाभ प्रमान, वसुमित्र विश्व जु सन जानौ साधूसेन बखान। सत्यदेव सत्यमतो जु कहिये गुप्तवाहक गहान, सत्यमित्र अक्षक समंधर अविभोत्य संवर जान ।।३५।। मुनि गुप्ति अरु मुनिदत्त कहिये यज्ञवाक प्रधान, मुनि देवयज्ञ सुमित्र कहिये यक्षमित्र महान। मन प्रजापत अरु सर्व संग सुवरुण जगमें धन्य ।।३६ धनपाल मघवा तेजरासि सो महावीर विशाल, महारथ महाबल शोलवाक बज्राख्य मुनि गुणमाल। फुन वज्रसार सु चंद्र सूलहि जय महारस थाय, कछ महाकच्छ सु जानिये फुन नभिगणी मन लाय ।।३७।। फुन विनम बल नामी निर्बल बल भद्रा जिनको नाम, नंदी महाभोगी सुनंदी मित्र मुन गुणधाम। फुन कामदेव अनूप लक्षण इम चौरासी जान, अब

ज्ञानधारक सन्त रिधि भूषित सकल सुखदान ॥३८॥

अडिल्ल

अब सब संघ तनो गणना समझौ यही, चव सहस्र अर सात सतक पंचास ही । द्वादशांग अम्बुधिको पार जु इन लही, इकतालिससै पंचास शिष्यकमुन तही ॥३९॥ अवधिज्ञानके धारक नव हज्जार हो, बीस सहस केवलज्ञानी भवतारही। रिद्ध विक्रिया संजुत बीस सहस जहाँ छस्से अधिक सुजान समर्थ अधिक लहा ॥४०॥ द्वादस सहस जु सप्तसतक पंचस कहे, मनपर्यय ज्ञानी इतने मुन सरवहे । इतने हो वादि मुनि निश्चै जानिए, मिथ्या मत जग हरनि सिंह परवानिए ॥४१॥ सब मुन चौरासी हजार परमान हो, चौरासी गण-धर ऊपर जु बखान ही। ब्राह्मी आदिक आर्या सब महाव्रत धरे, तीन लक्ष पंचास सहस्र बहु तप करे॥४२॥ दर्श ज्ञान-व्रत शील सू पूजा आदरे, तीन लक्ष श्रावक द्रिढ़ व्रत आदिक खरे। सम्यक्तहि अरु शील व्रतादिक जुत कही, पंच लक्ष परमाण श्रावका लसतही ॥४३॥ देवो देव असंख्य वंदना करत हैं, संख्याते तिर्यंच बैरको हरत हैं। प्रातिहार्य वसु चौतीस अतिशय धार हैं, अनंत चतुष्टय छयालिस गुण जग-सार हैं ॥४४॥ दिव्यध्वनि करि मोक्षमार्ग बताइये, बिन कारण जगबंधु द्विधा वृषको कहै। भव अंबुधसे काढ़ मुक्ति पहुंचाय है, ताको नाम सुधर्म सुप्रभु प्रगटाय है ॥४५॥ सम्यग्-दर्शन ज्ञानचरित सुतप गिनौ, उत्तम क्षमा सुआदि मुक्ति कारण भनो। बहु बचसे किम काज जु सुखदायक कहौ,

शक्र चक्रि जिनपद सुधर्म सेती लहो ।।४६।। वृष सुकल्पद्रुम के ये फल चित लाइये, इम सुजान वृष बिन घटिका न गमाइये। इम भगवत मुखसे जो धर्मामृत करो, ताहि पीय भरतेश सुनि निज ग्रह संचरो ।।४७।।

चाल मरहटी लावनी

प्रभू आरज देशन माही, करत सु विहार सुखदाई ।
सभा द्वादस जु साथ सोहैं, सकल सुर नरके मन मोहै ।।४८।।
भव्य जीवनको बतलायौ, ज्ञान दृग चरित्र मन भायौ ।
नेम यम बहुते दिलवाये, देश पुर आदिक विहराये ।।४६।।
धर्म पीयूष धार करके, सब अज्ञानातप हरके ।
भव्य खेतीकौ सींचायो, मोक्ष सुरफल तिन निपजायो ।।५०।।
वरष हज्जार एक जानौ, और दिन चौदह सम मानौं ।
बरष एते कमती ठानौं, लक्ष पूरब केवलज्ञानौं ।।५१।।
सु पहुंचे पर्वत कैलाशा, दिव्यध्वनि खिरत नही तासा ।
पोषकी पंद्रस उजियारी, प्रभु तिष्टे सुमौन धारी ।।५२।।
तबै भरतेश्वर निस माही, लखे सुपने जो सुखदाई ।
कनक गिर बहु ऊंचौ थाई, लोकके अंत तलक जाई ।।५३
स्वप्न युगराज सुनिरखायो, स्वर्गसे औषध द्रुम आयो ।
यहां थित ह्वै सुरोग हरियो, स्वर्ग जाने इच्छा करियो ।।५४
जयात्मजनंत वीर्यनामा, लखो सुपनौ इम गुणधामा ।
चन्द्रमा तारागण जे हैं, सबै ऊपरको चढ़ते हैं ।।५५।।
सचिव अग्रेस भरतराई, तास सुपनौ इम दरसाई ।
मही पर रतनद्वीप आयो, सोई जानेको उमगायो ।।५६।।

सैनपत निरखो निसमांही, वज्रपिंजरको तोड़ाई ।
उलंघूं मैं कैलाश गिरको, उद्यमी देखो इम हरको ॥५७॥
सभद्रा चक्री पटरानी, तास इम स्वप्न सुनिरखानी ।
यसस्वति सची सुनंदा हैं, शोक तीनो अतिही करहैं ॥५८॥
बनारस पत चित्रांगद है, स्वप्न इम सोई निरखत है ।
सूर्यसे बहु उद्योत होई, श्यामको ग्रस्त भयौ सोई । ५९॥
स्वप्न सबने निस निरखाये, प्रात ही राजसभामें आये ।
भरत आदिक पूछन कीनौ, पिरोहितने उत्तर दीनौं ॥६०॥
सबैं स्वप्नको फल ऐसा, प्रभू तिष्टे गिर कैलाशा ।
जाय है मोक्षपुरी मांही, बहुत योगी तिन संग जांही ॥६१॥
नाम आनंद इक नर आई, भेद तहांको सब बतलाई ।
मौन जो भगवतने ठानो, प्रभुकी खिरत नहीं वानी ॥६२॥
यही सुन भरतेश्वर जबही, चलो सब कुटुंब लेय तबही ।
वचन मन काया शुध करके, नमो पूजो बहु हित धरके ॥६३॥
चतुरदश दिन सेवा कीनी, स्तवन आदिक रंगमें भीनी ।
शुक्लध्यानहि तीजौ पायौ, सोई जब जिनवरने ध्यायौ ॥६४॥
योग सबही निरोध कीना, गुणस्थान चौदम लीना ।
प्रकृत जु बहत्तर क्षय करके, नाम तिन सुनौ चित धरके ॥६५॥

तोटक छन्द

प्रथम जिनदेव गती हनियौ, फुन पंच शरीर विनाश कियौ ।
पणबंधन पणसंघात हने, त्रय आंगोपांग जु नास ठने ॥६६॥
षट्संहनना षट्संस्थाना, पण वर्ण गंध द्वैविध हाना ।
पणरस अरु आठ सपर्स भने, प्रकती इकयावन पिंड हने ॥६७॥

गत्यानुपूरवी देव कही, अर अगुरलघु उपघात सही ।
परघात उश्वासको नाश कियो, जु विहायोगतीद्वयको हनियो ।६८
फुन अपर्याप्त प्रत्येक हनो, थिर अथिर शुभाशुभ नाश ठनों ।
दुर्भग दुस्वर सुस्वर कहिए, अरु अनादेय इनको दहिए ।।६९।।
अपयश जु असाता नाश कियो, अरु नीच गोत्रको खोय दियो ।
निर्माण बहत्तर एम गिनो, ये एक समयमें नाश ठनो ।।७०।।

मरहटी

चौदमों है जु गुण स्थानो, नाम जिसको अयोग जानो ।
लघु पंचाक्षर उच्चारो, जा सको इतनो थित धारो ।।७१।।
दोय समये बाकी होवे, तबं इन प्रकृतनको खोवे ।
शुक्लध्यानहि चौथो पायो, धारियो जिनवर जगरायो ।।७२।।
अंतके एक समय माहो, प्रकृत तेरह जो नाशाहो ।
प्रथम आदेय जु नाम कही, मनुष गतिको कर अंत सही ।।७३
आनुपूर्वी नर नाम, भनो, जात पंचेद्रयको जु हनो ।
आयु मानुष अरु बाद रहै, और पर्याप्त सुभग रहै ।।७४।।
कीर्ति सातावेद निमाना, प्रकृत तीर्थंकर गुणधामा ।
उच्च गोत्रहिको अंत कियो, प्रकृत तेरहको नाश ठयो ।।७५।।
मोक्षरामाके पति थाय, उच्च गति स्वभाव कर जावे ।
एक समय में शिव लोनो, अष्ट गुण जुत तहां थित कीनो ।।७६

पायता छंद

शुभ माघ कृष्ण पक्ष माही, चौदस प्रभात सम माही ।
उत्तराषाढ़ जु नक्षत्रा, सिध थानक लहो पवित्रा ।।७७।।
दस सहस तहां मुनराई, जो केवलज्ञानं धराई ।

ते भी सब मुक्त लहावे, तिन आयु जु पूरण थावे ॥७८॥
बसु समये छै जु महीना, छस्सै बसु मोक्ष लहीना ।
ढाई जु द्वीपसे जावैं, इम बहु परमागम गावैं ॥७९॥
सो सुख अनंत भोगाई, निरबाध निरुपम ताई ।
दुख रहित सदा बरताई, सर्वोत्कृष्टहि पद पाई ॥८०॥
जो इन्द्र और देवनको, अहमिंद्र चक्रवर्तिनको ।
अरु भोगभूमिनको है, त्रयकाल तनो सुख जो है ॥८१॥
सबको इकठो करवाई, तासे अनंत गुण थाई ।
सो एक समय भोगाई, इतनो सुख सिद्ध लहाई ॥८२॥
तब चिह्न लखे सुरराई, तबही चव विध सुर आई ।
निज निज विभूति संग लाई, हिरदे बहु हर्ष धराई ॥८३॥
जब प्रभुको तन खिर जाई, नख केश तबै सुबचाई ।
इन्द्रादिक फेर रचाई, नख केश वहीं सुलगाई ॥८४॥
तिसको शिवका बैठायो, बहु पूजा भक्ति करायो ।
चंदन कर्पूर सुलाये, बहु द्रव्य सुगंध चढ़ाये ॥८५॥
सब इन्द्र कियो परणामा, अग्नेन्द्र नमो फुन तामा ।
तिन मुकुट सुअग्नि भराई, ताकर संस्कार जु थाई ॥८६॥
सो भस्मी आनंददाई, सुर मस्तक कंठ लगाई ।
हम भी यह पदवी पावें, इम सब सुर भावन भावें ॥८७॥
जिन बक्षणादि सुखकारो, गणधर शरीर संस्कारो ।
जो और केवली थाई, तिनके पश्चिम दिश मांही ॥८८॥
नख केश सुजारे जबही, त्रय अग्नि लहीव बहुत ही ।
जब ग्रही सुपूज कराई, सामग्री अग्नि क्षपाई ॥८९॥

नृप भरत जु शोक करायो, तब वृषभसेन गणरायो।
तिन शोक हानके काजे, संबोधन बहु विध साजे ॥६०॥
सबकी भवावली कहिए, जिस सुनते शोक जु दहिए।
पहले आदीश्वर स्वामी, तिनके भव कह गुणधामी ॥६१॥
पहले जयवर्मा थायें, खगनाम महाबल पाये।
ललितांग अमर शुभ होई, वज्रजंघराय ह्वै सोई। ६२॥
फुन भोग भूम उपजाई, सुर श्रीधर नाम लहाई।
फिर सुविध भयो भूपाला, अच्युत नायक सुविशाला ॥६३॥
फुन वज्रनाभ सुखदाई, चक्री पदवी तिन पाई।
सर्वार्थ सिद्ध सु विमाना, अहमिंद्र भये गुन थाना ॥६४॥
तहांसे चय वृषभ भये सो, विध हन सिध ठाम गये सो।
श्रेयांस नृपत भव सुनिए, जिस सुनते पातग हनिए ॥६५॥
प्रथमहि जु धनश्रीनामा, निर्नामकाख्य गुणधामा।
देवी स्वयंप्रभा जानो, ईशान स्वर्ग उपजानो ॥६६॥
श्रीमति राणी सुखकारी, जिन दान दियो हितधारी।
सो भोगभूमि उपजाई, नाना विध सुख लहाई ॥६७॥

अडिल्ल छन्द

देव स्वयं प्रभ होय भूपकेशव भयो, षोडश स्वर्ग प्रतेन्द्र होय धनदत ठयो। सर्वार्थसिद्धमें अहमिंद्र बखानिए, फुन श्रेयांस नरेश भये इम जानिए ॥६८॥ दानतीर्थ कर्तार सेनपत थाइयो, तप कर गणधर होय मोक्षपद पाइयो। तुम अपने भव सुनो भरतजी से कहे, प्रथम राय अति गिद्ध नरक के दुख सहे ॥६६॥ व्याघ्र होय फुनि देव दिवाकर थायजी,

मतिवर मंत्री होय सुग्रीवक जायजी । फुन सुबाहु ह्वै सर्वारथ सिध पाइयो, भरत होय छै खण्ड तने नृप वसि कियो ॥१००
मोक्ष जाहुगे निश्चय मनमें राखियो, वृषभसेन गणधर निज भव इम भाखियो । सेनापत हो भोगभूमि माही गये, देव प्रभाकर होय अकंपन जो भये ॥१०१॥ सेनापत पद पाय ग्रीवकन जाइयो, पीठ राय हो सर्वार्थसिद्धमें थयो । सो चयकर में वृषभसेन गणधर भयो, अब बाहुबलतने सुनो भव सुख भयो ॥१०२॥ पहले मंत्री होय भोगभूमे गयो, फुन गीर्वाण कनक प्रभ नाम जु थापयो। आनंद नाम सुप्रोहत होय ग्रीवक लहौ, महाबाहू ह्वै सरवारथ सिद्धको गहो ॥१०३
बाहूबली ह्वै मोक्ष नगर माही गये, फुन अनंत वीरजके भव रिखि बर्नये । आदि पुरोहित होय भोगभू अवतरौ, देव प्रभंजन ह्वै धनमित्र भयो खरो ॥१०४॥ फुन ग्रीवकमें जाय राय महापीठही, सर्वारथ सिद्ध जाय अनंत विजय सही । श्री जिनवरके पुत्र होय बहुत तप कियौ, अविचल थानक जाय तहां बासौ लियौ ॥१०५॥ फुन अनंत वीरजके भव शुभ वर्ण ये, उग्रसेन जो वणिक प्रथम होते भये । फुन सुव्याघ्र हो भोगभूम माही गये, चित्रांगद सुर होय सुवरदत नृप ठये ॥१०६॥

पद्धड़ी छन्द

अच्युत जु सुगभंदेव होय, फुन विजयनाम नृप भयो सोय । सर्वार्थसिद्ध सुविमान जाय, चयकर अनंत वीरज सु थाय ॥१०७॥ प्रभु सुत होकर मुक्ति लहाय, फुन गणी अच्युतके

भव कहाय। पहिले हरिवाहन भूप जान, सूकर ह्वै भोग-भुमू लहान ॥१०८॥ मणि कुण्डलदेव भयो प्रधान, राजा बरसेन भयो सुग्रान। षोडश जु स्वर्गमें सुर समान, फुन वैजयंत नृप ह्वै महान ॥१०६॥ सर्वारथ सिद्ध नामा विमान, उपजो तहां बहु गुणको निधान। तहां ते चय अच्युत नाम धार, जिन सुत ह्वै मुक्ति लही जु सार ॥११० फुन वीर तने भव इम उचार, इक भागदत्त वणिक निहार। मर्कट ह्वै भोग सुभूम जाय, फुन देव मनोहर नाम पाय ॥१११॥ चित्रांगद राय भयो प्रवीन, अच्युत जु सुर्गमधि जन्म लीन। फिर नाम जयंत भयो नरेश, सर्वारथ सिद्ध सुख लहि अशेष ॥११२॥ फुन वीर नाम प्रभु पुत्र होय, सो मुक्ति भये सब कर्म खोय। अब बरवीरहिके भव सुनाय, जासे वृषमाहो चित्त लगाय ॥११३॥ इक वणिक भयो लोलुप सु नाम, फुनि नकुल भयो मुनि मुक्त धाम। फुन भोग भूममें आर्य होय, ह्वै नाम मनोरथ अमर सोय ॥११४ फिर जातिमदन नामा भूपाल, षोडषम सुर्ग सुर ह्वै रिसाल। अपराजित राय भयो दयाल, सर्वारथसिद्ध सुर हो विशाल ॥११५॥ वर वीर नाम जिन पुत्र थाय, सो मोक्ष थाय अद्भुत लहाय। सम्बन्ध सर्व जनको रखाय, तुम शोक तजो भोभरतराय ॥११६॥

जोगीरासा

इम गणधर बच अमृत पीकर सुख भयो नरराई।
शोक जु विषको नास कियो तब बहु परणाम कराई।

फुन चक्रेश अजुध्या पहुंचौ राज करे सुखदाई।
एकै दिन दर्पण मुख देखत स्वेत बाल दरसाई ॥११७॥
मानों जमको दूत जु आयो कहत बात हितदाई।
इम चिंतत चक्री निज मनमें बहु बैराग बढ़ाई।
देखो मेरे भ्राता लघु सब राज छांड़ बन जाई।
धन्य वही है तप बहु करके मोक्ष तिया पत थाई ॥११८॥
मैं अब तक विषयांध होय अह मूढ़ नवत तिष्टाई।
मोह पचेन्द्रीके बस होकर मोह पकडूं बाई।
मैं चिरकाल बहुत सुख भोगे चक्री पदके मांही।
तोहू भोग मनोरथ मेरे पूर्ण भये न कदाही ॥११९॥
दुखकर होवे दुखके कारण ऐसो भोग सरूपा।
वपु विडंबना कारन जानो इम चिंतवन कर भूपा।
क्रोध काम अरु रोग क्षुधा ये अग्नि लगो चहुं पासा।
ऐसा काय कुटीमें बसनो तहां सुखकी कहां आसा ॥१२०॥
ये संसार समुद्र विषम है भीम दुख बहु जामें।
आदि अंत कोई जाका नांही, बुध राचै किम तामें।
कांता मोह बढ़ावनहारी बांधव बंधन जानो।
राज्य धूलिसम सुख है दुःसम अस्य शत्रु पहचानो ॥१२१॥
योवन ग्रसत जराकर जानो आयु सु यम मुख माहो।
और पदार्थ अनित्य सबै ही किसको आस कराहो।
इत्यादिक चित बनकर नृप तब ह्वै बैराग्य अधिकाई।
अर्ककीर्तिको राजदेय तृणवत सब लच्छ तजाई ॥१२२॥
नित्य मोक्ष संपतके कारण सर्व परिग्रह त्यागे।

घर तज बनमध जाय मुनि ह्वै संयमसे अनुरागे ।
मनः पर्यय ग्यान लहो मन वचन काय सुभ ठाना ।
निज आतम को ध्याय महूरत अन्तर ध्यान धराना ।।१२३।।
दुतिय शुक्ल शुभ खड्ग लेयके घात कर्मरिपु हाना ।
केवल ज्ञान लहाय ततक्षण लोकालोक सुजाना ।
देवन आय सु पूजन कोनी बहु देसन बिहराये ।
दिव्यबाणि करि भव बोधे बहु जिय शिब पहुंचाये ।।१२४।।
कर्म अघाती नाम जु करके मुक्ति थान सु लहायो ।
पूरब लक्ष सत्तरहजो सुकुमारकाल सुख पायो ।
मंडलीक पद तनो राज इक सहस वर्ष नृप कोनो ।
उनसठ सहस वर्ष दिग जय कर ग्रह आये सुख भीनो ।।१२५
छै लख पूरब तामे कमती बरस जु साठ हजारा ।
इतने दिन भरतेश्वरजीने चक्रवर्ति पद धारा ।
इक लख पूरब सजंम अरु शुभ केवल ग्यान धराई ।
चौरासी लख पूरबकी सव आयु नृपतिको थाई ।।१२६।।

अहो जगतगुरुकी चाल

वृषभसेनको आदि जो गणधर तपधारी, जगमें धर्म प्रकाश मोक्षवरी हितकारी । सो श्री रिषभनाथ जु उपजे जुत त्रय ग्याना, फुन षटकर्म प्रकाश जीवन विधि बतलाना ।।१२७।। दिव्य ध्वनिको ठान मुक्ति मारग दरसायो, जगत पितामह जान तिनको मैं सिरनायौं । त्रिभुवन पति कर बंद्य शिव मारग प्रगटायो, सरनागत प्रतिपाल तिनको मैं जस गायो ।।१२८।। समस्त गुणनिकी खान सर्व दोषनके हर्ता, त्रिभुवन

पति सुखदान विश्व मंगलके कर्ता। भवि जीवनको शर्ण मुक्ति रामा के भर्ता, जैवंते होय तीर्थ अग्रिम पद धर्ता ॥१२६॥ सब जग पूजे जास योगीश्वर बहु ध्यावें, भुक्ति मुक्ति दातार सकल तत्व दरसावे। समगुण जलध समान शक्र चक्र जस गावे, सो जिनवर जगनाथ मंगल वेग करावे। १३०॥ ये श्री वृषभचरित्र जो बुधवन्त पढ़ावे, भक्ति राग उर धार पढ़े लिखहैं लिखवावे। ते बहु पाप विनास ज्ञान सुभ गुण उपजावै, श्रुतसागरको पार ते नर वेग लहावे ॥१३१॥ जो मुनि है सुचरित्र वृषभ जिनको सुखदाई, रागादिक कर दूर मन वच काय लगाई। ते मोहादिक हान पापको सतत खिपावें, सुर्ग मोक्षको बीज ऐसो पुन्य उपावे ॥१३२॥ ये वृषभेश चरित्र रचियौ मैं मुद होई, अल्प शक्ति को धार सकल कीरति मद खोई। इस चरित्रके मांहि जो अज्ञान बसाई, अक्षर मात्रा संधि जामें भूल कहाई ॥१३३॥ सो सोधो बुधवान मुझपर करुणा लाइ, अथवा श्री जिनवान मोपर क्षमा कराइ। श्री आदीश्वर जो चौबीस जिनेसा, त्रय जगके हितकार बंदूं ते परमेसा ॥१३४॥ सिद्ध नमूं हितदाय लोकसिखर सुविराजें, पंचाचार धराय सो आचारज छाजे। उपाध्याय जग सार अन मुनिको जु पढ़ाई, और मुनि तप धार मंगल सर्ब कराई ॥१३५॥ बंदूं जैन सिद्धांत जो जिनवर वर्णाई, वर्णित कियो गणेश लोक दीपक सम थाइ। जो अज्ञान अंधकार दुरितको मूल नसाई, ज्ञान तीर्थ जु पवित्र सकलको कीरति दाई ॥१३६॥

दोहा—सहस चार षट सतक, और अठाइस जान।
इतनो मूल श्लोक सब, बुधवान मन आन ॥१३७॥

गीता छंद

यह भरतक्षेत्र अनूप सुन्दर जहां आरज खण्ड है, सो दोयसै अड़तीस योजन त्रय कलाकर मंड है। दो सहसकोस तनो सुयोजन गिन अकृत्यममें मही, चवलक्ष छिहत रस हस एक शतक जु कोस गिनो मही ॥१३८॥ दो सहस धनुष तनो प्रमाण जु कोसको जिनवर कह्यो, इतनो जुखंडको विसतार भविजन श्रद्धहो। तहां इन्द्रप्रस्थ खेट सुन्दर एक विस पर्वत खरो, पूरब दिसा यमुना नदी ता बीच निर्मल जल भरो ॥१३९॥ तहां सेठके कूचे विषे जिनधाम है अति सोहनो, सेली जहां इन्द्राजजीकी भव्य जन मन मोहनो। तहां नित्य पूजा शास्त्र होवे बहुत वृषमें रुच धरी, तहां तुच्छ बुद्धि धार तुलसीरामने भाषा करी ॥१४०॥ प्रथम लाला ग्यानचद सुधी सुमोहि पढ़ाइयो, मम पिता बांकेराय गुण-निध तिन मुझे सिखलाइयो। लखि अग्रवाल जु बंस मेरो गोत गोयल जानियो, रिषभेश गुण वर्णन कियो अभिमान चित नहीं ठानियो ॥१४१॥ गिन वेद इन्द्री अंक आतम यही संवत सुन्दरी, कार्तिक सुकृष्णा दूज सौमसुवारको पूरन करी। नक्षत्र अश्वनि जान चंद्र सुमेषको मन भावनो, तादिन विषें पूरण कियो यह शास्त्र जो अति पावनो ॥१४२॥ भाइ जु छोटेलाल अरु शीतल दास प्रमाणिये, ये नित्य येही कहा करे कोइ नया ग्रन्थ बखानिये। तिनको जु हित

ताहेत अरु निज पुन्य हेत लखानिये, भाषा सुगम यह कर दियो भव गन पढ़ो हित ठानये ।।१४२।। व्याकरणमें नहीं सीखियो फुन अमरकोस नहीं भनो, श्रुतबोध पिंगल पढ़ो नाहीं नाम प्रभुको मैं सुनो । जिन अधम उद्धारका विरद है अंजनादिक तारिया, सो मोह क्यों नहीं तार है यह जान मैं नामहि लिया ।।१४३।। मलका महाराणी सु वृद्धा जासको परताप है, अज सिंघ जल एक घाट पीवें न्याय रीति सु थाप है । जिनको यही उपगार है कोई ईत भीत नहीं भई । यह धर्मराज सदा रहो हम यही नित प्रत चाहई ।।१४४।। मैं ग्यानहीन प्रमादयुत मुझ भूल होवेगी सही, सो ग्यानवान सुधारिये यह वीनती उर मम गही। सामायकादिकमें लगत नहि इस बखत परणाम हैं, त्रय जोग इसमें लाग है यह समझ कीनो काम है ।।१४५।।

दोहा–कह जाने तैं यों कहे, हम कछु जाने नांहि ।
जो कहु जाने ही नहीं, ते अब कहा कहांहि ।।१४६।।
संख्या श्लोक अनुष्टपी, भाषा आदि पुराण ।
गिनिये पांचहजारनौ, चार शतक परमाण ।।१४७।।

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते वृषभनाथ निर्वाणगमनवर्णनो नामा विंशतिमो सर्गः ।।२०।।

।। सामायिक पाठ ।।

[स्वर्गीय पं० सागर चन्द जैन सर्राफ देहली कृत]

इस सामायक पाठ का अभिप्रेत प्रयोजन प्रगट करिये हैं मुनि पदवी लेते प्रतिज्ञा करें हैं जो मैं सर्व पाप सूं रहित जो सामायक चारित्र ताहि अंगीकार करूं हूं ता पीछे आहार विहार उपदेशादि प्रवर्त रूप होय तब छेदोपस्थापना रूप चारितहै जातें व्यवहार ऐसा ही है जो ग्रहस्थ अवस्था विषें सर्व पाप रूप प्रवर्तीथो तातें विरक्त होय सर्व ही पाप का त्याग किये परन्तु जेते सराग भाव हैं ते ते पुन्य रूप प्रवर्ति का आलम्बन है परम वीतराग चारित्र का उदयम है सो ताके अर्थ तीन सन्ध्या, प्रभात, मध्याह्न, अपराह्न विषें उत्कृष्ट छह छह घड़ी का नियम करि तथा नीति सार में लिखा है प्रभात चार घड़ी रात्रि रहे जब से कृत कर्म करे सूर्योदय तांई करे और मध्याह्न में दो घड़ी कृत कर्म करे और अपराह्न में चार घड़ी दिन से कृत कर्म करे नक्षत्र के दर्शन न होने तक करे। आहार विहार उपदेशादि क्रिया तें निवृतकर एकांत स्थान बैठि अपने शुद्ध आत्म स्वरूप के सन्मुख होय अन्य तें शुद्ध आत्म स्वरूप अरहंत सिद्ध तथा शुद्धात्मा का ध्याता आचार्य, उपाध्याय, साधु ये पंच परमेष्ठी तिनका स्मरणध्यानपूर्वक पाठ वा अपनी प्रवृतिविषें लगे दोष तिनका पाठ पढ़े हैं। ताका अनुक्रम छह आवश्यक है सो साधु कृत कर्म करे हैं तथापि जे बत्तीस दोष हैं तिनमें एक दोष भी

जो लगावै हैं (तो कृत कर्म का फल जो निर्जरा सो न पावै) तातैं बत्तीस दोष टाल करै तब शुद्धता होय यथार्थ फल पावै।

यहां सामायिक का सरूप लिखते हैं—

गाथा—सहुचर किप्या भावो, तब संजम वरत कहिण वृत भाव बधवाए। आरदि रुद्दविहीणो, सामायोतस-मायोत सुतं ॥१॥

अर्थ—सहुचर किप्या भावो कहिए, सर्व जीवन तैं क्षमा भाव तब कहिए तप संजम कहिए संजम वरत कहिणवृत भावबधवाए कहिए भाव वृद्धि होय आरदि कहिए आरति रुद्र कहिए रौद्र विहीणो कहिए रहित सामायोतस मायो सुतं कहिए ताको सामायक शास्त्र में कहा है।

भावार्थ—तहां पंच थावर हैं तो पृथ्वी खोदै नाहीं, जल मथै नाहीं, अग्नि जलै भुजावो नाहीं, पंखादि तैं वायु काल हनै नाहीं, वनस्पति छेदै नाहीं छीलै नाहीं ए पंच थावर एकेंद्री जीव तिन तैं समता भाव करि दया धारी इनको अभयदान देय घातै नाहीं बे इन्द्री आदि त्रस थावर को समान जानि त्रस हिंसा का त्यागी सर्व को नहीं सतावै आप समान जानि सबतैं समता भाव राख अपनी तरफ तैं सर्व कूं सुख का अभिलाषी त्रस थावर जीवन कूं अभयदान देने रूप परिणति राख अन्तर बाहर बारह बारह संजम बरतवार हैं इनकी बधवारी वांछै आरत रौद्र भाव का

त्यागी होय ऐसे भाव धरतै। सो सामयिक जानना ताहीं सामायिक के अतीचार पांच हैं सो कहिए हैं—(१) मनः दोष, (२) वचन दोष, (३) काय दोष, (४) विस्मर्ण दोष, (५) अनादर दोष। इन दोषन का अर्थ कहिए हैं। १. तहां सामायिक करते समता भाव तजि कै प्रमाद तै अनेक आरित रौद्र भाव विकल्प करं सो मन दोष है। २. और तथां सामायिक करतै पंच परमेष्ठि की स्तुति आलोचना सत्वन् का विचार वैराग्य भाव चिन्तवन ध्याना ध्ययन इत्यादिक सुभ क्रिया तजि प्रमाद बसाय दुष्ट वचन बोल उठै सो वचन दोष हैं। ३. और तहां सामायिक करतै सुधासन तजि आसन चंचल किया करै सो काय अतोचार है। ४. और तहां सामायिक करते पाठ भूलि-भूलि जाय जो मैंने यह पाठ पढ़ा अकबांहो मैं कहा पठो हौं ऐसा विभ्रम भाव रहै सो विस्मणं दोष है। ५. जैसे तैसे आदर रहित जल्दी-जल्दो पाठ पढ़े सो अनादर अतोचार है। ये पंच अतीचार टाले शुद्ध वृत सधै है और या ही सामायिक के बत्तीस अतीचार हैं तिनको मो वृतधारी धर्मात्मा टालैं हैं सो कहिये हैं–(१) अनादर दोष, (२) ततधू, (३) प्रतष्ट, (४) प्रत पीडत, (५) दोलायत (६) अंकस, (७) कट्टिप, (८) मट्टेवृत, (९) मनोदोष, (१०) बंध दोष, (११) भय दोष, (१२) विम्य दोष, (१३) गोख रिधि, (१४) गोरव दोष, (१५) तेनत दोष, (१६) प्रति नीति दोष, (१७)

प्रवुष्ट दोष, (१८) शब्द दोष, (१९) तरजित दोष (२०) हलिति दोष, (२१) त्रिवलित दोष, (२२) कुचित दोष, (२३) दिष्टि दोष, (२४) अदिष्ट दोष, (२५) करमोचन दोष, (२६) लब्धि दोष, (२७) अनालब्धि दोष, (२८) हीण दोष, (२९) उरघत चूल दोष, (३०) मूक दोष, (३१) दारद अतीचार, (३२) चूलित अतीचार। ये बत्तीस दोष कहे हैं। अब इनके अर्थ कहे हैं–तहां सामायिक करते नमस्कारादि क्रिया करे सो प्रमाद सहित विनय रहित करे सो अनादर अतीचार है ॥१॥ सामायिक करते विद्या के मद सहित उद्धत होय अशुद्ध क्रिया करे सो ततधू अतीचार है ॥२॥ तहां प्रतिमा जी के बहुत ही नजदीक सन्मुख होय सामायिक करे सो प्रतिष्ठा दोष है ॥३॥ तहां बोऊ हाथ तैं जघा दाबि कं नमस्कार करे सो प्रति पीड़ित दोष है ॥४॥ और सामायिक करे सो पाठ विस्मर्ण हो जाय तथा शुद्ध ही पढ़े तो चित्त संशय रूप होय सो यह पाठ पढ़ा कि नाहीं पढ़ा मोको याद नाहीं ऐसे मन चचल रहे अरु काय को झूला की नाईं झुलाया करे सो दोलायत अतीचार है ॥५॥ और हाथ अंगुली अंकुशाकार करि मस्तक के लगाय नमस्कार करै सो अंकुश दोष है ॥६॥ सामायिक करते कटि को हाथ लगाय काय को संकोच काछिवे आकार करे सो कछव दोष है ॥७॥ सामायिक करते कटि को हिलावे मछली की नाईं काय को चचल राखे सो मच्छो वृति

अतीचार है ॥८॥ तहां सामायिक करते भया जो सूरज का घाम ताके सहने कूं असमर्थ होय परिणति संकलेश रूप करै सो मन दुष्ट अतीचार है ॥९॥ सामायिक करते काय कूं हाथ तें दाबि दृष्टि बन्धन सा करे सो बंध अतीचार है ॥१०॥ और सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंघ, सर्पादि जीवन के भय सहित कायोत्सर्ग करे सो भय दोष है ॥११॥ और सामायिक करते अपने तो थिरता नाहीं अरु धर्म फल की इच्छा भी नाहीं परंतु गुरु के भय ते तथा सिंघ के भय ते सामायिक क्रिया करे तो परमार्थ रहित करे सो बिस्य दोष है ॥१२॥ तहां चार प्रकार संघ के खुशी करने को तथा अपनी महिमा पर के मुख तें सुनि ने को सभा के हेतु सामायिक करे सो गौरव सिद्धि दोष है ॥१३॥ अपना महात्तम करायवे को इन्द्री सुखन की इच्छा सहित मान बड़ाई के हेतु सामायिक करे सो गौरव दोष है ॥१४॥ जो गुरू के पास सामायिक करूंगा तो कोई मेरा प्रमाद देख औगुन काढ़ेंगे ऐसा जान गुरू ते छिप एकांत जाय सामायिक करे सो अन्यति अतीचार है ॥१५॥ तहां सामायिक करते गुरू की आज्ञा रहित गुरू ते प्रतिकूल होय अपनी इच्छा रूप हो सामायिक करे सो प्रति नीति दोष है ॥१६॥ अन्य जीवन ते द्वेष भाव राखे तथा युद्ध करने का तथा कलह करने का अभिप्राय राखे सो प्रदुष्ट दोष है ॥१७॥ तहां गुरू करि तरजित सामायिक करे सो

तरजित दोष है ॥१८॥ सामायिक करते मौन तजि बोल उठै सो शब्द दोष है ॥१९॥ गुरू के अविनय रूप भाव होय जाय गुरू के मान खंडन रूप परिणति होय जाय माया रूप भाव होय सो हलिलि दोष है ॥२०॥ और सामायिक करते ऊंचा होय त्रिबली भंग करे तथा ललाट पै त्रिबली करे सो त्रिबलित दोष है ॥२१॥ सिर को हस्त तैं क्षय कर काय को संकोच के गठिया समान करे सो कुचित दोष है ॥२१॥ और गुरू के देखे ते तथा अन्य कोई और के देखे ते सामायिक करे तब तो महा बिनय सहित खड़ा होय करे काय को शुद्ध राख भली क्रिया सहित सामायिक करे, कोई नहीं देखना होय तब प्रमाद सहित सु इच्छा चारी होय करे चव दिशा अवलोकन काय मन चंचल राखे इसी भांति सामायिक करे सो दिष्ट दोष है ॥२३॥ और अपने गुरू ते अप्रसन्न होय तथा संघ में और वृद्ध मुनिवेड गुरूजन ते दृष्टि चुराय अपने तन की शोभा निरखै सो काय रूपवान देख राखो होय मन तन चलन चंचल राखे सो अदृष्टि दोष है ॥२४॥ और तहां चार जात संघ तथा अन्य जन को राजी करवे को सामायिक करे सो कमोंचन दोष है ॥२५॥ और तहां आपको पोछी आदि पदार्थ की प्राप्ति वांछै जो मेरे पास पीछी शास्त्रादि उपकर्ण नांही है सो मिले तो भला है ऐसी जान सामायिक करे सो लब्धि दोष है ॥२६॥ और श्रावक के षटकर्म रूप उपकर्णन की प्राप्ति जाने तो

सामायिक करे सो अलब्धि दोष है ।।२७।। और तहां काल की मर्यादा टालि सामायिक करे अरु ग्रन्थन के अर्थ विचार रहित रूप भाव राखं सो हीण दोष है।।२८।। और तहां जल्दी जल्दी क्रिया करि अल्पकाल में सामायिक पूर्ण करे अरु पाठ पढ़े सो भूल-भूल जाय फेर पढ़े, पढ़े फेर भूले ऐसे सामायिक करे सो उबरति चूलि दोष है।।२६।। और तहां सामायिक करते मूके की नांई हुं हुं बोले सो, तथा अंगुली नेत्रादि तै संज्ञा बतावे सो मूक दोष है।।३०।। और तहां सामायिक करते शोर करि पाठ पढ़े जैसे कि मेंढक शोर करे तैसे पाठ करते शब्द बोले सो बहुत शोर करे सो दादुर दोष है।।३१।। और तहां सामायिक करते एकास ते ही एक क्षेत्र तिष्टता सर्व देव गुरू की स्तुति करते नमस्कार करे अरु पाठ पढ़े सो महा मिष्ट स्वर तें राग सहित परके मन रंजायवे द्वारा स्वर तें पढ़े सो चूलित दोष है।।३१।। ऐसे यह बत्तीस दोष कहे हैं तिनको टाल सामायिक करे सो शुद्ध सामायिक धारी श्रावक है।

आगे बाईस दोष सामायिक करतें कायोत्सर्ग करते तब टाले सो और कहिये।

१. घोटिक दोष, २. लता दोष, ३. स्थम्भ दोष, ४. कुट्या दोष, ५. माला दोष, ६. वधू दोष, ७. लम्बोतर दोष, ८. तनदृष्टि दोष, ६. वायस दोष, १०. पालन दोष, ११. जुग दोष, १२. कपित्थ दोष, १३. सिर कम्पित दोष,

१४. मूक दोष, १५. अगलित दोष, १६. भ्रु व विकार दोष, १७. सुरा पाय दोष, १८. दिशा अवलोकन दोष, १९. ग्रीव दोष, २०. परनमन दोष, २१. निष्ठीवन दोष, २२. अंए-मरछ दोष ।

अर्थ—घोड़े की नाईं खड़ा होय सामायिक करे सो सामायिक दोष है ॥१॥ सामायिक करते समय शरीर को बेलि की नाईं आंका-बांका करे सो लता दोष है ॥२॥ सामायिक करते समय शरीर को थम्भ का तथा भीतिका आसरा देय खड़ा होय तथा शास्त्रनि के अर्थ चिन्तवन करि रहित शून्य चित्त कर थम्भ की नाईं खड़ा होय सो थम्भ दोष है ॥३॥ सामायिक करते महल गुफा ग्रह कुटी मंठपादिक बांछे सो कूटचा दोष है ॥४॥ सामायिक करते समय ऊँचा सिंहासन, पाटा, चौकी पर खड़ा होय करे सो माला दोष है ॥५॥ जहाँ कोई भली स्त्री लज्जा सहित अंग छिपाय खड़ो होय तैसे वस्त्र से तथा कर से अंग ढांपि खड़ा होय सो वधू दोष है ॥६॥ सामायिक करते व्युत्सर्ग समय लम्बे हस्त करि अर्द्ध नमस्कार करे सो लम्बोतर दोष है ॥७॥ सामायिक करते अपने शरीर को निरखे भला कोमल सुन्दर स्वभाव का देख खुशी होय और मलीन क्षीण शोभा रहित श्याम कृश देखे तो मन में राजी न होय सो दृष्टि दोष है ॥८॥ सामायिक करते काक की नाईं नेत्र चंचल राखि चउ दिशा अवलोकन

करे सो वायस दोष है ॥९॥ सामायिक करते घोड़े की नाईं दांत चबाया करे मुख गर्दन तन कठोर राखे सो पलन दोष है ॥१०॥ सामायिक करते वृषभ की नाईं गर्दन को ऊंची-नीची करे सो जुग दोष है ॥११॥ सामायिक करते मूकी बांध सामायिक को खड़ा होय सो कपित्थ दोष है ॥१२॥ और तहां शीश धुनै हिलावे सो सिरकंपित दोष है ॥१३॥ मुख नाक नेत्र बांके करता जाय सो मूकि दोष है ॥१४॥ हाथ पांव की अंगुली हिलावे सो अंगुल दोष है ॥१५॥ नेत्र बक्र करे भौंह धनुषाकार चढ़ावे दृष्टि बांकी करे सो भ्रुव विकार दोष है ॥१६॥ मतवाले की नाईं घूमे सो सुरापाय दोष है ॥१७॥ नीचा ऊंचा दशों दिशा में इत उत देखा करे सो दिशा अवलोकन दोष है ॥१८॥ ग्रीवा को इत उत हिलाय बांकी नीची ऊंची करे सो ग्रीव दोष है ॥१९॥ ध्यान तजि और ही क्रिया करने लगे सो परिनमन दोष है ॥२०॥ सामायिक करते समय मुख ते थूके तथा नाक कान का मैल निकाले तथा अंगोपांग मरदन करि मैल उतारे तथा मुख में जीभ को हिलावे फेरा करे, दांतों को होंठ ताईं चलावे तथा पद्मासन तिष्ठता पांव पगथली छुवा करे समले सो निष्ठो बदन दोष है ॥२१॥ सामायिक करते समय मूत्र करने का स्थान, मल करने का स्थान छूवे सो अंगस्पर्श दोष है ॥२२॥ ऐसे सामायिक के अतीचार पांच तथा बत्तीस

तथा बाईस एते अंतराय टालि के धर्म फल का लोभी सामायिक प्रतिज्ञा का धारी अपने व्रत की रक्षा करता हुआ ऐसे सामायिक करे।

अब सामायिक करने का स्थान बताते हैं

तहां सूना महल होय, घर मन्दिर सूने होंय तथा धनी रहित तामें काहू का ममत्व नाहीं ऐसा मंडप होय तथा सिंघादि गुफा होय तहां सामायिक करे तथा बन, मसान, वृक्ष की कोटरनि में, जिन मन्दिर इत्यादिक एकान्त स्थान शुद्ध देख तहां न अति शीत, न अति गर्मी होय तहां दंस मसकादि नाहीं होंय तहां कोलाहल शब्द नाहीं होय तहां काहू का युद्ध नाहीं होय परस्पर काहू के कटुक शब्द नाहीं होंय इन आदि शुद्ध प्रासुक (फासू) जीव रहित वैराग्य भावना के बधावने कूं कारण निर्जन स्थान होंय तहां तिष्ठ के मन वचन काय एकाग्र कर शुद्ध होय सर्व जीवों से दया भाव कर कोमल भावना सहित सामायिक करे सो शुद्ध सामायिक प्रतिज्ञा का धारी उत्तम श्रावक जानना। सामायिक करते समय लंगोट मात्र आदि अल्प परिग्रह का धारी होय तिष्ठे, चित्त की वृत्ति मुनि समान निर्मल राख अपने मन से ममत्व भाव तजि वैराग्य भावना समूह, मोक्ष मार्ग में विहार करने की इच्छा का धारक ऐसा धर्मी श्रावक सों नहीं चाहे है चार गति के शुभाशुभ शरीरन का वास

जाकै, सो अपने पदस्थ तैं ऊपरि के स्थान चढ़िवे की है इच्छा जाकै, ऐसा जगत सुख तैं उदासीन श्रावक धर्म का धारी तीसरी पडमा (प्रतिमा) धारी है।

।। सामायिक इति बाईस दोष ।।

तहां प्रथम तो एकांत स्थान बैठे तो पहली प्रवर्ति में दोष लागे होंय ताका वृथा करण रूप १. प्रतिक्रमण पाठ है। ता पीछे सर्व राग द्वेष सूं रहित जो समता भाव कहिये। २. सामायिकता का पाठ है। ता पीछे चतुर्विंशति तीर्थंकर का। ३. स्तवन तथा एक तीर्थंकर के गुणानुवाद रूप। ४. वंदना का पाठ है ता पीछे पाप क्रिया का त्याग रूप। ५. प्रत्याख्यान तथा स्वाध्याय। ६. कार्योत्सर्ग का पाठ है इत्यादि ऐसे षट आवश्यक रूप मुनिराज नियम तैं नित्य प्रवर्ते है। सो पाठ पाकृत संस्कृत बचन है ताकी देश भाषा मय छन्द चौपाई आदि सुगम लिखते हैं ताकूं बांच मंद बुद्धि विषैं भव्य जीव हू अर्थ समझ त तब सामायिक की विधि का स्वरूपजानि या विषैं प्रवर्तने की रुचि करें ऐसा प्रयोजन है।

(तहां प्रथम प्रतिक्रमण पाठ ऐसा है)

प्रथम स्थल चौपाई

केवल ज्ञानी श्री जिन अबै, किये दोष निर्वारूं सबै।
गुप्ति त्रय मोपै नहिं पले, तुम भक्ति तैं पातक टलै ।।१।।
मारग में इर्या पथ मांहि, सहित विराधन क्रिया थाय।

बहुत गमन निर्गमन करंत, बैठत पद विक्षेप धरंत ॥२॥
प्राणी ऊपर गगन जु कियो, तथा बीज ऊपर पग दियो।
हरित वस्तु दावी पगधार, डारत मल मूत्तर खंखार ॥३॥
अरु उपकरण क्षेपते कोय, इत्यादिक किरिया में जोय।
एते जीव एकेन्द्री सोय, द्वे इन्द्री ते इन्द्री जोय ॥४॥
चौ इन्द्री पंचेन्द्री जीव, गमन करत निज स्थान सदीव।
रोके अरे इकट्ठे किये, वा भेले करि त्रास जु दिये ॥५॥
मारे वा परतापित कीन, कत्तरे चूर्ण किये मति हीन।
कै छेदे कै भेदे होंय, अपने स्थानक बैठे सोय ॥६॥
तथा स्थान तैं दूजे स्थान, गमन करत जु बिराधन ठान।
ताको उत्तर गुण सुख कूप, धारूं प्रायश्चित्त सरूप ॥७॥
जो लगदोष जु शोधन हार, करूं नमन जिनवरको सार।
तौ लग दुराचार युत देह, यातैं छांड़त हूं सब नेह ॥८॥

ऐसे कहकर अथ अरहं, णमो अरिहं, णमो अरिहंताणं इत्यादि जाप करे ऐसा प्रथम स्थल है। आगे इस ही का अर्थ समुदाय रूप कहे हैं।

दूसरा स्थल अडिल्ल

ईर्या पथ चलते जूड़ा परमाण ही। विन निरखे जो जीवन को होय हान ही ॥९॥ एकेंद्री आदिक की हिंसा पूरही। पण परमेष्ठि भक्ति थकी ह्वै दूर ही ॥१०॥

आगे कहे हैं जो गमन करते हिंसा होय है सो सामायिक के निमित्त गमन का त्याग करूं हूं।

मैं कर चरण शरीर तने जु विद्यात तें। जीव हते एकेंद्री आदि प्रमाद तें ॥११॥ अब तिस दोष निवृत्ति अर्थ अघ हानि में, हलन चलन तजि निश्चल बैठूं ध्यान में ॥१२॥

चौपाई

हे भगवान करूं शुभ मना, ईर्या पंथ थकी आलोचनां।
पूरब दक्षिण पश्चिम और उत्तर विदिशा चार बहोर ॥१३॥
भूमि निरख जूड़ा परमाण गमन करन है उचित सुजान।
सो मैं जैसे तैसे चलो दबक दबक ऊतावल हलो ॥१४॥
बिन देखे परेमाद बशाय विकल त्रय पण स्थावर काय।
पंचेन्द्री इनको उपघात पीडा करी जु मैं निज हाथ ॥१५॥
करवाई अनुमोदी होय, ताको पाप लगो जो कोय।
सोहे जिन तुम भक्ति बनाय मिथ्या होऊ यही मम चाहि ॥१६

ऐसे दूसरा स्थल है। आगे शांति भाव के अर्थ शांत पाठ का अष्टक पढ़े हैं।

गीता छन्द

स्वामी तुम्हारी शरण पर या स्नेह तें नहीं आय हूं।
संसार समुद्र विचित्र दुखमय तास तें भय खाय हूं॥
जब ग्रीष्म काल विषें जु तीक्ष्ण किरण रवि की लागही।
तब बढ़े जल अरु शशि किरण छाया विषें अनुराग ही ॥१७॥
हे प्रभु तुम्हरे चरण युग के, स्तोत्र मंत्र प्रभाव तें।
अचरज बढ़ो जे विघ्न भारी तुरत होय अभाव तें॥
जिम सर्प आसा विष डसे तिस विष तनी ज्वाला कसे।

सो मंत्र विद्या औषधी जल होम आदिक तै नसे ॥१८॥
ताए सुवर्ण समान उज्जल, देह की छवि सोहनी ।
जिनराज तुम्हरे चरण वदत नसत दुख पीड़ा घनी ॥
जिम सूर्य उगत मात्र हो उद्योत दस दिशि में लसै ।
सब जगत के नैनन थको, रजनी निकसित क्षिरान से ॥१६॥

जोगीरासा छन्द

रौद्र काल रूपी दावानल, इस ससार मझारी ।
भंग किये इन्द्रादिक सब ही पाई जीत करारी ॥
तुम भक्ति सरिता से जो नहिं काल अगिन मिट जावे ।
सो ससारी जिय क्यों छूटे भस्म होय दुख पावे ॥२०॥
तीन लोक मे ज्ञान अनंतो, ताकी मूरति स्वामी ।
छत्र त्रय सिर रत्न जडित अति सुन्दर सोहे नामी ॥
तुम चर्णन के स्तवन मात्र ही रोग शोक नस जावें ।
जैसे नाद सुनत केहरि को गज समूह थर्रावें ॥२१॥
दिव्य स्त्रिन के नैनन को प्रिय, रूप अनुपम सोहे ।
बाल सूर्यवत तुम भामडल, प्राणिन को मन मोहे ॥
अव्याबाध अचिंत्य सार सुख, तुम ठीक भक्ति तै पावे ।
तुमरे चरण कमल युग बदे जन्म मरण नसि जावें ॥२२॥
जौ लौं तुमरे चर्णन को परशाद उदै नहि होवे ।
तो लौं ये संसारी प्राणी पाप उदै दुख जोवे ॥
सूर्योदय बिन इसो लोक मे कमल समूह न फूले ।
जो यथार्थ तुम रूप न जाने सो भव बन मे भूले ॥२३॥

शांत जिनेश्वर शांत अर्थ बहु, जीव शरण तुम आवें ।
शांत चित्त ह्वै कोधादिक हति भव समुद्र तिर जावें ।।
तातें तुमरे चरण कमल युग, तें ही इष्ट सुदेवा ।
बाह्याभ्यंतर शांत करो प्रभु यह दीजे फल सेवा ।।२४।।

भावार्थ–जहां शांतिक पौष्टकादिक भले कार्य हैं तहां शांतिनाथ जी सोलहवें तीर्थंकर ताका स्मरण ध्यान स्तोत्र पूजा का अधिकार है तातें सामायिक करता हूं अपने बाह्याभ्यंतर शांत भाव का अरथी शांतिनाथ तीर्थंकर का ही अष्टक पढ़े हैं। तथा शांति के कर्ता सबही तीर्थंकर हैं सो प ई ही का स्तोत्र जानना चाहिए। ऐसे तीसरा स्थल है। आगे सामायिक की प्रतिज्ञा करे है तथा प्रथम ही इष्ट को नमस्कार है।

बन्दूं वर्धमान हितकार, पाप रहित शुद्धातम सार ।
सहित आलोक लोक त्रय जान दर्पणवत प्रगटावत ज्ञान ।।२५
कीनो सब कर्मनि को नाश, धर्म स्वरूप कियो परकाश।
बंदूं जिनवर गुणयुत सबै सामायिक विधि बरनूं अबै ।।२५

अब प्रथम ही कहा करे सो कहे हैं।

क्षमा करूं सब जिय मैं अबै मोपै क्षमा करो जिय सबै ।
मैत्रीभाव सबन से करूं नाहीं बैर किसी से धरूं ।।२७।।
राग द्वेष भय हर्ष विषाद दीन भाव उद्धतता वाद ।
शोग आरति रति आदि अनेक तज कुभाव धारूं सु विवेक।।२८

बहुरि पहले किए ऐसे कुभाव तिनका प्रतिक्रमण करे हैं।
हा हा क्रिया करी दुठकाय तथा दुष्ट चितबन्न कराय ।
हा हा मैं दुठ वचन उचारा पछताऊँ अब बारम्बार ॥२६॥
द्रव्य क्षेत्र अरु काल जु भाव इनमें जो अपराध कराव ।
निंदा ग्रहायुक्त प्रचार प्रतिक्रमरण करहू सु विचार ॥३०॥
नमूं जिनेश्वर जग हितकार, देव बन्दना करूं आवार ।
सामायिक प्रतिज्ञा करूं श्रीजिन चर्ण विषें चित्त धरूं ॥३१॥

ऐसे चौथा स्थल है ॥४॥ आगे जो करने योग्य हैं। तहां प्रथम ही सामायक का स्वरूप कहे हैं।
सब जीवन सूं समता भाव, संजमादि शुम भाव बढ़ाव ।
आरत रौद्र करे परित्याग सों सामायिक वृत बड़भाग ॥३२॥

॥ आगे मंगल के अर्थ नमस्कार है ॥

महावीर बंदूं जिनराज, सिद्ध भये तिनके सब काज ।
भविजनको वांछित दातार, मोक्ष तने कारन सु निहार ॥३३
दर्शन ज्ञान चारित शुभसार, परकाशक मंगल कर्तार ।
चरण कमल का किरण सरूप केशर आलिंगे सुर भूप ॥३४॥

आगे मंगल कर और मंगल करने का प्रयोजन कहे हैं।
आदि मध्य अवसान मंझार, मंगल भाषें बुधजन तार।
सो मंगल है जिन गुणगाण विघ्न विनाशे पातक हानि ॥३५॥
विघन विनाशे भय नहिं होय, क्षुद्र देव पीड़े नहिं कोय ।
मनवांछित पूगे सुषकार, जिन गुणगान करन तें सार ॥३६॥
सिद्ध भये जिनके सब काज, ऐसे सिद्ध सु है महाराज ।

सिद्ध करो मम कारज सार बंदन करूं सू बारम्बार ।।३७।।

।। आगे मंगल का फल कहे हैं ।

आदि विषै मंगल जो करे, शीघ्र कार्य पूरण ता बरे ।
मध्य थकी विच्छेदन जोय, अंत थकी फल प्रापति होय । ३८

ऐसा जान सामयक करता हूं । मंगल किया है ऐसे ५वां स्थल है ।।५।।

।। आगे कृत कर्म का स्वरूप कहे हैं ।।

यथा विधान नम्न द्वै बार, फुनि बारह आवर्प विचार ।
चार शिर.न्नति कीजे पर्म मन वच काय शुद्ध कृत कर्म ।।३६
जे साधू कृत कर्म जु करे बत्तीस दोष सहित अनुसरे ।
ते कृत कर्मतनो फलसार पावे नहिं निर्जरा लगार ।।४०।।

ऐसे छठा स्थल है ।।६।। आगे कहे हैं कृत कर्म ऐसे करना ३२ दोष का वर्णन भूमिका में कहे है ।

शब्द अर्थ अरु उभय सुजान, तीनों शुद्ध पड़े मद हान ।
कायोत्सर्ग खड़े ह्वै करे अथवा पद्मासन अनुसरे ।।४१।।
शुद्ध करे निज मनवच काय विनय सहित शुभ ध्यान लगाय।
पूरब परिपाटी अनुसार करे सुनित कृत कर्म विचार ।।४२।।
कृया २ प्रति फिर २ करे रागद्वेष मब सूं परिहरे ।
कृत कारित अनुमोदन जान तीनों शुद्ध करे बुद्धवान ।।४३।।

आगे कृत कर्म की विशुद्धता निमित्त विशेष कहे हैं ।

काल सु आसन मुद्रा स्थान अरु आवर्त शिरोन्नति जान ।
योग्य यथोचित मुनिवर धरे सो निर्मल कृत कर्मसु करे ।।४४

प्रतिमा में पित अरहंत, तिनको स्थापन करूं सु महंत ।
पूजा स्तुति यथा आमनाय जय २ रवि करहूं सम भाय ॥४५
प्रतिमा नहिं होवे तिसबार तो संकल्पे चित्त मंझार ।
श्रीजिन तिनकी पूजन करे अस्तुति जय २ रवि उच्चरे ॥४६॥

॥ आगे सामायक का फल की महिमा कहे हैं ॥

जो श्रावक सामायिक करे मन बच काय क्रिया परिहरे ।
मुनिव्रत आत्म विर्षे लबलाय, देवादिक नहिंसकै डिगाए ॥४७
अभवि द्रव्य लिंगी मुनि होय, सो सामायिक बलतें सोय ।
नवमें ग्रीवक तक सो जाय अद्भुत विभबल है सुखदाय ॥४८
सामायिक है सब में सिरै तामें कौन रुचि नहीं करे ।
अरु जिनकी रुचि जामें नहीं ते दीरघ संसारी सही ॥४६॥

ऐसे सातवां स्थल है ॥७॥ आगे करने योग्य की विनती करे हैं ।

बंदूं जिनवर तारण तर्ण, करो प्रशाद प्रभु के चर्ण ।
पाप कर्म से विरकत होय, बंदन करस्यूं जिनपद दोय ॥५०॥
देव बंदना परभात की आई चली पूर्व क्रम थकी ।
सब कर्मन के नाशन हेत पूजा वंदन स्तवन समेत ॥५१॥
श्रीजिन चैत्य भक्ति का काल, ताका कायोतसर्ग विशाल ।
धारूं तज प्रमाद कषाय, चैत्य भक्ति अब करूं सुभाय ॥५२

ऐसे आठवां स्थल हैं ॥८॥ आगे कृत कर्म बन्दना करे हैं ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहुणं ।।५३।।
चत्तारि मंगलं अरहंत मंगलं सिद्ध मंगलं ।
साहु मंगलं केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं ।।५४।।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा ।
साहु लोगुत्तमा केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।।५५।।
चत्तारि शरणं पव्वज्जामि अरहंत शरणं पव्वज्जामि
सिद्ध शरणं पव्वज्जामि साहु शरणं पव्वज्जामि
केवलि पण्णत्तो धम्मो शरणं पव्वज्जामि ।।५६।।

चौपाई

दीप अढ़ाई सागर दोय, पन्द्रह कर्म भूमि मध जोय ।
जेते अरहंत भगवत आदि, धर्म तीर्थ कर्ता निरवधि ।।५७।।
जिन जिनवर अंत कृत केवली सिद्धबुद्धि आचारज वली ।
धर्म तने उपदेशक सार वृष के नायक हित करतार ।।५८
वृष सम्बन्धी चव अनुयोग ताके चक्रवर्ती सु मनोग
देवन के अधिदेव सु सार दर्शन ज्ञान चरित सुखकार ।।५९
मैं इन सबके अर्थ अवार करत सहूं कृत कर्म विचार ।
जेते सामायिक आदरूं, पाप योग सबही परिहरूं ।।६०।।
कृत कारित अरु अनुमोदना, मन वच काय तजू शुद्धमना ।
अतीचार लाभो जो कोय प्रतिक्रमण तिस करूं व होय ।।६१
जेते जिन उपासना करूं, ते ते काय ममत परिहरूं ।
निज निंदा गुर्हा उच्चरूं, आगामी विवेक उर धरूं ।।६२।।

ऐसे पढ़ वहुरि जाप अर्हं णमो अरहंताणं इत्यादि सताईस स्वासो स्वास में नव जाप करे ऐसे नवमां स्थल है ॥९॥ आगे चौबीस तीर्थंकरन का स्तवन का पाठ है ॥

चौपाई

करस्यूं मै जिनवर गुणगान धर्म तीर्थ कर्तार महान।
केवलज्ञान हहित बलबंड अविनाशी जित कर्म प्रचण्ड ॥६३
कर्म रूप रज दई उड़ाय, तीन लोक पूजित पद पाय।
नरोत्तम ज्ञानोत्तम सार तिनकी स्तुति मैं करूं अवार ॥६४
लोकालोक प्रकाशक भान धर्मागम कर्ता भगवान।
जिन अरहंत केवली सार बंदूं चौबीसों अवतार ॥६५॥

॥ छन्द कुसुम लता ॥

वृषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पदम प्रभु हित कर्तार। जिन सुपार्श, चन्द्र प्रभु नामी, पुष्प दन्त, शीतल जित मार॥ श्रेयनाथ अरु वासुपूज्य फुनि, बिमल, अनंत, धर्म, नमि धीर। शांति, कुन्थ, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेम, पार्श्व, अतिवीर ॥६६॥

चौपाई

इस प्रकार चौबीस जिन जोय होऊ प्रसन्न मम ऊपर सोय।
कर्म रूप रज कीनी दूर, नाशो जरा मरण भरपूर ॥६७॥
ये हो जिनवर लोक प्रसिद्ध उत्तम समदर्शी युत ऋद्धि।

मैं थुति पूजन बंदन करी, ताको फल मांगूं इस घरी ।।६८
रत्नत्रय समाधि निररोग ज्ञान तनो ह्वै लाभ मनोग ।
शशितैं अधिक सु निर्मल जोय अधिक प्रकाशी रबिते सोय ।।६९
सागर सेती अधिक गहीर, सिद्ध अष्टगुण संयुत धीर ।
शुद्ध सु अविनाशी अविकार सिद्ध करो मम कारज सार ।।७०

।। ऐसे दशवां स्थल है ।।१०।।

तीन भुवन माही परधान जेती जिन प्रतिमा सुखदान
भक्ति भाव सों निर्मल सदा मन वच काय नमू ह्वै मुदा ।।७१
शोभे सर्वोत्कृष्ट जिनन्द करें सु बंदन नित्त सुरिंद ।
बैर कलुषता त्याग मनुष्य, बंदें और चढ़ावें पुष्प ।।७२।।
वृष कल्याण रूप सुखकार, बधे महोदय अपरम्पार ।
कुगति मार्ग में क्लेश अनेक तिनतें रक्षे सहित विवेक ।।७३
इस संसार थकी निरधार रक्षे जिन बच अमृत सार ।
द्वै नय रूप भंग जे सात तिनकर भेद रूप विख्यात ।।७४।।
सो जिन आगम तीन प्रकार अक्षर पद अरु वाक्य निहार ।
अंग पूर्व पर कीर्णक तथा व्यय उत्पाद ध्रौव्यकी कथा ।।७५

ऐसे ग्यारहवां स्थल है ।।११।। देवता को क्रम रूप नमस्कार है ।

सर्व जगत बंदत अरहंत, सिद्ध और आचार्य महंत ।
उपाध्याय अरु साधु सर्व, नमूं त्रिकाल तने तज गर्व ।।७६

मोह राग द्वेषादिक अरी, तिन्हे घातके प्रभुता बरी ।
अरि रज रहस रहित अरहत, बदू जिनको बदें सन्त । ७७।।
जिन भाषित वृष बदू तास, क्षमा आदि साधन है जास ।
लोक समस्त तनो हितकार स्वर्ग मोक्ष मे स्थापन हार ।।७८।।
मै जिनवर वच नमू महान मिथ्यातम नाशनको भान ।
बदीगण कर दुर्जय जान अग प्रकीर्णक सहित प्रमाण ।।७६।।
चार निकाय के देव विमान मनुष्य लोक मे बिंब महान ।
तीन जगतकर बदित सोय मन बच काय नमू शुद्ध होय ।।८०

अडिल्ल

त्रिभुवन मे ससार रहित जिनचद जी, नमे सुरेश नर ईश धार आनन्द जी । तिनके चैत्यालय की पक्ति प्रसिद्ध है, नमू भवाग्नी शाति हेतु युत ऋद्ध है ।।८१। ऐसे पण परमेष्ठी जिन वृष जिन वचन, जिन प्रतिमा जिन मदिर बन्दे शुद्ध मन । बुधजन को जो इष्ट बोध प्रापति कही, सोई मुझको होऊ यही निश्चय सही ।।८२।।

ऐसे बारहवां स्थल है ।।१२।। आगे जिनेंद्र की प्रतिमा वा मदिर तिनका विशेष वर्णन करि नमस्कार करे हैं ।

चौपाई

तीन भुवन मे जे जिनधाम तिनमे श्री जिन बिंब ललाम ।
कृत्या कृत्रिम क्राति समेत सुर नर बदित नमू सुचेत ।।८३।।

पद्धड़ी छंद

मैं बंदूं जिन प्रतिमा महान, भामंडल कर दैदीप्यमान ।
संपतिदायक बर्ते अनादि छबिजिन शरीर रहित व्याधि ॥८४

अडिल्ल छन्द

श्री जिन ग्रहन विषै जे जिन प्रतिमा महा ।
तिनको पातग शांति हेतु बंदूं यहां ॥८५॥
आभूषण आयुध विकार वर्जित कही ।
जिन स्वभाव वत तिष्टें क्रांति धरें सही ॥८६॥

चौपाई

जिन स्वरूपवत मूरतिवान सो जिन बिंब नमूं धरध्यान ।
निकट भव्य तिनको अधिकाय दायक शांति संपदा भाय ॥८७
जिन बिंबन की भक्ति जु करी तथा सिद्ध भक्ति उच्चरी ।
ताफल जैन धर्म सुखकार पाऊँ भव २ में निर्धार ॥८८॥

ऐसे तेरहवां स्थल है ॥१३॥ कहिये जिनेश्वर की प्रतिमा हैं तिनको स्तवै हैं ।

सब पदार्थ के जाननहार, दर्शन ज्ञान सम्पदा धार ।
ऐसे श्रीजिन बिंब उदार स्तुति करूं बुद्धि अनुसार ॥८९॥

गीता छंद

श्री भगवान वासिन के भवन में बिंब श्री जिनवर तने ।
दैदीप्यमान स्वमेव मूरति बंदते पातग हनें ॥

या लोक में जिन बिंब कृत्रिम अरु अकृत्रिम है जिने ।
वर अर्थ सम्पति के निमित्त बंदन करूं मैं सब तिते ॥६०॥
व्यन्तर विमानन के विषैं राजे जिनेश्वर गेह ।
शास्वते गणना रहित सोई दोष शांत करेय ॥
ज्योतिषी देवन के विमानन में जिनालय सार ।
सम्पदा अद्भुत सहित बन्दूं सम्पदा दातार ॥६१॥
देव वैमानिक नर के वर मुकट में मणि जे भने ।
तिस दीप्त कर अभिषेक हो जिन बिंब के चर्णन तने ॥
ते बिंब पण सत धनुष ऊँचे मोक्ष कारण मैं नमूं ।
संसार पार उतार अब मिथ्यात हला हल बमूं ॥६२॥
ऐसे जिनेश्वर बिंब की अस्तुति जु मैंने उच्चरी ।
सो सर्व आश्रव रोक दो निश्चल दशा मैंने करी ।
जिनराज थारी स्तुति पूरण कौन नर सुर कर सके ।
जहां चार ज्ञानी गणधरादिक सुरगुरू आदिक थके ॥६३॥

ऐसे चौदमां स्थल है ॥१४॥ आगे अर्हंत भगवान कू तीर्थ की उपमा दे स्तुति करे हैं ।

छन्द जोगीरासा

श्री अरहंत तनो जो मारग उत्तम तीरथ होवे ।
चक्रवर्ति गणधर इन्द्रादिक पाप रूप मल धोवे ॥
तिस तीरथ में स्नान करूं मैं पातग मल निरवारूं ।

भव्य जीव जात्रिन के पातिग दूर करें उरधारूं ॥६४॥
लौकिक तीर्थनि तें उलंघ अति वर्तत है सुखकारी ।
केवल ज्ञान प्रवाह निरन्तर बहत तहां अतिभारी ॥
मूलोत्तार गुण दोऊ कूं ले निर्मल दीरघ छाजे ।
शुक्ल ध्यान तेई हंस मनोहर सौभं निश्चल राजे ॥६५॥
नित्य जपनु स्वाध्याय सु होवें सोई शब्द अनूपा ।
समिति गुप्ति अरु गुण अनेक सो सिकता थल सुख रूपा ॥
क्षमा रूप आवर्तन के हैं सहस जास में सोहें ।
दया भाव सुन्दर बेणी शुभ फूल फलन करि सोहें ॥६६॥

पद्धड़ी छन्द

दुद्धर परिषह सोई तरंग, अरु भाग कषायें होत भंग ।
फुनिराग द्वेष सैबाल हीन मोह रूप कीच नाशी मलीन ॥६७
अति दूर मकर मर्ण रूप अरु ऋषिगण स्तुति करते अनूप ।
सोई पक्षिन को रव महान सोभं पुलवत मुनि तप निधान ॥६८
तिनके आश्रय यात्री पिछान बसु कर्म तनो आश्रव बखान ।
ताको संबर युत निर्जरान सोई नीझरनें आनन्द दान ॥६९
सो काहू कर जीतो न जाय ऐसो गम्भीर पवित्र थाय ।
ये ही उत्तम तीरथ महान भव्यन को तारन हार जान ॥१००
इस बिन जग में तीरथ अनेक सो कहने के हैं हत विवेक ।
अंतर आतम को पाप दूर यह तीर्थ करे आनन्द पूर ॥१०१॥

ऐसे पंदरहवां स्थल है ॥१५॥ आगे जिनेन्द्रं के रूप की स्तुति करें हैं।

हे जिन तेरो मुष द्युत गहै हृदय तनी शुध तासो कहै।
क्रोध अगनि तीतन तें ज्ञान अरुणाई वर्जित चेष वान ॥१०२
गयो विकार भाव सर्वथा रहित कटाक्ष दिपे चेष तथा।
अर विषाद मद वर्जित कहै तातैं मुख प्रसन्नता रहै ॥१०३॥
रागादि उदै को दूरबान आभूषण बिन दैदीप्यमान।
स्वाभाव थकी निर्दोष जान निर बसन मनोहर तेज खान ॥१०४
हिंसाक्रम दूर भयो अशेष निर आयुध शोभित तुम जिनेश।
क्षुधादि रोग कीने जु दूर बिन असन निरंतर तृप्त भूर ॥१०५
नख केश नहीं बाढें कदापि रजमल सपरस वर्जित सुआप।
नूतन अंबुज चंदन समान सुंदर सुगंध को उदय जान ॥१०६
रवि शशि वज्रादिक विह्नसार तिन चिह्ननतें शोभे अपार।
हजार सूर्य सम तेज सार फुनि नेत्रन को आनन्दकर ॥१०७॥

चौपाई

दोष रहित जे कुगुरु अपार सोई रात्रि उदै निरधार।
ताकरि जय जिय अंध समान भ्रमत जगत ह्वै अज्ञान ॥१०८
राग द्वेष मोहादिक जोय ता सेती दुखित मन होय।
सोहूं तुम सन्मुख ह्वै स्वामी देखत दोष रहित ह्वै तामि ॥१०९
अरु जे सन्मुख होय सुनित्त अवलोके तुम मुष इक चित्त।

तिनके सरद चंद्रमा कार उदै तनो ह्वै आनंद सार ॥११०

ऐसे सोलहमां स्थल है ॥१६॥ आगे समोशरण की महिमा पूर्वक श्री चन्द्रप्रभु स्वामी की स्तुति करे है ।

चहुं ओर मानसथंम बापी खातिका फुलवाड़ि जा ।
प्रकार नाट्य सुशालि उपवन बेदिका अन्तर ध्वजा ॥
फुनि कोट कल्पद्रुम सुबन और स्तूप महलन पांति नं ।
कांट स्फटिक भई नर सुर सभापीठों पर जिनं ॥१११॥

चौपाई

नमें इन्द्र तिन मुकट मंझार जिनके चरणन बन द्युतिसार ।
सोई चंद मुकट बत होत नमूं स्वयंभू वृष उद्योत ॥११२॥

चंद्र प्रभु की स्तुति लिख्यते

चंद्र प्रभु शशि समद्युति सेन मानो दूजो शशि छबि देत ।
बंदूं महा ऋषि नमि इन्द्र जीते कर्मारी दुख दुन्द ॥११३॥
अन्तरगत कषाय रिपु महा जीते जिनवर स्वांत सुकहा ।
जाको भामण्डल भरपूर अंधकार तिन कीनों दूर ॥११४॥
ध्यान रूप दीपक तै जान नाशो अन्तर गत अज्ञान ।
सिंह गर्जना वत्त वच सोय अन्यमती बन हस्ती जोय ॥११५
जैसे नाद सुनत केहरी हस्ती मद छांड़े तिस घरी ।
त्यों तुम वाणी सुनि अविकार हटग्राही हट तजे असार ॥११६
लोक विषै परमेष्ठी जोय प्रकृत तीर्थंकर धारी सोय ।

सब दर्शी युत केवलज्ञान सब दुख नाशक आज्ञा मान ।।११७
भव्य रूप जे कुमुद प्रवान तिन बिक सावन को शशि जान ।
दोष रूप बादल परिहरो सो चंद्र प्रभु मन शुद्ध करो ।।११८

ऐसे सतरहवां स्थल है ।।१७।। आगे चौबीस तीर्थंकरों की जयमाल लिखये हैं ।

गर्भागम ते राज प्रजंत दीनो धन कौं दान महंत ।
वरषे रतन पंदरह मास पूरी सब जन को तब आस ।।११६
तप अरु ज्ञान कल्याणक माह शुद्ध आत्मा पद को पाय ।
मोक्ष गये सब कर्म निवार परमात्म परमेष्ठी सार । १२०।।

पद्धड़ी छंद

जैऋषभ देव ऋषिगण नमंत जैअजित राग अरु द्वेष हनंत ।
जैं संभव भव में जन्म हान जै अभिनंदन धर शुक्ल ध्यान ।।१२१
जै सुमति २ दातार खास जै पद्म प्रभु पदमा निवास ।
जैजै सपार्श्व जिनवर महान जैचंद्रप्रभु द्युति शशि समान ।।१२२
जैं पुष्पदन्त मन कियो चूर जैं शीतल २ वचन भूरि ।
जैं श्रेय जिनेश्वर श्रेय रूप जैं वासुपूज्य पूजित अनूप ।।१२३
जै विमल जिनेश्वर विमलसार जै ज्ञान अनंताऽनंत धार ।
जै धर्म तीर्थंकर तार धर्म जै शांति २ दायक सु पर्म ।।१२४।।
जै कुंथु सरब जियपै दयाल जैं अरः दालिद हरकारि निहाल।
जै मल्लि सुगंधित देह धार, जै मुनिसुव्रत व्रत देत सार ।।१२५

जै नमि सुरेश नित पडैं पाय जै नेम धर्म रथ नेम माय ।
जै पार्स २ छेदन कृपाण जै महावीर यश वर्धमान ।।१२६।।

धत्ता

यह नाम जिनवर पाप नाशक, परम इन्द्र नमैं सदा ।
जिनके वचन उरधार ते, बैठे कुबादी तज मदा ।।
मिथ्यात हाला हल बसो, सम्यक्त दृढ़ व्रत आदरों ।
चौबीस जिन ते भव्य जीवन को सदा मंगल करो ।।१२७।।

ऐसे चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति कहो है यह अठारहवां स्थल हैं ।।१८।। आगे चैत्यालयनि की भक्ति है ।

चौपाई

क्षेत्र कुलाचल ऊपर सोय नंदीश्वर मेरुन पै जोय ।
जितने जिन मंदिर हितकार, ते सब बंदूं पाप निवार ।।१२८
पृथ्वी तलमें जिनवर धाम, कृत्या कृत्रिम दिपै ललाम ।
भवनत्रिक बैमानिक सुरा, तिन निवासमें जिनगृह परा ।।१२६
मध्य लोक में जिन आगार, करवाए मनुषन ने सार ।
देवराज अर्चित निरधार, सुमरूं भाव भगति उरधार ।।१३०
जंबू द्वीप धातकी खंड, पुष्करार्ध यह क्षेत्र प्रचंड ।
भूत भविष्यत वर्त सुमान, इनमें तीर्थंकर गुण खानि ।।१३१
मोरकंठ शशि सुबरन जेम, नलिम रक्त कमल वत तेम ।
जिनके तनकीप्रभा अपार, बसु विधि समध भस्म कर्तार ।।१३२

सम्यकज्ञान चरित्र सरूप, मोक्ष मार्ग दरसात अनूप ।
तिनको बंदूं बारम्बार, मेरी भवबाधा निरवार ॥१३३॥
मेरुकुला चल रूपा चल्ल, जंबू शाल मलि बृक्ष अटल्ल ।
अंजन दधि मुखरति कर गिरा, नंदीश्वर में सोभैं परा ॥१३४
कुंडल रुचिक सुनग बक्षार, मानुषोत्तर गिरि इक्ष्वाकार ।
चैत्य वृक्ष भवनत्रिक धाम, तिनमें जे जिन बिंब ललाम ॥१३५
तिनको स्तवन करूं धर भाव भक्ति सहित बंदूं करचाव ।
पुष्पदंत चंद्रप्रभु सार, कुंद कुसम शशि की उनहार ॥१३६॥
पार्श्व सुपार्श्व नाथ सुखकार, इंद्र नील समद्युति मनहार ।
वासुपूज्य पद्मप्रभु देव, दोऊ रक्तवरण स्वयमेव ॥१३७॥
मुनिसुव्रत अरु नेम कुमार, श्यामवरण मनमोहन सार ।
सोलह तीर्थंकर सुखकार, तास सुवरन समद्युति धार ॥१३८
जन्म जरा मृत वर्जित सार, अष्टादश दूषण निरवार ।
केवलज्ञान रूप रवि जेम, बंदूं सिद्ध हेत धर प्रेम ॥१३९॥

ऐसे उनीसहवां स्थल है ॥१९॥

चैत्य भक्ति इच्छूं भगवान, तामें कायोत्सर्ग सुजान ।
कीनों ताकी आलोचना, करूं अवार होय शुद्ध मना ॥१४०
अधो मध्य उरध त्रैलोक, कृत्या कृत्यम प्रतिमा थोक ।
तिन सबको त्रैलोक मंझार, पूजें देव सहित परिवार ॥१४१
भवन पती व्यंतर सुखकार, ज्योतिष कल्प निवासी सार ।

दिव्यगंध अरु पुष्प सुधूप दिव्य चूर्ण अभिषेक अनूप ।।१४२
तीन काल भक्ती में भरे, अर्चे पूजें वन्दन करें।
ते जिन बिंब बिराजै तहां, मैं नित अर्चू बैठो यहां ।।१४३
पूजूं बंदूं नमन सु करूं, बारम्बार स्तुति उच्चरूं।
तिनकी पूजा के परभाव, दुःख क्षय कर्म क्षय थाव ।।१४४।।
बोध तनो ह्वै लाभ अनूप, शुभ गति पावें सुन्दर रूप।
मरण समाधि सहित शुभजोय, जिनके गुणकी प्रापति होय।। १४५

ऐसे चैत्य भक्ति का बीसहवां अधिकार है।।२०।।

देव बंदना परभात की, आई चली पूर्व कर्म थकी।
सब कर्मन के नाशन हेत, पूजा बंदन स्तवन समेत ।।१४६।।
पण परमेष्ठी भक्ति सु काल ताको कायोत्सर्ग विशाल।
धारूं तज परमाद कषाय, पण गुरु भक्ति करूं सुखदाय ।।१४७

ऐसे पढ़ि पीछे णमो अरहंताणं इत्यादि ६वें स्थल में कहा था तिस विधान सूं जाप्प करे। पीछे (कर स्यूं मैं जिनवर गुणगान) इत्यादि १०वें स्थल में कहा था सो पाठ पढ़े।

प्रातहार्य संजुत अरहंत अष्ट गुणन युत सिद्ध महंत।
पांच सुमति त्रै गुप्ति समेत, बंदों आचारज जग सेत।।१४८
बंदूं अष्ट अंग उवझाय, आठ जोग धारी मुनिराय।
येही पंच परम गुरुसार, जन्म मरण हर सुख करतार ।।१४९
मनुष नागेन्द्र सुर तीन लोक ही विषैं।

सर्व के नाथ होछत्र त्रै यूं अर्ध ।
पंचकल्याण के सुख भोगता जिनं,
दर्शन ज्ञान अनंत सुख वीर्य नं ॥१५०॥
सोई जिनराज मंगल हमें दीजिये ।
सिद्ध परमात्मा ज्ञान शुभ कीजिये ॥
जन्म जरा मर्ण ध्यानाग्नि ते दग्धये ।
मोक्ष में जायके सुक्ख शास्ते लिये ॥१५१॥
पंच ग्राचार पंचाग्नि सोई साधते ।
द्वादशांगं श्रुतं समुद ग्रव गाहते ॥
मोक्ष के हेतु वसु कर्म की निर्जरा ।
करत सो सूरि दो मोक्ष स्थानक वरा ॥१५२॥
पाप मृगराज विकराल भववन विषै ।
मार्ग मिथ्यात मैं भ्रमत कछु नहीं लखे ॥
ऐते प्राणीन कौ मोक्ष मार्ग तनो ।
देत उपदेश बंदू उवज्झायनो ॥१५३॥
उग्र तप करत तन क्षीण सारो भयो ।
धर्म ग्रह शुक्ल शुभ मैं चित दियो ॥
नग्न तन धार तप रूप लक्ष्मी युता ।
साधु ते मोक्ष मार्ग मुझे दो बता ॥१५४॥
एम उच्चार थुति पंच गुरु जो न मैं ।
सोई संसार बेल छेद सुख कोप मैं ॥
इन्द्र ग्रहमिन्द्र ग्रादि भोग सुख शिव गमें ।
जार विधि इंधन को ग्राप ग्राप में रमें ॥१५५॥

दोहा–श्री अरहंत अरु सिद्ध जिनु आचारज उवझाय।
पण परमेष्टी को नमूं, भव भव में सुखदाय ॥१५६॥

अब पंच गुरु भक्ति का पाठ है

इच्छूं पण गुरु भक्ती जिना, तामें कायोत्सर्ग सुठना।
करस्यूं ताकी आलोचना, होय शुद्ध वच कायरु मना ॥१५७
प्रातिहार्य वसु युत अरहंत, अष्ट गुणन युत सिद्ध महंत।
पंच समिति त्रय गुप्ति समेत, बंदू आचारज जग सेत ॥१५८
बारह अंग भनत उवझाय, रत्नत्रय पालक मुनिराय।
तिनको बंदन के परभाव, दुःख क्षय कर्म क्षय थाव ॥१५६
बोधि तनो है लाभ अनूप, शुभ गति पावें सुन्दर रूप।
मरण समाधि सहित शुभ जोय, जिनके गुणकी प्रापति होय १६०

ऐसे सामायिक के कर्त्ता ने भक्ति पाठ पढ़ प्रार्थना करी हैं इक्कीसमां ॥२१॥ स्थल है।

देव बंदना परभात की, आई चली पूर्व क्रम थकी।
सब कर्मन के नाशन हेत, पूजा बंदन स्तवन समेत ॥१६१॥
शांतिनाथ भक्ती का काल, काको कायोत्सर्ग विशाल।
धारूं तज परमाद कषाय, शांति भक्ति करस्यूं सुखदाय ॥१६२

ऐसे पढ़ि पीछे णमोअरहंताणं इत्यादि ६वें स्थल में कहा था तोस विधान से जाप करे पीछे करस्यूं में जिनवर गुणवान इत्यादि १०वें स्थल में कहा था सो पाठ पढ़े। आगे शान्ति पाठ पढ़े हैं।

शांत जिनेश्वर बंदू सार, मुख निर्मल शशि की उनहार।
मूलोत्तर गुण पात्र महान, बसु शत लक्षण तन में जान ॥१६३

चक्रवर्ति पंचम सुविशाल, इंद्र नरिंद्र जजै तिहूं काल ।
संघ विषैं शांति कर्तार, षोडश में जिन बंदू सार ॥१६४॥
प्रातिहार्य बसु सोभै इष्ट, तरु अशोक फुनि पुष्प सुवृष्टि ।
आसन भामंडल दिव धुनि, छत्र चमर दुंदुभि धुनि घनो ॥१६५
जगत पूज्य शांती कर्तार, बन्दूं मस्तक भूपे धार ।
सर्व संघ में शांती जोय, मोको परम शांतिता होय ॥१६६॥
मुकट कुंडल हार विभूषितं, देव पूजें पाद प्रमोदतं ।
प्रवर बंसज जग दीपकवरा शांति अर्थ सु होउ जिनेश्वरा ॥१६७

अडिल्ल

पूजक पूजा के जु सहाई हैं जिते, यती और सामान्य तपोधन हैं लिते । देश राष्ट्र पुरग्राम राज हद में सदा, वर्तो है जिनराज शांतिता सर्वदा ॥१६८॥ वृक्ष अशोक सु पुष्प वृष्टि दिव्य ध्वनि, चामर सिंहासन भामण्डल छबि घनो । छत्र त्रय अरु दुंदुभि की ध्वनि जो रहै, प्रातिहार्य बसु शोभित श्री जिनवर कहै ॥१६६॥

चौपाई

क्षेम होऊ सब प्रजा मंझार नृप धर्मज्ञ होउ बलधार ।
समय-२ सिर वर्षा होय, आधि व्याधि व्यापै नहिं कोय ॥१७०
काल चार मारी भय जोय, एक छिनक हू नाहीं होय ।
इस हू जोव लोक में नित्त, धर्म चक्रवर्ती सु पवित्त ॥१७१॥
घातिकर्म नाशक केवलो, ज्ञान सूर्य राजे द्युति भलो ।
ऐसे बृष भ आदि जिनराय, शांति अर्थ होऊ सुखदाय ॥१७२

अब चतुर्विंशति भक्ति का पाठ है।

इच्छूं चौबिस जिनकी भक्त, तामे कायोत्सर्ग प्रशस्त।
कीनो ताकी आलोचना, करस्यूं तन मन वच शुद्ध ठनां॥१७३
पंच कल्याणक नायक स्वाम, प्रातिहार्य वसु सहित ललाम।
चौंतिस अतिशय कर संजुक्त, बत्तिस इंद्र नमें धर भक्ति॥१७४
वलि नारायण चक्री सार, ऋषि मुनीश जतिवर अनगार।
राजे इनकी सभा समेत, थुति थानक अनुपम छवि देत॥१७५
वृषभ आदि अति वीरज जान, मंगल रूप पुरुष परधान।
ऐसे तीर्थंकर सु विशाल, तिनको अर्चूं मै सब काल॥१७६॥
पूजूं बन्दूं नमन सु करूं, बारम्बार अस्तुति उच्चरूं।
मेरे दुःख तनो क्षयवान, कर्म नाश उपजे शुभ ज्ञान॥१७७॥
मरण समाधि थकी तज प्राण, पाऊं सुगति महा सुखखान।
तिनके गुण की प्रापति होय, ये बांछा बर्ते उर मोहि॥१७८

ऐसे बाईसवां स्थल है॥२२॥

देव वन्दना परभात की, आई चलो पूर्व क्रम थकी।
सब कर्मन के नाशन हेत- पूजा बन्दन स्तवन समेत॥१७९॥
चैत्य पंच गुरू भक्ति सु सार, शांति भक्ति कीनी हितकार।
तामें दोष लसो जो कोय, ताको शुद्ध करन अब लोय॥१८०
आत्म विशुद्धि करन के हेत, कायोत्सर्ग धरूं शुभ चेत।
श्री समाधि भक्ति को सार, जन्म सफल यातें निरधार॥१८१

ऐसे प्रतिज्ञा कर णमोकार मंत्र का ९ बार जाप करे।

इस ही कायोत्सर्ग मझार, ध्यानो सर्व दोष निरवार।

डिगे नहीं उपसर्ग जु आय, तातें अधिक निर्जरा थास ॥१८२

सवैया

ध्यान हुतासन में विधि ईंधन भाव सु घृत कर होमत हूं ।
मन रूप होम कर्तार सु निश्चै पाप रूप मल धोवत हूं ॥१८३
पर में आप यो मानतनो सो मिथ्यात बुद्धि सु छोडत हूं ।
रूप समाधि आत्मा सोहं आप आप में जोडत हूं ॥१८४॥
अंतर जल्प कर मिलो कल्पना सोहं ताको छोड़ दई ।
वचन अगोचर परम ज्योति अविनाशी आपहि देख लई ॥१८५
रागद्वेष मोहादिक वर्जित निज उपयोग सु शुद्ध कियो ।
आप आपमें मगन होय तिन सहजै अविचल थान लियो ॥१८६

चौपाई

दर्शन ज्ञान चरित इक रूप, सो समाधि उपलब्ध अनूप ।
ताकर जो प्रमोद उछलन्न, जिनके सो गुरु होऊ प्रशन्न ॥१८७

अब समाधि भक्ति पढ़े हैं ।

इच्छूं भक्ति समाधि सु जिना, ताको कायोत्सर्ग सुठना ।
करूं तासकी आलोचना होय शुद्ध बचकाय रूमनो ॥१८८
निश्चल जो रत्नत्रय रूप, सो परमात्म ध्यान अनूप ।
है लक्षण जाको गुणमाल, सो समाधि अचूं सब काल ॥१८९
पूजूं बंदूं नमन सु करूं, बार बार अस्तुति उच्चरूं ।
मेरे दुःख तनो क्षयठान, कर्म नाश उपजे शुभ ज्ञान ॥१९०
मरण समाधि थकी तज प्राण पाऊं सुमति महा सुखखान ।
जिन गुण गण की प्रापति होय ये वांछा वर्ते उर मोहि ॥१९१

ऐसे तेईसवां स्थल है ।।२३।। अब इष्ट की प्रार्थना करे हैं ।
पुन्य पाप को फल जा माहिं, सो प्रथमानुयोग सुखदाय ।
तीन लोक को जो व्याख्यान, सो करणानुयोग हितवान ।।१९२
जा में जिन भाषित आचार, सो चरणानुयोग मनधार ।
द्रव्य छहों भाषे जा माह, सो द्रव्यानुयोग सुखदाय ।।१९३।।
बन्दूं इनको ये गुण रास, इन शास्त्रन को हो अभ्यास ।
बंदूं जिन चरणाम्बुज सार, सत संगति होवे हितकार ।।१९४
चारित धन धारी जे जोव, भाषूं तिनकी कथा सदीव ।
दोष बाद में धारूं मौन, सबसे प्रिय हित वच गुण भौन ।।१९५
आत्म तत्व विषें भावना बर्तो तज विकल्प शुद्ध मना ।
जो लौ मोक्ष न प्रापति होय तौ लों ये बांछा उर मोहि ।।१९६
तुमरे चरण कमल अबिकार मम उर में तिष्ठो अविकार ।
मम चित तुम चरणनमें जोय जबलों मोक्ष न प्रापति होय।।१९७
मैंने भक्ति करी मति क्षीण अक्षर मात्रा पद कर हीन ।
ज्ञान देय सो क्षमयो मोहि, दुख नाश भव भ्रमण न होय ।।१९८
नमस्कार होऊ शुभ मना, श्री आचार्य देव बन्दना ।
तामें सिद्ध भक्ति को जान, धारूं कायोत्सर्ग महान ।।१९९।।

ऐसे पढ़कर ९ बार जाप करे ।

सम्यक्त ज्ञान दर्शन अपार बीरज अनंत सूक्षमत्व धार ।
अवगाहन अव्या बाध जान फुन अगुरु लघुअष्टम बखान ।।२००
इन बसु गुणयुत श्रीसिद्ध स्वामि मस्तकनमाय करहूं प्रणाम ।
तपकर सुसिद्ध चारित्त सिद्ध संजम नब करके सिद्ध प्रसिद्ध ।।२०१

सिद्ध ज्ञान दर्शन के माह, बंदूं तिनको सिद्धी सुवाय।
लोक शिखर पै तिष्टे सोय आवागमन कभी नहीं होय॥२०२
नमस्कार होऊ शुभ मना, श्री आचार्य देव वन्दना।
तामे श्रुत भक्ती को जान धारूं कायोत्सर्ग महाय॥२०३॥
एक सतक अरु बारह कोड, लाख तिरासी ऊपर जोड़।
अट्ठावन हजार अरु पांच, पद बंदूं जिन भाषित सांच॥२०४
भाषित श्री अरहंत महान, गणधर गूंथित शर्म निधान।
श्रुत ज्ञान सागर गम्भीर, बन्दूं नाश करो भव पीर॥२०५
नमस्कार होऊ शुभ मना, श्री आचार्य देव वन्दना।
तामैं सूरि भक्ति का जान, धारूं कयोत्सर्ग महान॥२०६
पहुंचे श्रुत समुद्र के पार, निज परमत के जानन हार।
सम्यक चारित्र तप भंडार बंदूं ते गुण गण आधार॥२०७॥
छत्तिस गुणधारी उत्कृष्ट, पंचाचार करे सम दृष्ट।
शिष्यन पै करते उपगार, बंदूं ते आचार्य सु सार॥२०८
यह प्राणी गुरु भक्ति समेत, द्वै विधि संजम धारे चित्त।
तौ संसार समुद्र सों तिरै, छेदे कर्म मोक्ष तिय बरै॥२०६॥
जे वृत मंत्र होम में लीन, ध्यान अग्नि होत्री परवीन।
षडावश्य साधक बरवीर, शिष्य तपोधन जिम तीर।.२१०
साधु क्रिया साधक बलखण्ड, शील वसन गुण शस्त्र प्रचंड।
चंद्र सूर्य से अधिकी जोत, मोक्ष द्वार उद्घाटक होत॥२११
मोको तृप्त करो ते सूर, अव्याबोध देऊ सुख भूर।
ते गुरु मेरी रक्षा ठान, नायक सम्यग्दर्शन ज्ञान॥२१२॥

चारित सागर जो गम्भीर, मोक्ष मार्ग उपदेशक वीर ।
प्रणमूं हस्त कमल सिरधार, भवसागर तैं पार उतार ॥२१३

ऐसे चौबीसवां स्थल है ॥२४॥ ऐसे पूर्वाचार्यंनि का किया सामायिक पाठ है । सो मुनि तीन काल सामयिक करै हैं और श्रावक भी सामायिक करे हैं । सो श्रावक के पढ़ने का पाठ अन्य है । अगर यह पाठ भी पढ़े तो दोष नाहीं । स्तुति पाठ जो पढ़े सो ही श्रेष्ठ है ऐसा जानना । भाषा होने का ब्योरा लिख्यते ।

दोहा—मैं बंदूं अरहंत को सिद्ध सूर उवझाय ।
साधु सकल मंगल करन, सामायिक सुखदाय ॥
ऐसे सामायिक पढ़ो, सार जान मुनि वृन्द ।
धर्म राग मति अल्प फुनि, भाषा मय जय चंद ॥२१४
ताही को अनुसार ले निज बुध माफिक छन्द ।
इन्द्रप्रस्थ नगरी विषै, रचे सु सागर छन्द ॥
ऐश्वर्ड सप्तम जहां, राज करे सुखदाय ।
उन्नीस सै सत्तावना, सम्वत् विक्रम थाय ॥२१५॥

॥ इति सामायिक पाठ चौपाई बंध सम्पूर्णम ॥